महाराणा राजसिंह

लेखक
रामप्रसाद व्यास

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर-४

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित :

प्रथम-संस्करण—१६७४
Maharana Rajsingh

मूल्य . ७ २०

प्रकाशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-२६/२, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर
जयपुर-४

मुद्रक
अणिमा प्रिंटर्स,
पुलिस मेमोरियल,
जयपुर-४

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी मे इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत १९६९ मे पाँच हिन्दी-भाषी प्रदेशो मे ग्रंथ-अकादमियो की स्थापना की गई।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी मे विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ निर्माण मे राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानो तथा अध्यापको का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्राय सभी क्षेत्रो मे उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थो का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अत तक १५० से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गई है। हमें आशा है कि यह अपने विषय मे उत्कृष्ट योगदान करेगी। इस पुस्तक की समीक्षा के लिए अकादमी डॉ० गोपीनाथ शर्मा, इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के प्रति आभारी है।

खेतसिंह राठौड़	प्रो० डॉ० सत्येन्द्र
अध्यक्ष	निदेशक

प्राक्कथन

राजस्थान के इतिहास में मेवाड़ राज्य का एक विशिष्ट स्थान रहा है। यहाँ के विभिन्न रजवाड़ों मे यही एक ऐसा राज्य रहा जहाँ लगभग तेरह शताब्दियो तक एक ही राजवश का शासन रहा। इस राज्य के प्राय प्रत्येक महाराणा ने अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के लिए हर प्रकार की कठिनाइयों का सहर्ष सामना किया। उसकी स्वतत्रता की बलिवेदी पर आत्माहुति देने के साथ-साथ उन शासको ने राष्ट्रीय सस्कृति की रक्षा एवम् निर्वाह के लिए भी अथक प्रयास किये।

मुगल सत्ता के उदयकाल तक गहलोत वशीय राणाओ की कीर्ति अक्षुण्ण रही एवम् उनके स्वातन्त्र्य प्रेम का मार्तण्ड अबाध रूप से अपना आलोक फैलाता रहा। लेकिन मुगल सत्ता रूपी बादल जब सम्पूर्ण भारतीय क्षितिज पर आच्छादित हो गये तब मेवाड का यश प्रकाश कुछ धूमिल अवश्य हो गया, परन्तु वह बादलो की ओट मे यथासम्भव अपने अस्तित्व को प्रकट करता रहा। राणा प्रताप के मरणोपरान्त मेवाड की महत्ता, उसकी शक्ति व चिरन्तन राजश्री क्षीण होने लगी। मेवाड का गौरवमय जन-जीवन भी पतनो मुख होने लगा। ऐसी परिस्थिति मे महाराणा राजसिह मेवाड के इतिहास के रगमच पर अवतरित हुआ। उसने एक बार पुन. मेवाड की विगत आभा को चमकाने व गौरवान्वित करने तथा उसके जन-जीवन को सजीवनी प्रदान करने मे आशातीत योगदान दिया। उसने परम्परागत पौरुष एवम् नीतिज्ञता से मुगल वारिदो को विदीर्ण कर अपने वश गौरव की प्रखर किरणो से दिगदिगन्त को आलोकित किया। एक बार फिर गहलोत वश का सूर्य तमतमा उठा।

महाराणा राजसिह का काल राजस्थान के इतिहास का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काल रहा है। औरगजेब की धर्मान्ध व कुटिल नीति के फलस्वरूप हिन्दू धर्म एवम् राज्यो के अस्तित्त्व पर घातक प्रहार हो रहे थे। उधर अधिकांश राजपूत शासक परम्परागत क्षत्रियोचित भावनाओ का परित्याग कर

महाराणा राजसिंह

निजि सुख एवम् स्वार्थों की पूर्ति हेतु मुगल सत्ता के समक्ष सर्वस्व समर्पित कर चुके थे। उस समय भी मारवाड के राठोड राजपूतो मे क्षत्रियोचित भावनाएँ उत्ताल तरंगे ले रही थीं। दुर्भाग्यवश जमरूद के थाने पर महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु हो जाने से वे नेतृत्वहीन हो गये थे। उन्हें एक सूत्र मे बाँधने वाला कोई नही रहा, फिर भी वे अपने अस्तित्व हेतु जूझ रहे थे। ऐसी सकटापन्न परिस्थितियो मे महाराणा राजसिंह ने सक्रिय सहयोग का हाथ बढा कर उनमे साहस का सचार किया। उसने पतनोन्मुख राजपूत शक्ति का पुनर्गठन कर मुगल सम्राट् औरगजेब से डट कर लोहा लिया। उसने मात्र परम्परागत वीरता का ही परिचय नहीं दिया वरन् अत्यन्त सूझ बूझ एवम् नीतिज्ञता से विषम परिस्थितियो का सफलतापूर्वक मुकाबला किया तथा भीषण तनावपूर्ण स्थिति मे भी वह अपने जीवनकाल मे विशाल एवम् आश्चर्यजनक निर्माण कार्य कर सका। प्रस्तुत रचना मे महाराणा राजसिंह के काल के इतिवृत्त को इसी आधार पर लिखने का प्रयास किया गया है। सामान्य पाठको एवम् इतिहास के विद्यार्थी की जिज्ञासा के लिए इस युग विशेष की विशेषताओ का भी इस रचना मे विवरण किया गया है।

प्रस्तुत रचना का मुख्य उद्देश्य महाराणा राजसिंह की उपलब्धियों का मूल्यांकन एवम् समकालीन परिस्थितियो का विवेचन करना रहा है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति मे मैं कहा तक सफल रहा हूँ इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक ही कर सकेंगे।

ग्रन्थ के प्रणयन मे अद्यावधि उपलब्ध अभिलेखीय, साहित्यिक आदि अधिकाश मौलिक स्रोतो का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त इतिहास के मान्य विद्वानो की एतद्विषयक कृतियो का भी उपयोग किया गया है। लेखक उन सभी विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करता है।

प्रस्तुत रचना के सम्बन्ध मे शोध सामग्री एकत्रित करने के कार्य मे मुझे मेरे शिष्य डा० मागीलाल मयक का हर प्रकार से शैक्षिक सहयोग प्राप्त हुआ। इसी प्रकार इस कार्य सम्पादन म मेरे रिसर्च स्कालर श्री प्रकाश व्यास की भी सहायता उल्लेखनीय है। नामानुक्रमणिका तैयार करने मे मेरे आत्मज् श्यामाप्रसाद, बी० ए० (आनर्स के विद्यार्थी) ने सहयोग दिया। हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के पदाधिकारियों की तत्परता, लगन तथा ग्रन्थ को सुव्यवस्थित रूप से मुद्रित करवाने के लिए मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

रामप्रसाद व्यास

विषय-सूची

१

भौगोलिक पृष्ठभूमि एवं ऐतिहासिक परम्परा

वीर प्रसविनी राजस्थानी धरा की पर्वताच्छादित दाक्षिणात्य कुक्षी मे स्थित मेदपाट[1] प्रदेश अपनी भौगोलिक विशेषताओं एवम् महती ऐतिहासिक परम्पराओ के कारण राजस्थान मे ही नही वरन् समस्त भारत मे अपना विशेष स्थान रखता है। स्थानीय शासको ने अपनी मातृभूमि की रक्षा व स्वतन्त्रता के निमित्त जिन कठिनाइयों का सामना किया व यातनाओ को वहन किया वे परवर्ती पीढी के लिये सदैव प्रेरणास्पद रहेगी। स्थानीय वीरो एव वीरागनाओ ने मातृभूमि की बलिवेदी पर सहर्ष प्राणाहुति देकर रोमांचकारी इतिहास व महान् आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसकी समता अन्य देशो म मिलनी कठिन है। मेवाडी वीरो की जौहर की भावना सदियो तक हम स्वतन्त्रता के महत्त्व का उज्ज्वल पाठ पढ़ाती रहेगी।

मेवाड प्रदेश की सीमाए समय समय पर बढती व घटती रही हैं किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सम्बन्ध स्थापित होने के पश्चात् यह प्रदेश २३–४६ से २५–५८ उत्तरी अक्षाश और ७३–१ से ७५–४९ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित था। इसका क्षेत्रफल १२,६६१ वर्गमील था।[2] इसके उत्तर मे अजमेर मेरवाडा और शाहपुरा राज्य थे। पश्चिम मे जोधपुर व सिरोही, दक्षिण-पश्चिम मे ईडर तथा दक्षिण मे डूगरपुर, बासवाडा और प्रतापगढ के राज्य थे। पूर्व मे नीमच व निम्बाहेडा के जिले तथा बून्दी और कोटा के प्रदेश थे। ईशान कोण मे मेवाड बूदी और कुछ जयपुर प्रदेश से घिरा हुआ था।

---

१. प्राचीन काल मे मेवाड प्रदेश को मेदपाट कहते थे। इस शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख आहाड के वराह मन्दिर से प्राप्त वि० स० १००० के एक छोटे से शिलालेख मे मिलता है। इसके उपरान्त डॉ० जी० एन० शर्मा द्वारा प्राप्त वि० स० १२४२ के शिलालेख मे इसका वर्णन है (द्रष्टव्य-डॉ० जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृष्ठ १)

२ इम्पिरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया राजपूताना, पृष्ठ १०७

मेवाड प्रदेश अनेक भौगोलिक विशेषताएँ लिए हुए है। यहाँ की भूमि ऊबड खाबड है। इस प्रदेश के उत्तर व पूर्व मे उभरा हुआ हरा-भरा व उपजाऊ पठार है। इस क्षेत्र को ऊपरमाल कहते हैं। इन्ही हरे-भरे पठारी मैदानो मे से होकर मरहठे मेवाड मे प्रविष्ट हुए थे। मेवाड का मध्य भाग मैदान है जहा अरावली पर्वत से निष्कासित नदियो के जल से सिंचित लह-लहाते हरे-भरे खेत दृष्टिगत होते हैं। मेवाड के पहाडी क्रम मे अरावली पवत श्रेणी प्रमुख है। अरावली शब्द का अर्थ है आरा या आडा मान रुकावट और टेडापन। अरावली पर्वत मेवाड की पश्चिमी सीमा के साथ साथ उत्तर म दिवेर से दक्षिण म देवल तक स्थित है। उत्तर म अजमेर मेरवाडा की तरफ इसकी ऊँचाई समुद्र की सतह से २३८३ फुट है। चौडाई केवल कुछ ही मील है, परन्तु दक्षिण पश्चिम की ओर इसकी ऊँचाई बढ़ती जाती है। यह ऊँचाई कुम्भलगढ पर ३५६८ फुट है व जर्गा पर इसकी सर्वोच्च चोटी ४३१५ फुट ऊँचाई तक चली गई है।[3] फिर दक्षिण की तरफ इसकी ऊँचाई कम होती चली गई है, लेकिन पहाडियो का फैलाव अधिक हो जाता है। यह जडगला-च्छादित पर्वतीय क्षेत्र छप्पन के नाम से विख्यात है। बीच बीच म यहा यदा-कदा विस्तृत मैदानी भाग के भी दर्शन हो जाते हैं।

विभिन्न प्रकार के पाषाणो से युक्त स्थानीय पहाडी प्रदेश भूगर्भ शास्त्रियो के लिए अत्यन्त आकर्षण का विन्दु रहा है। अरावली पर्वत शृंखला म हम कई प्रकार के पाषाण उपलब्ध होते हैं। भूशास्त्रियो के अध्ययनानुसार इस प्रदेश मे ग्रेनिट (गहरे नीले रग की पाषाण पट्टियाँ), विभिन्न प्रकार के क्वार्ट्ज (Quartz–एक विशेष प्रकार का चमकीला पत्थर), साइनाइट (Syenite) की चट्टानें हार्न स्टान (Hornstone–शीघ्र टूटने वाला एक विशेष प्रकार का चमकीला पत्थर), पोरफिरी (Porphyry एक विशेष प्रकार का कठोर पत्थर) आदि पाषाण प्रभूत मात्रा मे उपलब्ध हैं। खैरवाडा व जावर के आसपास नीले एव लाल वर्ण के मार्ल्स (Marls मिट्टी व रेत से युक्त पाषाण) प्राप्त होते हैं। यहाँ वास्तु निर्माण हेतु सामान्य डलिराइट (Dolerite) व बॉसाल्ट (Bosalt) पत्थरो का उपयोग होता है जो उदय-पुर के आसपास प्रभूत मात्रा मे उपलब्ध हैं। मटोट एव वासदर पहाड की खान से क्रमश २० फीट व १४ फीट लम्बी पट्टिया निकाली जाती हैं। राज-नगर म सगमरमर उपलब्ध होता है। राजसमुद्र की पाल के निर्माण म इसी पत्थर का प्रयोग किया गया है। इस सगमरमर को जला कर चूना भी बनाया

---

३ वीर विनोद—पृ० १०५

जाता है। चित्तौड़ से सगमूसा (काला चमकीला पत्थर) उपलब्ध होता है। देव प्रतिमाओं एवम् प्यालों आदि के निर्माण के लिये उपयुक्त मिट्टी का स्लेट पत्थर ऋषभदेव व खैरवाडा के बीच काफी मात्रा में प्राप्त होता है।[४]

इन पर्वतीय प्रदेशो में कतिपय तंग घाटियां भी हैं जो यातायात की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं। इन घाटियो मे से सर्वाधिक महत्वपूर्ण घाटी भीलवाडा के पास है जो भीलवाडा की नाल व पागल्यानाल के नाम से प्रसिद्ध है। यह नाल लगभग ४ मील लम्बी एवम् अत्यन्त सँकडी है। इसके अतिरिक्त मेवाड व मारवाड को मिलाने वाली देसूरी की नाल, सोमेश्वर की नाल (देसूरी के उत्तर मे स्थित), हाथी गुडा की नाल (देसूरी से दक्षिण मे लगभग ५ मील की दूरी पर स्थित)[५] तथा माणपुरा की नाल (घाणेराव से दक्षिण मे लगभग ६ मील की दूरी पर स्थित) है। इन नालों का उपयोग व्यापारिक मार्गों के रूप में तो होना ही था पर साथ साथ यहाँ रक्षात्मक चौकियाँ भी स्थापित की जाती थी, क्योंकि इन्हीं मार्गों से शत्रु इस प्रदेश मे प्रवेश करता था। हाथीगुडा की नाल मे रक्षात्मक युद्ध मे काम आये हुए योद्धाओं के अनेक स्मारक भी बने हुए हैं।[६]

मेवाड के पर्वतीय क्षेत्र कीमती पत्थरों एवम् धातुओं से परिपूर्ण है। टॉड महोदय का अनुमान है कि प्राचीनकाल मे मेदपाटीय भूगर्भ मे धातुओं का बाहुल्य था। जावर तथा दरीबा की सीसे की खानो से ३ लाख से भी अधिक आमदनी देश को होती थी। वर्तमान मे ये खानें बन्द है। श्यामलदास के अनुसार सन् १८७२ ई० मे जावर की खान को फिर से आरम्भ करने का प्रयास किया पर निष्फल रहा। सीसा व चाँदी के अतिरिक्त माडलगढ

---

४ वीर विनोद—पृ० १०३–१०५

५ इस नाल के नामकरण के प्रसग मे यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि जिस समय महाराणा कुम्भा कुम्भलगढ़ पर निवास करता था, उस समय राणा के हाथियों को इस नाल के पास रखा जाता था। हाथियों की देखभाल हेतु नियुक्त व्यक्तियों ने यहाँ एक छोटी-सी बस्ती स्थापित करली जो हाथी गुडा कहलाने लगी। इसी के पास स्थित होने के कारण यह नाल हाथी गुडा की नाल कहलाई।

६ श्यामलदास का कथन है कि यहाँ मोरचो आदि के निशान अभी तक विद्यमान हैं तथा अद्यपर्यन्त स्थित चबूतरों का निर्माण घाणेराव के ठाकुर ने उस समय करवाया जबकि उसे महाराजा मानसिंह ने जोधपुर राज्य से बहिष्कृत कर दिया था (द्रष्टव्य वीर विनोद—पृ० १०७)

के पास गुँहली, जहाजपुर के पास मनोहरपुर व बडी सादडी के पास भारसोला नामक स्थान पर लोहा की खाने भी विद्यमान हैं। लोहे के साथ कुछ ताँबे की खाने भी इस प्रदेश में हैं। मांडल, पुर तथा भीलवाडा के पास तामडा (रक्तमणि) नामक बहुमूल्य पत्थर भी उपलब्ध होता है।[७]

पर्वतीय प्रदेश के कारण यहाँ वन्य-प्रदेश भी अत्यन्त विस्तीर्ण हैं। अरावली पर्वत शृंखला में बाँस व अन्य झाडियाँ उपलब्ध होती है। अरावद एवम् बासो के घासपात का वन्य प्रदेश औद्योगिक लकडी की उपलब्धि की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। यहाँ सागवान की लकडी अधिक मात्रा में मिलती है। इसका प्रयोग भवन निर्माण में होता है। महुआ व आम के वृक्ष भी मेवाड में लगभग सभी जगह पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। पर्वतीय प्रदेशों एवम् मैदानी भागों में प्रचुर मात्रा में वनौषधियाँ भी उपलब्ध होती हैं।

इस प्रदेश में वर्ष भर प्रवाहित होने वाली नदियाँ नहीं हैं। चम्बल नदी मेवाड के कुछ प्रदेशों में होकर अवश्य निकलती है पर वह वास्तव में मेवाड की नदी नहीं कही जा सकती। इस प्रदेश की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नदी बनास है। यद्यपि बनास बरसाती नदी ही है तथापि इसमें स्थान-स्थान पर बने हुए गड्ढो में वर्ष भर जल एकत्रित रहता है। बनास का उद्गम अरावली पर्वतमाला में कुम्भलगढ के निकट है। वहाँ से पूर्ण पर्वतीय प्रदेश में सर्पाकार गति से प्रवाहित होती हुई मैदानी भाग में पहुँच जाती है। मैदानी भाग में नाथद्वारा के पास से गुजरती हुई यह माडलगढ के निकट पहुँच जाती है, जहाँ बडच नदी इसमे आकर मिल जाती हैं। इस सगम-स्थली को मेवाड़ी पवित्र तीर्थ स्थान मानते हैं। यहाँ से जहाजपुर की पहाडियो के मध्य से गुजरती हुई अजमेर व जयपुर की सीमा में प्रविष्ट हो जाती है।[८] लगभग ३०० मील की यात्रा के उपरान्त यह चम्बल नदी में मिल जाती है। बनास के अतिरिक्त खारी, मानसी, कोटेश्वरी (कोठारी), बेडच, जाकम व सोम आदि इस प्रदेश की मुख्य नदियाँ हैं।

प्राकृतिक एव कृत्रिम भीलो की दृष्टि से मेवाड अत्यन्त समृद्ध है। विस्तार एव प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से इस प्रदेश की चार भीलें उल्लेखनीय है—पिछोला, उदयसागर, राजसमन्द तथा जयसमन्द। इनमे से पिछोला

---

७ वीर विनोद—पृ० १०६ और ११०

८ राजस्थान में बनास ही एक ऐसी बडी नदी है जिसका प्रवाह पूर्व की ओर है, अत इस सम्बन्ध मे यह कहावत प्रसिद्ध है कि—सब नदियाँ सीधी बहै, उलटी बहै बनास।

सर्वाधिक प्राचीन भील है, जिसका निर्माण पन्द्रहवी सदी मे महाराणा लाखा के शासनकाल मे किसी बनजारे ने करवाया था। यह झील लगभग सवा दो मील लम्बी एव डेढ मील चौडी है। उदयसागर भील उदयपुर से लगभग ६ मील पूर्व में स्थित है। यह भील भी लगभग ढाई मील लम्बी तथा दो मील चौडी है। तीसरी महत्त्वपूर्ण भील राजसमद है, जो उदयपुर के उत्तर मे लगभग चालीस मील की दूरी पर स्थित है। चार मील लम्बी व पौने दो मील चौडी इस भील का निर्माण महाराणा राजसिंह ने करवाया था। इस भील का विस्तृत विवरण प्रस्तुत रचना के अध्याय आठ मे दिया जायगा। चौथी महत्त्वपूर्ण भील जयसमन्द है जो उदयपुर के दक्षिण मे ३२ मील की दूरी पर स्थित है। लगभग नौ मील लम्बी एवम् छ मील चौडी यह भील कैप्टिन येट के शब्दो मे, मानव निर्मित भीलो मे सर्वाधिक विशाल भील है। इस भील का निर्माण सवत् १७४४ व १७४८ के मध्य महाराणा जयसिंह ने करवाया था। इन प्रमुख भीलो के अतिरिक्त अनेक विशाल जलाशय हैं, जिनसे आसपास की भूमि की सिंचाई की जाती है।

मेवाड का अधिकाश भाग पर्वताच्छादित होने के कारण यद्यपि यहाँ कृषि योग्य भूमि कम है लेकिन जल के बाहुल्य के कारण एवम् अन्य रासायनिक तत्वों की विद्यमानता के कारण भूमि मे उर्वरा शक्ति पर्याप्त मात्रा मे है। इससे दो फसलें अत्यन्त आसानी से हो जाती हैं। समूचा देश हरा-भरा एवम् अत्यन्त मनमोहक है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि मेवाड प्रदेश पर राजस्थान के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा प्रकृति की विशेष कृपा रही है। समूचा प्रदेश धन-धान्य से युक्त एव आर्थिक दृष्टि से समृद्ध व सम्पन्न रहा है। इस भौगोलिक पर्यावरण ने स्थानीय मानव समाज को अत्यन्त प्रभावित किया है। स्थानीय पर्वतीय प्रदेश की बीहडता ने मेवाड के निवासियो को अत्यन्त साहसी परिश्रमी एवम् निर्भीक बना दिया। पथरीली भूमि ने ही इस प्रदेश के निवासियो मे कष्ट सहन करने की क्षमता उत्पन्न की। यहाँ के लोगो ने मातृभूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु अपार कष्ट सहन करते हुए निरन्तर सघर्षमय जीवन व्यतीत किया। पर्वतीय प्रदेशो ने स्थानीय निवासियो मे शौर्य एवम् साहस का सचार करने के साथ साथ इस प्रदेश को आक्रमणो से बचाने मे भी अद्वितीय भूमिका अदा की है। पहाडी शृंखलाओ ने एक तरफ शत्रुओ के मार्ग को अवरुद्ध किया तो दूसरी ओर स्थानीय स्वतन्त्रता के सेनानियो को सुरक्षित आश्रय प्रदान किया। शत्रुओ को पहाडी क्षेत्र मे प्रवेश होने पर अत्यधिक हानि उठानी पडी।

पर्वतीय प्रदेशों मे अनेक रक्षात्मक चौकियों एवम् पार्वत-दुर्गों का निर्माण भी किया जा सका। मेवाड मे पार्वत एवम् वन्य-दुर्गों का बाहुल्य है तथा प्रदेश की रक्षात्मक कार्यवाहियों के लिए वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुए। पर्वतों के राजनैतिक प्रभाव के साथ-साथ सामाजिक एवम् आर्थिक प्रभाव भी स्पष्ट है। समाज मे भील एवम् मेरो के समान निर्भीक परिश्रमी तथा लड़ाकू जातियाँ इन पर्वत प्रदेशों मे ही प्राप्त होती रही हैं। मेवाड मे इन आदिवासी जातियों का बाहुल्य रहा है। पर्वतों से आर्थिक दृष्टि से उपयोगी बहुमूल्य औद्योगिक सामग्री भी उपलब्ध होती रही है तथा विभिन्न नदियों का उद्गम भी इन पर्वतों से ही हुआ है। सामरिक दृष्टि से छापामार युद्ध प्रणाली हेतु भी यह प्रदेश अत्यन्त उपयुक्त प्रमाणित हुआ।

मेवाड प्रदेश म बहुत प्राचीनकाल से ही मानव की उत्पत्ति हो चुकी थी। भीलवाडा के पास बागोर नामक स्थान पर जनवरी सन् १९६७ ई० मे हुए उत्खनन कार्य से यह प्रमाणित हो चुका है कि यहाँ प्रागैतिहास काल मे मानवीय सभ्यता के अकुर प्रस्फुटित होन लगे थे। इस उत्खनन कार्य से आदिम मानव का अस्थि पजर एवम् चकमक व स्फटिक पाषाणो से निर्मित लघुपाषाणोपकरण उपलब्ध हुए हैं। इसी प्रकार घटिया किस्म के मृत्तिका पात्र भी प्राप्त हुए हैं।[९] उदयपुर से सलग्न बस्ती आहाड़ (प्राचीन नाम आघाटपुर) में की गई खुदाई के फलस्वरूप वहाँ अत्यन्त समृद्ध सम्पन्न सभ्यता के दर्शन होते हैं जो सिन्धु घाटी की सभ्यता के अन्तिम दिनों में पल्लवित हुई होगी।[१०]

मेवाड प्रदेश का प्रारम्भिक इतिहास क्रम-बद्ध उपलब्ध नहीं होता। यहाँ का प्राचीनतम ऐतिहासिक नगर मध्यमिका था, जो वर्तमान मे नगरी के नाम से जाना जाता है तथा इसके खण्डहर चित्तौड के उत्तर मे लगभग ८ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ मौर्यकालीन अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। इस स्थान का उल्लेख शुङ्ग काल मे यवनो द्वारा विजित प्रदेश के रूप मे

---

९ द्रष्टव्य डॉ० वीरेन्द्रनाथ मिश्र का निबन्ध—उत्तर पाषाणकालीन बागोर और राजस्थान के प्रागैतिहास में उसका स्थान—अन्वेषणा वर्ष १ अक ३ पृ० १७३–१८४

१०. शोध पत्रिका भाग १८ अक ३ पृ० ४२

पतञ्जली द्वारा महाभाष्य मे भी हुआ है।[११] स्थानीय परम्पराओ के अनुसार यहाँ आरम्भ मे मौर्य शासको का प्रभुत्व रहा, जिनमे से चित्रक मौर्य नामक शासक ने चितौड (चित्रकूट) दुर्ग का निर्माण करवाया था। इसी चित्रक मोर के वशज राजा मान मोरी से गुहिल वशी रावल महेन्द्र (बापा रावल) ने सवत ७९१ (सन् ७३४ ई०)[१२] मे यह दुर्ग अपने अधिकार मे लिया। इसी समय से १९४७ ई० तक, जब भारत स्वतन्त्र हुआ, गुहिलोत (गहलोत) वशीय शासको के अधिकार म ही यह गढ रहा, यद्यपि इस दरमियान यह कई बार मुसलमान शासको के अधिकार म चला गया था।

गुहिल वश के प्रारम्भिक इतिहास पर विद्वानो मे मतभेद रहा है। कर्नल टॉड एवम् श्यामलदास के अनुसार गुहिल वशीय क्षत्रियो का मूल स्थान वल्लभी था।[१३] वल्लभी के रावश का ही एक व्यक्ति गुहिल अथवा गुहदत्त आनन्दपुर से मेवाड आया। इसके २०० से अधिक सिक्के प्राप्त हुए हैं जिन पर 'श्री गुहिल' तथा 'गुहिल श्री' लेख प्राप्त हुआ।[१४] कनिघम तथा श्यामलदास ने इन्ही सिक्को के आधार पर गुहिल का समय छठी शदी का उत्तरार्द्ध माना है।

---

११ पतञ्जलि कृत महाभाष्य तृतीय अध्याय द्वितीय पाद सूत्र सख्या १११ मे अनद्यतनभूत क्रिया का उदाहरण देते हुए कहा है—अरूणद्यवन साकेतम् अरूणद्यवन मध्यमिकाम।
(अरुणद्ध यवन साकेतम् अरूणद्ध यवनो माध्यमिकाम् दी ऐज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी पृ० ९६)

१२ बापा के समय निर्धारण मे इतिहासकारों मे मतभेद है।
(क) वीर विनोद पृ० २५१ बापा का वि० स० ७९१ मे सिहासन पर बैठना लिखा है।
(ख) ओझा ने अपनी पुस्तक राजपूताने का इतिहास प्रथम भाग पृ० ४१४ पर बापा का समय वि० स० ७९१ से ८१० तक स्वीकार किया है।
(ग) टॉड ने अपनी पुस्तक एनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटिज ऑफ राजस्थान प्रथम भाग पृ० १९६ पर बापा का काल वि० स० ७८४ से ८२० तक निर्धारित किया है।

१३ वीर विनोद पृ० २४८

१४ (क) कनिघम आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट खण्ड ४ पृ० ९५–९६
(ख) वेब—द करेन्सीज ऑफ द हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना पृ० ६

गुहिल के उपरान्त इस वंश का प्रभावशाली व्यक्ति बापा रावल हुआ। बापा रावल वास्तव में किसी व्यक्ति का नाम नहीं था वरन् उपाधि थी।[१५] यह उपाधि किस राजा की थी ? इस पर किंचित् मतभेद है। कर्नल टॉड ने अपराजित के पिता व गुहिल के चौथे वंशज शील को बापा रावल माना है। लेकिन कर्नल टॉड के कथन का कविराज श्यामलदास ने अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर खण्डन कर दिया है। श्यामलदास के अनुसार यह उपाधि अपराजित के पुत्र महीन्द्र की होनी चाहिए।[१६] डॉ० ओझा ने महीन्द्र (द्वितीय) के पुत्र कालभोज को बापा रावल की उपाधि से विभूषित स्वीकार किया है।

बापा रावल के सम्बन्ध में एकलिंग माहात्म्य आदि रचनाओं में अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण बातें लिखी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से उसमें केवल इतना ही तथ्य प्रतीत होता है कि बापा रावल पर किसी हारीत नामक ऋषि की विशेष कृपा थी तथा बापा ने संवत् ७६१ (सन् ७३४ ई०) में मान मोरी से चित्तौड़ का दुर्ग अपने अधिकार में ले लिया था। एकलिंग माहात्म्य के बीसवें अध्याय के इक्कीसवें श्लोक में कहा गया है कि संवत् ८१० में अपने पुत्र को राज्य प्रदान कर बापा रावल मुनि के पास नागदा चला आया।[१७] बापा रावल की मृत्यु एकलिंगपुरी के पास ही हुई थी। वर्तमान एकलिंगपुरी के उत्तर में एक मील की दूरी पर बापा रावल का समाधि स्थान बना हुआ है तथा अद्यपर्यन्त वह स्थान बापा रावल ही कहलाता है। रावल समरसिंह के पूर्ववर्ती शासकों के कतिपय अभिलेख अवश्य उपलब्ध होते हैं, लेकिन इस काल का विस्तृत इतिवृत्त उपलब्ध नहीं होता। समरसिंह के समय से ऐतिहासिक शृंखला फिर से प्रारम्भ हो जाती है। समरसिंह के काल की घटनाओं को पृथ्वीराज रासो में समाविष्ट किया गया है, लेकिन पृथ्वीराज रासो की अप्रमाणिकता सिद्ध हो चुकी है। परवर्ती स्थानीय ख्यात-बातकारों एवम् वंशावली वाचकों ने भी पृथ्वीराज रासो की घटनाओं को ही प्रमाण मान कर अपने ग्रन्थों में सम्मिलित कर लिया। अतः समरसिंह का इतिहास भी अन्धकार में लुप्त हो गया। लेकिन समरसिंह के समय की कतिपय प्रशस्तियाँ उपलब्ध हैं जो उसके इतिहास पर किंचित प्रकाश डालती हैं। रावल समरसिंह

---

१५ वीर विनोद भाग १ पृ० २५०

१६ वीर विनोद पृ० २५०

१७ राज्यन्दत्वा स्वपुत्राय आयवंशमुपागत ।
खचन्द्रदिग्गजाख्ये च वर्षे नागह्रदे मुने ॥

के पिता के समय का एक अभिलेख सवत् १३२४ का प्राप्त हुआ है। इसके उपरान्त रावल समरसिंह का प्रथम अभिलेख सवत् १३३२ का उपलब्ध है।[१८] इसके अनन्तर तीन अन्य अभिलेख सवत् १३३५, १३४२ व १३४४ के प्राप्त हुए हैं जिनसे यह अनुमान लगता है कि समरसिंह का शासनकाल सवत् १३३२ व १३४४ के मध्य रहा, अर्थात् यह पृथ्वीराज चौहान का समकालीन नहीं था। समरसिंह के पूर्ववर्ती शासको में से अल्लट का सवत् १०१०, शक्ति-कुमार का सवत् १०३४, जैतसिंह सवत् १२७० का तथा तेजसिंह का सवत् १३२४ का अभिलेख उपलब्ध हुआ है।

समरसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र रत्नसिंह चित्तौड का शासक बना। मुस्लिम तवारीखो के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी ने हिजरी ७०३ मुहर्रम (सवत् १३७० भाद्रपद अथवा सन् १३०३ ई० अगस्त) को चित्तौड पर आक्रमण किया। रावल रत्नसिंह के साथ घमासान युद्ध हुआ एवम् विजय की सम्भावना न देख कर जौहर किया गया। किले की समस्त स्त्रियाँ रानी पद्मनी के साथ धधकती हुई चिता मे कूद पडी व राजपूत योद्धा केशरिया बाना धारण कर दुर्ग का द्वार खोल कर शत्रु के सम्मुख युद्ध-स्थल मे आ डटे। रत्नसिंह अपने समस्त योद्धाओं सहित लडता हुआ मारा गया। उस समय रत्नसिंह ने अपने कतिपय निकट सम्बन्धियो को पहाडियों मे चले जाने का आदेश दे दिया था ताकि निकट भविष्य मे वे अपनी शक्ति का सचय कर सकें तथा खोए हुए चित्तौड को पुन प्राप्त कर सकें। इनमे दो भाई राहप व माहप थे। माहप तो हताश होकर डूँगरपुर चला गया तथा राहप चित्तौड प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास करता रहा। इसी राहप ने अपने शत्रु, मण्डोर के राणा मोकल पडियार (प्रतिहार) को युद्ध मे पराजित कर उसे कैद कर लिया व उसका विरुद छीन कर स्वय महाराणा कहलाया। राणा राहप सीसोदा नामक ग्राम मे रहा था, अत इसके वशज सिसोदिया कहलाए। राहप चित्तौड लेने का उद्योग करता रहा पर उसे सफलता नहीं मिली।[१९]

---

१८ रावल समरसिंह के अभिलेखों हेतु द्रष्टव्य—

(क) सवत् १३२४ का चीरवा अभिलेख—ज ए सो ब खण्ड ४५ भाग १ पृष्ठ ४६

(ख) सवत् १३३० का चीरवा अभिलेख—ए इ खण्ड २२ पृ० २८५

(ग) सवत् १३३० का चित्तौड अभिलेख—ज ए. सो ब खण्ड ४५ भाग १ पृ० ४८

१९ वीर विनोद पृ० २४८-५०

राहप की मृत्यु के उपरान्त भुवनसिंह ने चित्तौड लेने के लिए प्रयत्न किए। वह इस पर अधिकार करने में सफल हुआ। इसकी पुष्टि रणकपुर जैन मन्दिर अभिलेख से भी होती है। चित्तौड पर राणा का अधिकार अधिक समय तक नहीं रह सका। मुहम्मद तुगलक के समय पुनः इस पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। आगे चलकर दिल्ली सुलतान की ओर से यह दुर्ग जालोर के चौहान राजा मालदेव को दे दिया गया।

राणा हम्मीरसिंह ने चित्तौड़ पर अधिकार करने के लिए अनेक प्रयास किये पर उसे सफलता नहीं मिली। इधर मालदेव सोनगरा भी चित्तौड की रक्षा करते हुए तग आ चुका था। अतः उसने अपनी पुत्री का विवाह महाराणा हम्मीरसिंह के साथ कर दिया और उसे मेवाड के कई परगने दहेज में दे दिए। इसके बाद महाराणा हम्मीरसिंह ने छल से चित्तौड पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[२०] इसके उपरान्त महाराणा हम्मीर ने आस पास के प्रदेशों पर आक्रमण कर अपने राज्य का प्रादेशिक विस्तार भी किया।

महाराणा हम्मीर की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र क्षेत्रसिंह (खेता) राज्यासीन हुआ। महाराणा खेता ने भी प्राप्त राज्य में वृद्धि की थी। इसने वागड के प्रदेश को अपने राज्य का अंग बना लिया था। एक सामान्य सी बात पर बूंदी नरेश हाडा लालसिंह व खेता के मध्य वैमनस्य उत्पन्न हो गया व इनमें युद्ध ठन गया। इस युद्ध में राणा खेता व हाडा लालसिंह दोनों ही वीर गति को प्राप्त हो गये।[२१]

खेता की मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र लक्षसिंह (लाखा) गद्दीनशीन हुआ। महाराणा लाखा ने बूंदी के साथ मेल कर लिया। राणा लाखा की मृत्यु के उपरान्त मोकल मेवाड की गद्दी पर बैठा। ज्येष्ठ पुत्र चूडा ने राठोडो के साथ किये गए समझौते के अनुसार अपने राज्याधिकार का परित्याग कर दिया था। वह महाराणा मोकल की सेवा में रहा। परन्तु मोकल व उसकी माता को चूण्डा पर सन्देह हो गया, अतः चूण्डा को मेवाड छोडने के लिए बाध्य होना पड़ा था। राजमाता ने राज्य प्रबन्ध के लिये अपने भाई रणमल्ल को चित्तौड बुलवा लिया। उसने मेवाड के प्रशासन में अत्यधिक योगदान दिया। कुछ समय पश्चात महाराणा मोकल उसके वैमातृज भाई चाचा तथा मेरा के मध्य भयकर मनमुटाव हो गया। कुछ दिनों बाद अवसर

---

२० डा० दशरथ शर्मा—लेक्चर्स ऑन द राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर पृ० ४६

२१ वीर विनोद पृ० ३०३

पाकर चाचा व मेरा ने महाराणा मोकल का वध कर दिया ।

मोकल की हत्या हो जाने के बाद अल्पवयस्क राजकुमार कुम्भा मेवाड की गद्दी पर बैठा । मारवाड के शासक रणमल्ल को उसने अपनी सहायतार्थ निमन्त्रित किया । रणमल्ल तुरन्त ही अपनी सेना सहित मेवाड पहुँच गया । रणमल्ल ने मोकल के हत्यारे चाचा व मेरा को मार कर प्रतिशोध लिया एवम् मेवाड मे पुन शान्ति स्थापित की । रणमल्ल ने अपने पैतृक राज्य मारवाड की अपेक्षा मेवाड की ओर अधिक ध्यान दिया । रणमल्ल ने अपने विश्वासपात्र राठौड सरदारो को विभिन्न उत्तरदायित्वपूर्ण पदो पर नियुक्त किया एवम् सेना का भी पुनर्गठन किया । इसके उपरान्त मोकल के हत्यारो के अनन्य सहयोगी महपा पवार के प्रसग को लेकर मालवा के शासक महमूद व कुम्भा के मध्य युद्ध हुआ । महमूद रणस्थल से पलायन कर माण्डू के दुर्ग मे चला गया । रणमल्ल ने उसका पीछा किया और माण्डू के दुर्ग को घेर लिया । महमूद तग आकर किले के बाहर निकल आया व युद्ध करने लगा । उसकी सेना कुछ ही समय बाद पराजित होकर भाग निकली । महमूद महाराणा द्वारा बंद कर लिया गया । छ महीने तक उसे चित्तौड मे कैदी के रूप मे रखा गया फिर उससे दड के रूप मे रकम वसूल करके उसे मुक्त कर दिया । इसी विजय के उपलक्ष मे कुम्भा ने चित्तौड के दुर्ग पर विजय स्तम्भ का निर्माण करवाया । राव रणमल्ल के सहयोग से मेवाड राज्य की दिनोदिन उन्नति होने लगी व कुम्भा को अनेक युद्धों मे विजयश्री प्राप्त हुई । उन सभी विजयो का उल्लेख रणकपुर जैन मन्दिर अभिलेख (सवत् १४९६) मे हुआ है । लेकिन सवत् १४९६ में ही राणा कुम्भा ने राव रणमल्ल की हत्या करवा दी तथा मण्डोर पर भी अपना अधिकार कर लिया ।

इसके कुछ समय उपरान्त महाराणा कुम्भा मालवा व गुजरात के मुसलमान शासकों के साथ युद्ध मे उलझ गया । इधर राठोडो न अवसर पाकर मारवाड पर पुन अधिकार कर लिया व रणमल्ल की हत्या का प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से मेवाड मे भी काफी उपद्रव किया व गोडवाड प्रदेश मारवाड मे मिला लिया । ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमानों के साथ होने वाले निरन्तर सघर्षों के कारण कुम्भा ने राठोडो से सन्धि करली ।[२२] इससे राठोडों का उपद्रव शान्त हो गया व महाराणा अपनी पूर्ण शक्ति मुसलमान शासको के दमन मे लगाने में समर्थ हुआ । सवत् १५२५ मे महाराणा उन्माद

---

२२ डॉ० दशरथ शर्मा—लेक्चर्स ऑन द राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर पृ० ८७–८८

रोग से ग्रसित हो गया तब एक दिन अवसर पाकर उसके ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह ने कुम्भलमेर के दुर्ग में महाराणा की हत्या करदी। राजनैतिक दृष्टि से महत्व-पूर्ण होने के साथ साथ साहित्य एवं कला के विकास की दृष्टि से भी महाराणा कुम्भा का शासनकाल मेवाड के इतिहास में अपना विशेष महत्त्व रखता है। मेवाड के कुल ८४ दुर्गों में से ३२ दुर्गों का निर्माण इसके द्वारा ही किया गया था।[२३]

कुम्भा की हत्या कर उदयसिंह मेवाड का शासक बना, पर उसके पितृ-हत्या के कुकृत्य से सरदार उसके पक्ष में नहीं रहे। अतः कुछ समय उपरान्त सरदारों के सहयोग से रायमल्ल मेवाड का महाराणा बना व उदय-सिंह को परिवार सहित राज्य से निष्कासित कर दिया गया। उदयसिंह व उसके पुत्रों द्वारा उत्तेजित होकर माडू के बादशाह गयासुद्दीन ने मेवाड पर आक्रमण किया परन्तु पराजित होकर भागने के लिए बाध्य हुआ। इसके उपरान्त उसने एक बार फिर अपनी पूर्व पराजय का प्रतिशोध लेने हेतु आक्र-मण किया पर दूसरी बार भी उसे असफलता का अनुभव ही करना पड़ा। महाराणा की वृद्धावस्था में इनके तीन पुत्र पृथ्वीराज, जयमल एवम् संग्राम-सिंह में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर गृह-कलह की स्थिति उत्पन्न हुई। परन्तु अलग-अलग लडाइयों में जयमल व पृथ्वीराज के मारे जाने से संग्राम-सिंह के लिए मेवाड का सिंहासन प्राप्त करने के लिए रास्ता सुगम हो गया। महाराणा कुम्भा के बाद महाराणा संग्रामसिंह ही मेवाड के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शासक हुआ, जिसने अपने बाहुबल से अपने साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार किया व समस्त राजपूत शक्ति को अपने ध्वज के नीचे एकीकृत किया। अनेक युद्धों के विजेता इस महाराणा संग्रामसिंह ने अपनी एक आँख, एक हाथ और एक पैर तक रणदेवी को अर्पित कर दिए थे। अन्त में मुगल बादशाह बाबर के साथ खानवा के मैदान में इसका युद्ध हुआ जिसमें दुर्भाग्यवश सांगा पराजित हुआ। इस घटना के कुछ ही समय बाद राणा का देहान्त हो गया।

सांगा की मृत्यु के उपरान्त मेवाड पतन की ओर अग्रसर होने लगा था। राणा रत्नसिंह, विक्रमादित्य एवम् उदयसिंह के समय में शक्ति काफी क्षीण हो गई। उदयसिंह ने यद्यपि शक्ति को संग्रहित करने का प्रयास किया पर इधर मारवाड में राव मालदेव ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ाली थी। उसने राणा संग्रामसिंह का स्थान प्राप्त कर लिया था। मालदेव और उदयसिंह के

विलास शारदा—महाराणा कुम्भा पृ० १२१

सम्बन्ध बिगड गये थे। उदयसिह को पनपने का अवसर ही नही मिला। इधर जब मालदेव की शक्ति क्षीण हो गई तो बाबर के महत्वाकाक्षी पौत्र अकबर ने राजपूतो की स्वतन्त्रता का अपहरण करने का अभियान आरम्भ कर दिया था। परिणामस्वरूप चित्तौड पर भी मुगलो का अधिकार हो गया। राणा उदयसिह ने अपने नाम पर नवीन नगर उदयपुर की स्थापना की व उसे मेवाड की नवीन राजधानी की प्रतिष्ठा प्रदान की। उदयसिह की मृत्यु के उपरान्त महाराणा प्रतापसिह शासक बना, पर इस समय गृह-कलह की स्थिति पुन उत्पन्न हो गई। अब राणा प्रताप के भाई मुगल शिविर मे पहुँच गये थे। प्राय समस्त राजपूत शक्ति मुगल सत्ता के अधीन हो चुकी थी। अत महत्वाकाक्षी अकबर की कुदृष्टि प्रताप पर भी पडी व मानसिह कछवाहा के प्रोत्साहन से अकबर ने एक विशाल सेना मेवाड मे प्रताप के विरुद्ध भेजदी। हल्दीघाटी के मैदान मे घमासान युद्ध हुआ। प्रताप पराजित हुआ। लगभग सभी मेवाड क्षेत्र मुगलो के अधीन चला गया परन्तु स्वतन्त्रता के पुजारी प्रताप ने अपनी परम्परागत स्वाधीनता प्रेम की दुहाई देते हुए पर्वतों मे भटकना उचित समझा। उसने विशाल मुगल सत्ता के सामने अपना सिर नही झुकाया और मृत्युपर्यन्त वह मुगलो से लोहा लेता रहा तथा अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बनाये रखने मे वह सफल रहा।

प्रताप की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अमरसिंह मेवाड का राणा बना। मुगलो के सघर्ष का अन्त अभी नही हुआ था। शाहजादा सलीम के नेतृत्व में शाही फौज ने फिर माडल, मोही, ऊटाला आदि दुर्गों पर आक्रमण किया। राजपूत सेना ने भयकर आक्रमण कर ऊटाला का दुर्ग मुगलो से छीन लिया। इसके उपरान्त अकबर ने सवत् १६६० को फिर मेवाड पर आक्रमणार्थ सेना भेजने का का प्रयास किया पर शाहजादा सलीम के टालमटोल के कारण आक्रमण नही हो सका। सवत् १६६२ कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी (१५ अक्टूबर १६०५ ई०) को अकबर की मृत्यु हो गई व शाहजादा सलीम जहाँगीर के नाम से गद्दीनशीन हुआ। जहाँगीर ने अमरसिह के चाचा सगर को चित्तौड का किला जागीर म दे दिया व उसे चित्तौड का महाराणा घोषित किया। उसने सोचा था कि इसस मेवाड के कुछ सरदार राणा का साथ छोड कर सगर से आ मिलेंगे पर जहाँगीर की यह योजना निष्फल रही। इसके अनन्तर बादशाह ने क्रमश महाबतखाँ, अब्दुलखाँ व राजा वासु तुँवर को मेवाड को फतह करने के लिए भेजा परन्तु ये सभी प्रयास असफल रहे। तदनतर बादशाह ने शाहजादा खुर्रम के नेतृत्व मे एक विशाल सेना मेवाड पर आक्रमणार्थ भेजी। शाही सेना ने राजपूतो को पीछे हटने के लिए बाध्य किया व

माँडलगढ, उदयपुर आदि नगरो पर अधिकार करती हुई शाही सेना चावड तक पहुँच गई।

निरन्तर सघर्ष से मेवाड की प्रजा पूर्णरूप से परेशान हो चुकी थी। स्वय महाराणा भी तग हो चुका था, अत मुगलो के साथ सन्धि करना ही उसने उचित समझा। महाराणा अमरसिंह गोगूदा मे शाहजादा खुर्रम से मिला। अत्यन्त सौहार्दपूर्ण वातावरण मे ५ फरवरी, सन् १६१५ ई० मे सन्धि हुई जिसमें निम्न बातें तय हुई[२४] —

१ महाराणा कभी शाही दरबार मे उपस्थित नही होगे।

२ महाराणा का ज्येष्ठ पुत्र ही शाही दरबार म जाएगा।

३ शाही सेना म महाराणा के एक हजार सवार रहेगे।

४ चित्तौड के दुर्ग की मरम्मत नहीं की जाएगी तथा यहाँ गढबन्दी नही होगी।

इस सन्धि के साथ पीढियो से सुरक्षित मेवाड घराने की स्वतन्त्रता का अपहरण तो हो ही गया परन्तु मेवाड के समृद्धि के दिनो की पुनरावृत्ति भी हुई। सन्धि के अनुसार पाटवी राजकुमार कर्णसिंह शाहजादा खुर्रम के साथ शाही दरबार मे उपस्थित हुआ, जहाँ बादशाह ने कर्णसिंह को हर प्रकार से प्रसन्न रखने का प्रयास किया। लेकिन इस प्रकार परम्परागत स्वतन्त्रता के छिन जाने से महाराणा को अत्यन्त आत्मग्लानि हुई और वह मृत्यु-पर्यन्त अपने महल से बाहर नही निकला।

अमरसिंह की मृत्यु के उपरान्त कर्णसिंह राज्यासीन हुआ। लेकिन आठ वर्ष शासन करने के उपरान्त कर्ण की मृत्यु हो गई। कर्णसिंह के उपरान्त उसका पुत्र जगतसिंह प्रथम मेवाड का शासक बना। जगतसिंह के शासन-काल मे आन्तरिक उपद्रवो का बाहुल्य रहा। डूंगरपुर के महारावल एवम् बासवाडे के रावल ने मेवाड से स्वतन्त्र होने का प्रयास किया परन्तु उनके प्रयास निष्फल रहे। राणा ने इनके विद्रोहो का क्रूरतापूर्वक दमन कर दिया। राणा की इस दमनकारी नीति के फलस्वरूप बादशाह बहुत नाराज हुआ। बुद्धिमान राणा ने झगडा बढाना उचित न समझ बादशाह को १६३३ ई० मे उपहार आदि भेज कर सन्तुष्ट कर दिया और कुछ फौज भी बादशाह

---

२४ (क) तुजक-ए-जहाँगीरी प्रथम भाग पृ० १३४

(ख) बादशाहनामा (लाहोरी) प्रथम भाग पृ० १७२

की सेवा मे भेजी।[२५] इस फौज ने दक्षिण मे वादशाही लडाइयो मे अपना योगदान दिया। सन् १६४३ ई० मे वादशाह शाहजहाँ ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के दर्शनार्थ अजमेर आया। उस समय महाराणा जगतसिंह ने बादशाह को प्रसन्न करने के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र राजसिंह को अजमेर शाही सेवा मे उपस्थित होने के लिए भेजा। इससे बादशाह खुश रहा।

महाराणा जगतसिंह ने अपने राज्य के अन्तिम समय मे जहाँगीर के साथ की गई सन्धि की धारा के विरुद्ध चित्तौड के किले की मरम्मत कराना आरम्भ कर दिया। इसी कार्य को महाराणा राजसिंह ने भी जारी रक्खा जिससे अप्रसन्न होकर शाहजहाँ ने चित्तौड पर मुगल फौजें भेज दी, जिसका वर्णन अगले अध्याय मे किया जाएगा।

जगतसिंह का काल शान्ति व समृद्धि का काल माना गया है। उसने अपने राज्यकाल में उदयपुर मे जलमन्दिर, जगमन्दिर, जगनिवास व मोहन मन्दिर का पिछोला झील मे निर्माण करवाया। उसने लाखो रुपये खर्च कर राजमहलो से कुछ दूरी पर उत्तर मे अपने नाम से जगन्नाथ राय (जगदीश) का भव्य विष्णु का मन्दिर बनवाया और इसकी प्रतिष्ठा के समय महाराणा ने हजार गायें, सोना, घोडे आदि और पाँच गाँव ब्राह्मणो को दान मे दिये। महाराणा का देहान्त अक्टूबर १६५२ ई० मे हुआ था।

---

२५ (क) राजप्रशस्ति—सर्ग ५ श्लोक १७-२१

(ख) बादशाहनामा (लाहोरी) भाग २, पृ० ८

२

राजसिंह का राज्याभिषेक एवम् प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

महाराणा जगतसिंह के पाँच पुत्र थे।[1] ज्येष्ठ पुत्र संग्रामसिंह का तो बचपन में ही देहान्त हो गया था। उसके दूसरे पुत्र व उत्तराधिकारी राजसिंह का जन्म महाराणी जनादे बाई मेडतणी के गर्भ से विक्रम संवत् १६८६ कार्तिक वदि २ (ई० स० १६२९ तारीख २४ सितम्बर) को हुआ था।[2] पुत्रोत्पन्न होने के शुभवसर पर राज्य में सर्वत्र खुशियाँ मनाई गईं और ब्राह्मणों, चारणों आदि को मुक्त-हस्त से धन बाँटा गया तथा गायें दान में दी गईं। नगर व हाट सजाये गये। नृत्य, संगीत व वाद्य से नगरवासी आनन्द-विभोर हो उठे। ब्राह्मणों को जन्म-पत्रिका दिखलाई गई, जिन्होंने नक्षत्रों की स्थिति देखकर राजसिंह का एक प्रतापी व गौरवशाली शासक होने की भविष्यवाणी की थी।[3] राजसिंह का राजसी ठाठ से पालन-पोषण हुआ और शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध किया गया।

राजसिंह का प्रथम विवाह बूंदी नरेश राव शत्रुशाल की बडी कन्या के साथ हुआ था। उसकी छोटी कन्या का विवाह जोधपुर के महाराजा

---

१ ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ५२६ —
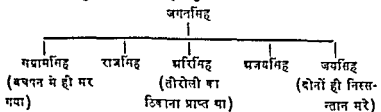
२ राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ५, श्लोक २२-२४

३ मान राजविलास-दूसरा विलास १५२-१६६

जसवन्तसिंह प्रथम के साथ हुआ था। सयोग से दोनो के विवाह का मुहूर्त एक ही दिन का आया। दोनो बरातें एक साथ बूंदी के राज-द्वार पर पहुँची। तोरण वन्दाई की प्राथमिकता के सम्बन्ध मे दोनो बरातियो के बीच कुछ कहा सुनी हो गई और दोनो तरफ से तलवारें खिच गईं। शत्रुशाल ने नम्रता-पूर्वक समझा बुझा कर दोनों पक्ष वालो को शान्त किया। राजसिंह ने तोरण बन्दाई की रस्म पहिले की और तदुपरान्त धूम धाम से विवाह सम्पन्न हुआ। राजसिंह विवाह कर जब उदयपुर लौटे तब नगरवासियो ने बड़े उत्साह व उल्लास के साथ वर वधु का भव्य स्वागत किया।[४]

ई० स० १६४३ मे ख्वाजामुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के दर्शन हेतु बादशाह शाहजहाँ अजमेर आया था। उसके साथ एक बहुत बड़ी सेना भी थी। देवलिया, (प्रतापगढ), डूगरपुर और बासवाडा पर राणा द्वारा आक्रमण किया जाने व वहा के शासको से कर-वसूली के मामले को लेकर बादशाह को शिकायत की गई थी। इसलिये महाराणा जगतसिंह को भय था कि कहीं बादशाह मेवाड पर आक्रमण न करदे। अत महाराणा ने इस संभावित आक्रमण को टालने के अभिप्राय से अपने ज्येष्ठ पुत्र राजसिंह को बादशाह की सेवा मे अजमेर भेज दिया। राजसिंह ने शाही दरबार मे उप-स्थित होकर बादशाह को एक हाथी व अन्य वस्तुएँ नजर की। बादशाह ने भी जडाऊ खिलअत, सोने की मूठ वाली तलवार आदि उपहार देकर राजसिंह को सीख प्रदान की।[५]

ई० स० १६४६ मे मुगल फौजों ने बलख बदखशाँ के प्रदेश को फतह कर लिया। वहाँ के शासक नजरमुहम्मद ने भाग कर ईरान मे शरण ली।[६] महाराणा जगतसिंह ने राजसिंह को बादशाह के पास इस विजय के लिए मुबारकबाद देने हेतु दिल्ली भेजा। राजसिंह कुछ समय तक बादशाह की सेवा मे दिल्ली दरबार मे उपस्थित रहा। उसने दिल्ली ठहर कर मुगल साम्राज्य सम्बन्धी अनेक उपयोगी जानकारी प्राप्त की।[७]

बाईजी राज (राजमाता) के साथ राजसिंह गगा स्नान करने सोरमजी गया था। सोरमजी पहुँचने पर राजसिंह और बाईजी राज ने वि० स० १७०५ वैशाख शुक्ल पक्ष पूर्णमासी को (१६४८, बृहस्पतिवार, २७ अप्रैल)

---

४ मान—राजविलास, विलास ३ पद्य ८७-९०, ९३, ९६ और १०५

५ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५२५

६ एस० आर० शर्मा भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० ५११

७ वीर विनोद, पृ० ३४१

सुवर्ण की तुला की।[८] इस यात्रा मे उन्हें बादशाही क्षेत्र मे से होकर जाना पड़ा था। कहीं-कहीं पर रोक-टोक के कारण मुसलमान पदाधिकारियों से छोटे-बड़े संघर्ष भी करने पड़े थे।[९] कुँवर राजसिंह के मन मे तभी से मुसलमानो के प्रति घृणा होने लगी थी।

राजसिंह ने बाल्यकाल से ही मेवाड़ी प्रशासन तथा मुगल दरबार सम्बन्धी गतिविधियो मे सक्रियता से भाग लिया था। अतः जब २३ वर्ष की आयु मे[१०] वह अपने पिता के देहान्तोपरान्त विक्रम संवत १७०६ कार्तिक वदि ४ (ई० स० १६५२, १० अक्तूबर) को मेवाड़ की राजगद्दी पर आरूढ़ हुआ,[११] उसे राजकीय कार्यों और प्रशासन का पर्याप्त अनुभव था।

मेवाड़ मे राज्यासीन और राज्याभिषेक के समारोह पृथक् रूप से आयोजित किये जाते थे। पूर्व शासक का देहान्त होने पर उसका उत्तराधिकारी अपने सिर पर शोक चिह्न के रूप मे पछेवड़ा (दुपट्टा) ओढ़ लेता था। पूर्व महाराणा के दाह-संस्कार के कार्य से निवृत्त होने पर शोक-निवारण का कार्य-क्रम प्रारम्भ होता था। बाकीदास की ख्यात के अनुसार शोक निवारणार्थ पछेवड़ा (दुपट्टा) हटाने का अधिकार पहले तो कोठारिया के ठाकुर को प्राप्त था,[१२] किन्तु बाद मे यह अधिकार सम्भवतः बेदला ठिकाने के राव को प्रदान किया गया था।[१३]

शोक-निवारण के उपरान्त महाराणा के कानों मे मोती पहनाये जाते थे,[१४] फिर वह सुन्दर राजसी वस्त्र पहिनकर तथा आभूषणो से अलङ्कृत होकर राजसिंहासन पर आसीन होता था। उपस्थित सरदार नजर निछावर किया करते थे। महाराणा सरकारी कारखानो व पदो पर अधिकारियो को

---

८ (क) वीर विनोद, पृ० ३२२–२३
(ख) जगन्नाथरायजी के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक २७

९ वीर विनोद, पृ० ३२२–२३

१० मान—राजविलास, विलास ५ पद्य १
पालिय प्रबर कुँआरपद, बरस तेइस बखान।
पाट बइठै पुहवीपति, राजसिंह महारान ॥ १ ॥

११ (क) वीर विनोद, पृ० ४०१
(ख) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५३२

१२. बाकीदास री ख्यात (नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सम्पादित), पृ० १००

१३ वीर विनोद, पृ० २०५८, २१४०

१४ वही, पृ० २१३९–४०

नियुक्ति की घोषणा करता था। उपस्थित चारण आदि राणा को आशीर्वाद देते थे।

इस आयोजन के बाद राणा द्वारा हरिया का समारोह मनाया जाता था। वह भी शोक-निवारण कार्यक्रम का ही एक अंग था। इस अवसर पर महाराणा शहर के बाहर हरियाली का पूजन करने जाया करता था।[१५] हरियाली प्रसन्नता का प्रतीक है, अतः शोक-निवारणार्थ हरियाली पूजन श्रेष्ठकर समझी जाती थी। इस अवसर पर राज्य की ओर से धन की बहुत बडी राशि व्यय की जाती थी।

राज्यासीन के बाद शुभ मुहूर्त के अनुसार निश्चित किये हुए दिन को राज्याभिषेकोत्सव का आयोजन किया जाता था। यह उत्सव नौचोकी महल मे मनाया जाता था।[१६] उस दिन मित्र राजाओ और सरदारो आदि को निमन्त्रित किया जाता था।

मन्त्रोच्चारण युक्त जयघोष से गुंजित वातावरण मे राजा सिंहासनारूढ होता तथा मुकट, छत्र व चँवर धारण करता था। तत्पश्चात् अन्त.पुर से महारानी का पदार्पण होता। इन्द्राणी को अभिवादन कर वह राजसिंहासन पर बैठती थी।[१७] उस समय ढोल नक्कारों, गायनगीत व मन्त्रोच्चारण से समस्त वातावरण गुंजायमान हो जाता था। शास्त्रोक्त विधि से अभिषेक होता

---

१५. (क) ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६४७, पाद-टिप्पणी २
(ख) द्रष्टव्य : मेहता शेरसिंह की वही

१६. वर्तमान महलो मे से जो नौचोकी महल है, वही राज्याभिषेकोत्सव हेतु नियत स्थान रहा। इस महल के चारो ओर तीन-तीन दालान हैं, इसी से इसे नौचोकी महल कहते हैं। इसका निर्माण महाराणा उदयसिंह ने ही करवाया था और यह निश्चित किया गया था कि मेवाड़ के महाराणाओं का राज्याभिषेक इसी स्थान पर हो।

१७. (क) बैकुंठ. अमर सिंहाभिषेक काव्यम्—
रेजतुर्महिषीभूपो भद्रपीठे स्वलङ्कृतो।
तत. पर स्वय राजा कुजरासनमास्थित: ॥१३०॥
(ख) राजपट्टाभिषेक पद्धति, पृ० स० २२
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा उदयपुर
ईन्द्राणी प्रार्थीस्ता तदनुसिंहासनारोहण।
महाराणा के साथ महारानी के राज्यासन पर विराजने की प्रथा का अन्त महाराणा अरिसिंह के समय से हुआ।

सुवर्ण की तुला की।[८] इस यात्रा मे उन्हें बादशाही क्षेत्र मे से होकर जाना पडा था। कहीं-कहीं पर रोक-टोक के कारण मुसलमान पदाधिकारियो से छोटे-बडे सघर्ष भी करने पडे थे।[९] कुंवर राजसिंह के मन मे तभी से मुसलमानो के प्रति घृणा होने लगी थी।

राजसिंह ने बाल्यकाल से ही मेवाडी प्रशासन तथा मुगल दरबार सम्बन्धी गतिविधियो मे सक्रियता स भाग लिया था। अत जब २३ वर्ष की आयु म[१०] वह अपने पिता के देहान्तोपरान्त विक्रम सवत १७०६ कार्तिक वदि ४ (ई० स० १६५२, १० अक्तुबर) को मेवाड की राजगद्दी पर आरूढ हुआ,[११] उसे राजकीय कार्यों और प्रशासन का पर्याप्त अनुभव था।

मवाड म राज्यासीन और राज्याभिषेक के समारोह पृथक् रूप से आयोजित किये जाते थे। पूर्व शासक का देहान्त होने पर उसका उत्तराधिकारी अपने सिर पर शोक चिह्न के रूप मे पछेवडा (दुपट्टा) ओढ़ लेता था। पूर्व महाराणा के दाह सस्कार के कार्य से निवृत्त होने पर शोक-निवारण का कार्य क्रम प्रारम्भ होता था। बाकीदास की ख्यात के अनुसार शोक निवारणार्थ पछेवडा (दुपट्टा) हटाने का अधिकार पहले तो कोठारिया के ठाकुर को प्राप्त था,[१२] किन्तु बाद मे यह अधिकार सम्भवत वेदला ठिकाने के राव को प्रदान किया गया था।[१३]

शोक-निवारण के उपरान्त महाराणा के कानो मे मोती पहनाये जाते थे,[१४] फिर वह सुन्दर राजसी वस्त्र पहिनकर तथा आभूषणो से अलकृत होकर राजसिंहासन पर आसीन होता था। उपस्थित सरदार नजर निछावर किया करते थे। महाराणा सरकारी कारखानो व पदो पर अधिकारियो की

---

८ (क) वीर विनोद, पृ० ३२२—२३
(ख) जगन्नाथरायजी के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक २७

६ वीर विनोद, पृ० ३२२—२३

१० मान—राजविलास, विलास ५ पद्य १
पालिय प्रवर कुंआरपद, वरस तेइस बखान।
पाट बइठे पुहवीपति, राजसिंह महारान ॥ १ ॥

११ (क) वीर विनोद, पृ० ४०१
(ख) ओभा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५३२

१२. बाकीदास री ख्यात (नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सम्पादित), पृ० १००

१३ वीर विनोद, पृ० २०५८, २१४०

१४. वही, पृ० २१३६—४०

नियुक्ति की घोषणा करता था। उपस्थित चारण आदि राणा को आशीर्वाद देते थे।

इस आयोजन के बाद राणा द्वारा हरिया का समारोह मनाया जाता था। वह भी शोक-निवारण कार्यक्रम का ही एक अग था। इस अवसर पर महाराणा शहर के बाहर हरियाली का पूजन करने जाया करता था।[१५] हरियाली प्रसन्नता का प्रतीक है, अत शोक निवारणार्थ हरियाली पूजन श्रेष्ठकर समझी जाती थी। इस अवसर पर राज्य की ओर से धन की बहुत बडी राशि व्यय की जाती थी।

राज्यासीन के बाद शुभ मुहूर्त के अनुसार निश्चित किये हुए दिन को राज्याभिषेकोत्सव का आयोजन किया जाता था। यह उत्सव नौचोकी महल मे मनाया जाता था।[१६] उस दिन मित्र राजाओ और सरदारो आदि को निमत्रित किया जाता था।

मन्त्रोच्चारण युक्त जयघोष से गुंजित वातावरण मे राजा सिंहासनारूढ होता तथा मुकट, छत्र व चँवर धारण करता था। तत्पश्चात् अन्त पुर से महारानी का पदार्पण होता। इन्द्राणी को अभिवादन कर वह राजसिंहासन पर बैठती थी।[१७] उस समय ढोल नक्कारों, गायनगीत व मन्त्रोच्चारण से समस्त वातावरण गुजायमान हो जाता था। शास्त्रोक्त विधि से अभिषेक होता

---

१५ (क) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६४७, पाद टिप्पणी २
(ख) द्रष्टव्य मेहता शेरसिंह की बही

१६ वर्तमान महलो में से जो नौचोकी महल है, वही राज्याभिषेकोत्सव हेतु नियत स्थान रहा। इस महल के चारो ओर तीन-तीन दालान हैं, इसी से इसे नौचोकी महल कहते हैं। इसका निर्माण महाराणा उदयसिंह ने ही करवाया था और यह निश्चित किया गया था कि मेवाड के महाराणाओ का राज्याभिषेक इसी स्थान पर हो।

१७ (क) वैकुंठ अमर सिंहाभिषेक काव्यम्—
रेजतुर्महिषीभूपो भद्रपीठे स्वलकृतो।
तत पर स्वय राजा कुजरासनमास्थित ॥१३०॥
(ख) राजपट्टाभिषेक पद्धति, पृ० स० २२
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा उदयपुर
ईन्द्राणी प्राथीस्ता तदनुसिंहासनारोहण।
महाराणा के साथ महारानी के राज्यासन पर विराजने की प्रथा का अन्त महाराणा अरिसिंह के समय से हुआ।

था। उस समय परम्परा के अनुसार ऊन्दरी गाँव का गमेंती भील राज अपने अगूठे को चीर कर राणा के मस्तक पर टीका किया करता था।[१८] अभिषेक की समाप्ति पर उपस्थित सरदार और राजा लोग महाराणा को उपहार व नजराना प्रस्तुत करते थे। अमरसिंह के काल से मुगलो से सम्बन्ध स्थापित होने पर राणा पहले बादशाही खिलअत और उपहार ग्रहण करता था और तत्पश्चात् अन्य राजाओ व सरदारो से नजराना तथा उपहार स्वीकार करता था। महाराणा अपने सरदारो से बैठा-बैठा ही नजराना लेता था। उस समय किसी को ताजीम नही दी जाती थी।[१९]

राज्याभिषेकोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर राजा हाथी पर सवार होकर नगर परिभ्रमण हेतु निकलता था। महाराणा की सवारी नगर के प्रमुख मार्ग पर होकर गुजरती थी। सामन्त, प्रधान व उच्च अधिकारी भी इस सवारी मे सम्मिलित रहते थे।[२०] नगर परिभ्रमण के उपरान्त महाराणा विष्णु मन्दिर मे देवार्चन हेतु उपस्थित होता था। अमरसिंहाभिषेक काव्य के अनुसार परिभ्रमण के बाद महाराणा अमरसिंह द्वितीय पीताम्बररायजी के मन्दिर मे गया था।[२१]

महाराणा राजसिंह के काल मे भी गद्दीनशीनी व राज्याभिषेक के समारोह धूम-धाम से परम्परागत विधि से ही आयोजित किये गये थे।

ऊपर लिख दिया गया है कि राजसिंह अपने पिता महाराणा जगत-सिंह की मृत्यु के तुरन्त बाद ही मेवाड के सिंहासन पर आसीन हो गया था।

---

१८ टॉड, राजस्थान (१९६० संस्करण), पृ० १८१ और १८३
इस कथन की पुष्टि अमरसिंहाभिषेक नामक काव्य से भी होती है।
दत किरातवर्येण तिलक स्वामिनस्तदा।
परम्परागतेनात्र नैव कार्या विचारणा ॥१२६॥
(अमरसिंहाभिषेक डा० दशरथ शर्मा द्वारा सपादित, मरुभारती वर्ष १, अक ३)
मेवाड के राज्यचिह्न से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।
महाराणा राजसिंह द्वितीय के समय से भील द्वारा तिलक करने की प्रथा समाप्त हो गई।

१९ (क) वीर विनोद, भाग २, पृ० २६६
(ख) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५२०–५२१, पाद टिप्पणी ४

२० राजपट्टाभिषेक पद्धति, पत्र ४६ अ एवम् ब

२१ अमरसिंहाभिषेक, श्लोक १४१–४५

राजसिंह अपने सिंहासनारोहण व शोक निवारण समारोह, हरियाली पूजन आदि से निवृत्त होकर वि० सं० १७०९ मार्गशीर्ष के शुक्ल-पक्ष (नवम्बर १६५२ ई०) में अपने कुल देवता एकलिंगेश्वर महादेव के दर्शनार्थ एकलिंगपुरी पहुँचा।[२२] एकलिंगजी मेवाड़ राज्य के स्वामी और महाराणा उनके दीवान माने जाते थे। इसलिए वहाँ यह रीति प्रचलित थी कि प्रत्येक महाराणा गद्दी-नशीनी या राज्याभिषेकोत्सव के बाद शुभ मुहूर्त में एकलिंगजी जाता था।[२३] वहाँ पूजन करने के पश्चात् मन्दिर के मठाधिपति एकलिंगजी की ओर से दीवान पद के चिह्न स्वरूप तलवार, छत्र, चमर और सिरोपाव महाराणा को देता था।[२४] जिस तरह महाराणा अपने अधीन मेवाड़ी सरदारों को उनके गद्दीनशीनी के उपलक्ष में दस्तूर देता था उसी तरह वह स्वयं एकलिंगेश्वर के मन्दिर से दस्तूर प्राप्त करता था। राजसिंह ने भी मेवाड़ी परम्परा के अनुसार एकलिंगजी के मुख्य पुरोहित से तलवार, छत्र, चमर आदि राजचिह्न स्वरूप प्राप्त किये। इस अवसर पर महाराणा राजसिंह ने मणि (रत्न) युक्त स्वर्ण का वि० सं० १७०९ मार्गशीर्ष शुक्ल-पक्ष की पंचमी (ई० स० १६५२ तारीख २५ नवम्बर) को तुलादान किया।[२५]

ओझाजी ने उदयपुर के विक्टोरिया हॉल संग्रहालय में सुरक्षित शिलालेख के आधार पर राजसिंह द्वारा रत्नों का तुलादान करने का उल्लेख किया है।[२६] यह शिलालेख एकलिंगजी के मन्दिर के सामने एक चबूतरे पर कूंडे-

२२ ओझा उदयपुर राज्य के इतिहास में पृ० ५३२ पर कृष्ण पक्ष लिखता है, किन्तु जगन्नाथरायजी के मन्दिर की प्रशस्ति श्लोक १४ में शुक्ल पक्ष में महाराणा का एकलिंगपुरी में पहुँचना लिखा है जो अधिक विश्वसनीय है।

२३ राजसिंह, अमरसिंह द्वितीय, अरिसिंह आदि ऐसे महाराणा हुए हैं जो अपनी गद्दीनशीनी के तुरन्त बाद राज्याभिषेकोत्सव के पहिले एकलिंगजी के दर्शन हेतु एकलिंगपुरी पहुँचे थे। अत श्री राम शर्मा का कथन कि प्रचलित परम्परा के अनुसार महाराणा राज्याभिषेकोत्सव के बाद ही एकलिंगजी दर्शनार्थ जाता था, माननीय नहीं है।

२४ वीर विनोद, पृ० १४३

२५ जगन्नाथरायजी के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक १४

२६ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५३२

.... राणा श्रीजगत्—

सिंहात्मज श्री राजसिंहनृपति प्रीत्यैकलिंगाग्रतो

रत्नै पूर्णं तुला कृती व्यरचयत् सच्चित्रकूटाधिप ।।१८१।।

राजस्थानी शासकों का सारा दृष्टिकोण ही बदल गया था। वे सभी मुगल सम्राटों के कृपापात्र बनकर उनसे बड़े-बड़े मनसब तथा विविध प्रकार के सम्मान प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे और एक दूसरे से होड सी करने लगे थे। बूंदी के राव रतन हाडा को रावराजा का खिताब प्रदान किया तथा उसके उत्तराधिकारी शत्रुशाल (१६२१-१६५८) को प्रारम्भ में ही तीन हजारी जात तथा दो हजारी सवार का मनसब मिला। बीकानेर के शासक कर्णसिंह ने अपनी स्वामी निष्ठा के फलस्वरूप पाँच हजारी जात, पाँच हजारी सवार का मनसब तथा खालसा का चाटसू परगना प्राप्त किया था। बादशाह ने उसे मिर्जा राजा का खिताब भी दिया था।[31] उधर मारवाड के शासक जसवंतसिंह (१६३८ ई०-१६७८ ई०) को छ हजारी जात व छ हजारी सवार का मनसबदार बनाया गया। इसके साथ साथ उसे महाराजा की उपाधि से भी विभूषित किया। यहाँ से कछवाहा-राठौड प्रतिस्पर्द्धा का काल प्रारम्भ होता है। भविष्य में इसके राजस्थान के लिए अनेक घातक परिणाम निकले।

इस काल की दूसरी विशेषता यह थी कि राजस्थान के राजाओं की राजभक्ति अब व्यक्तिगत न रहकर मुख्यत साम्राज्य तथा सिंहासन के प्रति होने लगी थी। जब शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) ने नूरजहाँ की राजनैतिक चालों से शंकित व सतृप्त होकर १६२२ ई० म विद्रोह का भंडा खडा कर दिया उस समय राणा कर्ण (१६२० ई० से १६२८ ई०) के छोटे भाई भीम के[33] अतिरिक्त किसी भी राजस्थानी नरेश ने इस विद्रोह में शाहजहाँ का साथ नहीं दिया था। मारवाड के राजा गजसिंह (१६१६ ई० से १६३८ ई०), आम्बेर के राजा जयसिंह, बूंदी के राव रतन, बीकानेर के शासक सूरसिंह आदि जहाँगीर के आदेशानुसार शाहजहाँ के विरुद्ध लडे थे। लेकिन जब शाहजहाँ बादशाह बना और दक्षिण के सूबेदार खाजहाँ लोदी ने उसका साथ नहीं दिया तो राजपूत राजा सूबेदार को छोड कर मुगल साम्राज्य की सुरक्षा हेतु, बादशाह शाहजहाँ की सहायता में ही जुटे रहे।[34]

राजस्थान में मुगलों का प्रभुत्व स्थायी रूपेण स्थापित हो जाने के

---

३१ एम० एम० शर्मा हिस्ट्री ऑफ द जयपुर स्टेट (अंग्रेजी संस्करण), पृ० १०१

३२ रेऊ मारवाड का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २१८-२१९

३३ जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १४६

३४ ए० एल० श्रीवास्तव मुगल एम्पायर, पृ० २६५-६७

बाद मुगल सम्राट राजस्थान मे अनेकानेक नए छोटे-छोटे राज्यो की स्थापना करने लगे तथा उन्होने बडे राज्यो के अधीन छोटे राज्यो को उनकी अधीनता से निकाल कर उनका मुगल साम्राज्य के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करने की नीति का अनुसरण किया। किशनगढ, कोटा, नागोर आदि नए राज्यो की स्थापना इसी नीति के परिणामस्वरूप हुई थी। इसी प्रकार राजा भीम सीसोदिया की स्वामी भक्ति व सेवाओ से प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने उसके पुत्र रायसिंह को टोंक तथा टोडे का एक स्वतन्त्र राज्य दिया था जो रायसिंह की मृत्यु के बाद स्थायी नही रह सका। इसके विपरीत राणा अमरसिंह के दूसरे पौत्र सुजानसिंह सीसोदिया को जब शाहजहाँ ने फूलिया परगना प्रदान किया तब उसने शाहपुरा नगर के साथ स्थायी रूपेण शाहपुरा राज्य की स्थापना की। देवलिया (प्रतापगढ), डूगरपुर और बासवाडे के शासको ने अपना सम्बन्ध सीधा मुगल सम्राट से स्थापित किया तथा शाही शक्ति व प्रोत्साहन के कारण वे महाराणा की अधीनता की उपेक्षा करने लगे। मुगलो की इस नीति के परिणामस्वरूप एक तरफ मुगल साम्राज्य की नींव राजस्थान मे सुदृढ हो गई, दूसरी तरफ राजस्थान मे पारस्परिक विरोध एवम् फूट का सूत्रपात भी हुआ। महाराणा जगतसिंह ने देवलिया डूगरपुर तथा बासवाडा को पुन अपने अधीन करने व उनसे कर वसूल करने के लिए सघर्ष किये, फिर भी वे अन्तत मेवाडी प्रशासन से मुक्त ही रहे। महाराणा राजसिंह को भी उन्हें अपने प्रभुत्व मे लाने के लिए सघर्ष करने पडे थे। इनका सविस्तार वर्णन अगले अध्याय मे किया जायेगा।

महाराणा जगतसिंह ने अन्ततोगत्वा मुगलो के साथ एक प्रकार से सतुलित नीति का अनुसरण किया जिसमे उसकी महत्वाकांक्षा व मुगलों की सार्वभौमिकता की पूर्ति हो सके।[३५] जब भी बादशाह शाहजहाँ अपने साम्राज्य वृद्धि व सुरक्षा सम्बन्धी युद्धों मे व्यस्त रहा, महाराणा ने इससे लाभ उठा कर अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये कदम उठाये परन्तु जैसे ही उसने अनुभव किया कि बादशाह उसकी मुगल विरोधी नीति से खिन्न होकर मेवाड पर आक्रमण करने की स्थिति मे है, राणा ने तुरन्त बादशाह को प्रसन्न करने हेतु विनयशीलता तथा आज्ञाकारिता की नीति का अनुशीलन किया। इस नीति का उल्लेख जगतसिंह काव्य के लेखक, रघुनाथ ने निम्न लिखित शब्दों मे किया है —

बलवानपि शक्तेन नृप सधि विधायस[३६]

३५ जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १५०

३६ जगतसिंह काव्य, सर्ग ७, श्लोक ४

ई० स० १६४६ मे ईरान के बादशाह अब्बास द्वितीय ने कन्धार मुगलों से छीन लिया। शाहजहाँ ने कन्धार पर पुन मुगल प्रभुता स्थापित करने हेतु शाहजादा औरंगजेब, सादुल्ला खाँ, मिर्जा राजा जयसिंह आदि के नेतृत्व म एक विशाल सेना भेजी।[३७] इस प्रयास मे वे कन्धार पर अधिकार करने म विफल रहे। इसी प्रकार मई १६५२ ई० व फरवरी १६५३ ई० मे कन्धार को जीतने के अन्य दो प्रयत्न भी असफल रहे। इन असफल सैनिक अभियानो के परिणामस्वरूप मुगलो की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँची और इसके साथ-साथ धन व जन की भी बडी क्षति हुई। स्मिथ महोदय लिखते हैं कि कन्धार के तीन घेरो (१६४६, १६५२ और १६५३) म १२ करोड रुपये व्यय हुए और साम्राज्य को किसी भी तरह का लाभ नही हुआ।[३८] मुगलो की इस तत्कालीन परिस्थिति का महाराणा जगतसिंह ने भी लाभ उठाया। उसने राणा अमरसिंह प्रथम के काल म हुई सन्धि के विरुद्ध चित्तौड के किले की मरम्मत करवाना आरम्भ कर दिया।[३९] जगतसिंह के मृत्योपरान्त इस कार्य को महाराणा राजसिंह ने तीव्रगति से चालू रखा।[४०] मुगल बादशाह शाहजहाँ के लिए यह असहनीय था। अत उसने मेवाड के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने का दृढ सकल्प कर लिया। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी थे, जिससे शाहजहाँ ने मेवाड के महाराणा का मानमर्दन करने हेतु शक्ति का प्रदशन करना चाहा।

गरीबदास महाराणा जगतसिंह का छोटा भाई और महाराणा राजसिंह का चाचा था। वह बादशाह की सेवा मे दिल्ली में उपस्थित था। उसे मुगल सम्राट ने डेढ हजारी जात व सात सौ सवार का मनसब और जागीर प्रदान की थी।[४१] गरीबदास को जैसे ही यह मालूम हुआ कि बादशाह मेवाड के विरुद्ध सेना भेजने के लिए इच्छुक है, वह बिना आज्ञा व स्वीकृति के शाही दरबार छोड उदयपुर चला आया। महाराणा राजसिंह ने गरीबदास को बडे सम्मान के साथ अपनी सेवा मे ले लिया। इससे बादशाह शाहजहाँ राणा से बहुत अप्रसन्न हुआ। उसने गरीबदास की मनसब व जागीर जब्त करली।

---

३७ एस० आर० शर्मा भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० ५१४

३८ (क) वही पृ० ५१६

(ख) ए० एल० श्रीवास्तव मुगल एम्पायर, पृ० ३१०-३११

३९ बी० पी० सक्सेना हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ दिल्ली, पृ० ३१९

४०. वही, पृ० ३१९

४१ वीर विनोद, पृ० ४०२

मेवाड के विरुद्ध सैनिक तैयारी की जाने लगी।[४२]

इन्ही दिनो मे मुगल पदाधिकारियो ने मालवा व अजमेर सूबो के कतिपय मन्दिरो को नष्ट किया और गो वध आदि करना प्रारम्भ कर दिया। इस पर महाराणा के सेवक भी सदा-कदा मुगलो से छेड-छाड करने लगे।[४३] इस प्रकार की घटनाओ की सूचना शाहजहाँ को निरन्तर मिलती रहती थी जिसके परिणामस्वरूप बादशाह का राणा के प्रति आक्रोश बढता जा रहा था। देवलिया का रावत हरिसिंह जो महाराणा जगतसिंह से नाराज होकर मुगल सेवा मे उपस्थित हो गया था, अब महाराणा राजसिंह के विरुद्ध बादशाह को भडकाने का कार्य कर रहा था।[४४]

महाराणा राजसिंह अपने राज्याभिषेक के बाद परम्परागत प्रचलित रीति के अनुसार 'टीका दौड'[४५] की रस्म की पूर्ति के लिए योजना बना रहा था। वह इस रूढ़ी की पूर्ति मेवाड से सलग्न शाही क्षेत्र को लूट कर करने के लिए इच्छुक था। परन्तु मुगल शक्ति का भय भी था। अत महाराणा अवसर की खोज म था। इन सब गतिविधियों से शाहजहाँ अवगत था। उपर्युक्त कारणो से मेवाड के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करना आवश्यक हो गया था।

बादशाह ने अपने दूत चित्तौड भेजकर यह जानकारी प्राप्त करली थी कि किले मे क्या-क्या परिवर्तन किये गये थे। वहाँ सात दरवाजो मे से कई दरवाजो की तो मरम्मत करवाई गई थी तथा कुछ नये दरवाजो का निर्माण भी हुआ था। अनेक ऐसे स्थानो पर जहाँ किले पर चढना आसान था, वहाँ दीवारें खडी करदी गई थी। एक ऐसी दीवार का निर्माण किया

---

४२ वीर विनोद, पृ० ४०२

४३ वीर विनोद, पृ० ४०१

४४ वीर विनोद, पृ० ४०२

४५ वही, पृ० ४०२ पाद टिप्पणी।

'टीका दौड' की रस्म उदयपुर मे परम्परा से प्रचलित थी। जब भी कोई नया राणा मेवाड की गद्दी पर आरूढ़ होता था तो वह इस रीति के अन्तर्गत अपने किसी पड़ोसी शत्रु के शहर व क्षेत्र पर आक्रमण कर लूट खसोट करता था। यदि उस समय कोई बडा शत्रु नहीं होता तो वह अपने देश के ही भीलों व मेरों के गाँवों को लूट कर इस रस्म की पूर्ति कर लेता था।

जो १६ गज ऊँची तथा ३ गज से लेकर १६ गज चौडी थी।[४६]

उपर्युक्त जानकारी प्राप्त करने के तुरन्त बाद बादशाह ने वज़ीर सादुल्लाखाँ के नेतृत्व मे ३०,००० सेना चित्तौड के गढ को नष्ट करने के लिए भेजने की व्यवस्था की। इस फौज म १५०० बन्दूकचियो के अतिरिक्त बहुत से अमीर और मनसबदार भी सम्मिलित थे।[४७] बादशाह ने आम्बेर के राजा जयसिंह को भी आदेश भेज दिया था कि वह अपनी सेना शाही फौजो की सहायता के लिए तैयार रखे।[४८] शायस्ताखाँ को भी आदेश जारी कर दिया गया कि वह आवश्यकता पडने पर अपनी सेना-सहित मेवाड के विरुद्ध सैनिक अभियान म सम्मिलित हो। शाहज़ादा औरगजेब को कहा गया कि वह अपन लडके सुलतान मोहम्मद को एक हज़ार सेना के साथ मन्दसौर मे नियुक्त करे तथा आदेश मिलने पर तुरन्त मेवाड की सीमा मे वह सेना-सहित प्रविष्ट हो।[४९]

शाहजहाँ न वि० स० १७११ आश्विन सुदि ४ (ई० स० १६५४ तारीख ४ अक्टूबर) को शाहजहानाबाद (दिल्ली) से ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की जियारत के लिए मुगल-वाहिनी के पृष्ठ मे अजमेर के लिए प्रस्थान किया।[५०] उसका यह निर्णय था कि महाराणा राजसिंह द्वारा मुगल सेना का चित्तौड में प्रतिरोध करने पर वह स्वय अजमेर मे ठहर कर मेवाड़ विरोधी सैनिक कार्यवाही का सचालन करेगा।[५१]

उक्त सैनिक अभियान के समाचार राजसिंह के पास बहुत पहिले से पहुँच चुके थे। उसने तुरन्त एक शिष्टमण्डल बादशाह की सेवा म उपस्थित होन के लिए भेजा। इस शिष्टमण्डल मे रामचन्द्र चौहान, राघोदास भाला,

---

४६ मुहम्मद वारिस बादशाहनामा १० ब, ६१ अ,
ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३३
यह सूचना बादशाह शाहजहाँ ने अपने गुर्जबरदार अब्दुल बेग से प्राप्त की थी।

४७ इनायतखाँ शाहजहाँनामा, इलियट भाग ७, पृ० १०३

४८ श्रीराम शर्मा महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पृ० २२ पाद टिप्पणी ४६

४९ बी० पी० सक्सेना हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ दिल्ली, पृ० ३२०

५० ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३३

५१ मुहम्मद वारिस बादशाहनामा १२३ ब–१२६,
इनायतखाँ शाहजहाँनामा, इलियट भा० ७, पृ० १०३

सावलदास राठौड और पुरोहित गरीबदास सम्मिलित थे।[५२] बादशाह जब खलीलपुर के शिविर में था उस समय मेवाडी शिष्टमण्डल ने शाहजादा शाहे बुलन्द इकबाल (दाराशिकोह) के माध्यम से महाराणा की बादशाह के प्रति स्वामिभक्ति व ईमानदारी का विश्वास दिलाया तथा अपनी भूल के लिए क्षमा चाही।[५३] बादशाह ने युवराज को दरबार मे भेजने और राणा अमरसिंह के काल में हुई सन्धि के अनुसार १००० सवार दक्षिण में शाही सेवा मे भेजने की शर्तों पर बल देकर मुशी चन्द्रभान[५४] को महाराणा से बातचीत करने हेतु उदयपुर भेजा। चन्द्रभान २३ अक्टूबर (ई० स० १६५४) को उदयपुर पहुँचा। बादशाह शाहजहाँ २७ अक्टूबर (ई० स० १६५४) को अजमेर पहुँच गया और इसी दिन सादुल्लाखाँ भी अपनी विशाल सेना के साथ चित्तौड नगरी मे प्रविष्ट हुआ। मुगल सेना से उस समय सघर्ष करना उचित न समझ राणा ने मेवाडी सेना को चित्तौड से हट जाने के लिए आदेश दे दिया। सादुल्लाखाँ को किला खाली मिला। अधिकांशतः मेवाडी जनता अपने बोरिया बिस्तर, मवेशी, औरतो व बच्चो सहित पहाडो मे सुरक्षा हेतु चली गई। चित्तौड नगर वीरान-सा प्रतीत होने लगा।[५५]

राजप्रशस्ति मे राजसिंह द्वारा मधुसूदन भट्ट को सादुल्लाखाँ से मिलने के लिए चित्तौड भेजने का उल्लेख किया है।[५६] 'महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स' नामक पुस्तक के लेखक श्रीराम शर्मा ने राजप्रशस्ति के इस कथन को तथ्यहीन माना है। उनका कहना है कि राजप्रशस्ति के लेखक रणछोड ने अपने पिता को उच्च कूटनीतिज्ञ के रूप मे दर्शाने हेतु ऐसा लिख दिया है। मधुसूदन को मेवाड के उच्च कूटनीतिज्ञो मे स्थान देना असमीचीन प्रतीत होता है। उनका यह भी कथन है कि चन्द्रभान २३ अक्टूबर को उदय-पुर पहुँच गया था और जब २७ अक्टूबर को सादुल्लाखाँ चित्तौड पहुँचा उस

---

५२ श्रीराम शर्मा, महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पाद टिप्पणी ४६ पृ० २२

५३. इनायतखाँ शाहजहाँनामा इलियट, भाग ७, पृ० १०३–१०४

५४. मुंशी चन्द्रभान पटियाला मे एक ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुआ था। वह फारसी भाषा का बडा विद्वान था। उसने फारसी भाषा मे अनेक ग्रन्थ लिखे थे। उसके लिखे हुए पत्रो का सग्रह 'इन्शाए-ब्राह्मण' नाम से प्रसिद्ध है। मुशी चन्द्रभान के चार पत्रों का अनुवाद वीर विनोद मे पृ० ४०३ से ४१२ तक दिया गया है। चन्द्रभान दाराशिकोह का मुशी था। उसकी मृत्यु ई० स० १६६२ मे काशी मे हुई थी।

समय तक शाहजहाँ की माँगो को स्वीकार करने के लिए महाराणा को उसने राजी कर लिया था। शर्माजी का विश्वास है कि सादुल्लाखाँ और मधुसूदन के बीच संवाद का विवरण केवल कवि कल्पना मात्र है। इस प्रकार की सन्धि वार्ता होना सम्भव नहीं।[५७]

शर्मा जी के उपर्युक्त विचारो से हम पूर्णत सहमत नहीं हैं। मधुसूदन का सादुल्लाखाँ से मिलने के लिए भेजने के तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वीर विनोद के ख्याति प्राप्त लेखक कवि श्यामलदास लिखते हैं कि राजसिंह ने चन्द्रभान के उदयपुर आने के पहिले ही सादुल्लाखाँ से, जो बादशाह के आदेशानुसार किले को नष्ट करने के लिए तुरन्त चित्तौड पहुँचने वाला था, सन्धि वार्ता हेतु मधुसूदन भट्ट और रायसिंह झाला को भेज दिया था।[५८] रायसिंह झाला मेवाड मे अनुभवी योग्य व प्रमुख सरदारो मे से था। वस्तुत मधुसूदन को रायसिंह की सहायता के लिए चित्तौड भेजा गया था। इनको चित्तौड भेजने का सम्भवत मूल उद्देश्य यह था कि वे सादुल्लाखाँ से बातचीत करके उसे गढ को नष्ट न करने के लिए राजी करे। मधुसूदन और झाला अपने उद्देश्य की पूर्ति मे पूर्णतया निष्फल सिद्ध हुए। राजप्रशस्ति मे मधुसूदन और सादुल्लाखाँ के बीच संवाद का उल्लेख किया है। यद्यपि उसमे कल्पना का कुछ संपुट हो सकता है, फिर भी इस तथ्य को पूर्णत निराधार स्वीकार नहीं किया जा सकता।

राजप्रशस्ति मे कहा गया है कि सादुल्लाखाँ ने महाराणा के अपराधो पर प्रकाश डाला।[५९] उसने कहा कि गरीबदास को, जो बादशाह की बिना आज्ञा के दिल्ली छोड कर उदयपुर पहुँच गया था, राणा ने उसे अपनी सेवा मे ले लिया था। इस पर मधुसूदन ने कहा कि राजपूतो के लिए दिल्ली व उदयपुर दोनो स्थान हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मेघसिंह और

---

५५ वीर विनोद, पृ० ४०२–४०३

५६ राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक १३

५७ श्रीराम शर्मा महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पृ० २३–२४

५८. वीर विनोद, पृ० ४१२, डॉ० गोपीनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक 'मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स' मे पृ० १५४ पर रायसिंह झाला के स्थान पर रामसिंह झाला का नाम उल्लिखित है, जो ठीक नहीं है।

५९ राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक १४
खान पंडितसंबुद्धया भट्ट प्रत्युक्तवान्कथ।
गरीबदासो राणेन कथमाकारितोतया ॥१४॥

शक्तिसिंह पहिले उदयपुर से दिल्ली पहुँचे और फिर वे पुन उदयपुर चले आये थे। इस उत्तर से झुँझला कर सादुल्लाखाँ ने मधुसूदन से मेवाडी सेना की सख्या पूछी। उसने सेना की सख्या छब्बीस हजार बतलाई।[६०] सादुल्लाखाँ ने कहा कि एक लाख मुगल फौजो का मुकाबला छब्बीस हजार मेवाडी सेना करने मे कैसे समर्थ होगी? इस पर मधुसूदन ने उत्तर दिया कि उक्त मेवाडी सेना मुगलो की एक लाख सेना के लिए पर्याप्त है।[६१] इस वार्तालाप के परिणामस्वरूप निश्चय ही सादुल्लाखाँ नाराज हुआ होगा। चित्तौड मे १५ दिन रहकर किले के दरवाजों, बुर्जों, परकोटो आदि को गिराकर वह बादशाह शाहजहाँ के आदेशानुसार अजमेर लौट गया।[६२] सादुल्लाखाँ के साथ तनातनी बढ जाने के कारण मुगल मेवाड सौहार्द स्थापन नही हो सका परन्तु चन्द्रभान ने उदयपुर मे राणा से बातचीत कर बादशाह शाहजहाँ और राजसिंह के बीच सुलह व शान्ति करवादी।[६३]

मुन्शी चन्द्रभान का राजकीय शिष्टाचार के साथ उदयपुर मे स्वागत हुआ। राणा से बातचीत हुई, जिसमे मुशी ने कहा कि यद्यपि चित्तौड के किले की मरम्मत करवाना, गरीबदास को मेवाडी सेवा मे लेना, कन्धार अभियान मे शाही फौजो की सहायता हेतु पर्याप्त सेना नही भेजना, दक्षिण मे एक हजार सवार शाही सेवा मे उपस्थित नही रखना, अन्य अवसरो पर भी बादशाह के प्रति राणा द्वारा रूखा व्यवहार अपनाना आदि सगीन अपराध हैं फिर भी बादशाह उन्हे क्षमा कर केवल यही चाहते हैं कि युवराज को तो शाही दरबार मे और किसी सरदार के साथ दक्षिण मे मेवाडी सेना शाही

---

६० राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक १६
पड्विंशतिसहस्राणि मदूटेनोक्तमउत्तवान्
वीर विनोद, पृ० ४६१
श्रीराम शर्मा ने मेवाडी सेना की सख्या बीस हजार बतलाई है जो ठीक प्रतीत नहीं होती। उन्होंने श्लोक के मूलपाठ को ही गलत समझा है—'संविंशतिसहस्रा'—'महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स', परिशिष्ट २, श्लोक १६

६१ राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक १३-२१

६२ इनायतखाँ शाहजहाँनामा, इलियट भाग ७, पृ० १०४,
जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड दि मुगल एम्परर्स, पृ० १५४-१५५

६३. वीर विनोद, पृ० ४०३-४१३; इन्शा-ए-चन्द्रमान, पत्र १-४

सेवा मे भेज दें।[६४] इस पर राणा ने कहा कि चित्तौड से मुग़ल सेना के लौट जाने पर शाही दरबार द्वारा भेजे गये किसी जिम्मेदार पदाधिकारी के साथ वह युवराज को बादशाह की सेवा मे उपस्थित कर देगा। शाहजहाँ ने राणा की इन दोनो शर्तों को स्वीकार कर लिया और शाहजादा बुलन्द इकबाल (दारा) के दीवान शेख अब्दुल करीम को, युवराज को अजमेर लाने के लिए उदयपुर भेज दिया।[६५] राणा ने भी सादुल्लाखाँ के चित्तौड छोडकर चले जाने के बाद शेख अब्दुल करीम के साथ अपने पुत्र सुल्तानसिंह को जिसकी उस समय लगभग छ वर्ष की आयु थी, शाही दरबार म उपस्थित होने के लिए भेज दिया।[६६] युवराज के साथ बेदला के राव रामचन्द्र चौहान आदि आठ मेवाडी सरदारो को भी भेजा था। जब बादशाह अजमेर से लौटता हुआ मालपुरे पहुँचा तब युवराज भी शाही सेवा मे उपस्थित हो गया। बादशाह ने उसका स्वागत किया और उसे उपहार, खिलअत आदि से सम्मानित किया।[६७] उसके साथ आये हुए मेवाडी सरदारो को भी घोडे व खिलअत दिये। बादशाह ने छ दिनो तक उसे अपने पास रक्खा और फिर हाथी घोडे आदि देकर उदयपुर जाने की स्वीकृति प्रदान की।[६८] शाही सैनिक अभियान का प्रधान उद्देश्य पूरा हो चुका था, अतएव शाहजहाँ आगरे की ओर प्रस्थान कर गया।

शाही सेना का सामना करने के लिए अत्युत्सुक होते हुए भी परिस्थितियो के कारण इस बार तो राजसिंह को शान्तिपूर्वक समझौता कर लेने के लिए बाध्य होना पडा लेकिन राणा को यह सन्तोष था कि वह राजकुमार को शाही दरबार में भेजने के पूव मेवाड से शाही सेना हटवाने मे सफल रहा। दारा के बीच-बचाव करने पर भी सादुल्लाखाँ ने चित्तौड की किलेबन्दियो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। शाहजहाँ ने पुर, माडल, खैराबाद, माडलगढ़, जहाजपुर, सावर, फूलिया, बनेडा, हुरडा, बदनौर आदि मेवाडी राज्य के परगने

---

६४. इन्शा ए-चन्द्रभान, पत्र १, वीर विनोद, पृ० ४०३–४०८
६५ इनायतखाँ शाहजहाँनामा, इलियट भाग ७, पृ० १०४
६६ वीर विनोद, पृ० ४१३
६७ इनायतखाँ शाहजहाँनामा, इलियट, भाग ७, पृ० १०३–१०४, राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक २४–२६; इन्शा ए-चन्द्रभान, पत्र ३–१६, वीर विनोद, पृ० ४१३, राजरत्नाकर, सर्ग १०, श्लोक १०
६८ वीर विनोद, पृ० ४१३

हस्तगत कर लिए[६९]। इससे महाराणा को बडी आत्मग्लानि हुई तथा उसके हृदय मे अत्यन्त क्षोभ हुआ। वह अब ऐसे अवसर की प्रतीक्षा मे था जब वह अपने इस अपमान का बदला चुका सके।[७०]

---

६९ वीर विनोद, पृ० ४१४

७० राजरत्नाकर, सर्ग १०, श्लोक १०
'यावन्न कुर्याम् प्रतिकर्म शत्रो तावन्न चान्तर्वपुपस्तु जात' उद्धृत मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १३६ (द्वि० स०)

३

राजसिंह और औरंगज़ेब के मैत्री सम्बन्ध

मेवाड़ के गौरवमय इतिहास में राणा कुम्भा, सांगा, प्रताप आदि यशस्वी महाराणाओं की परम्परा में राणा राजसिंह का नाम भी उल्लेखनीय है। राजसिंह अपने सिंहासनारोहण के समय से ही योजना बद्ध रूप से मेवाड़ के सम्मान व प्रतिष्ठा की वृद्धि हेतु सतत् प्रयत्नशील था।[1] पिछले अध्याय में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि उसने अपने पिता जगतसिंह द्वारा अपनाई गई नीति का अनुसरण किया। अपने पिता द्वारा प्रारम्भ किए गये चित्तौड़ के क़िले की मरम्मत के कार्य को राजसिंह ने गति प्रदान की थी। इससे बादशाह शाहजहाँ का राणा के प्रति आक्रोश बढ़ा तथा उसने अपने वज़ीर सादुल्लाखाँ को चित्तौड़ भेज किले की किलाबन्दी को नष्ट कर नयी व पुरानी सभी दीवारों का तोड़ कर भूमिसात करवा दिया।[2] चित्तौड़ के आस-पास के सभी गाँवों को लूट खसोट कर वीरान बना दिया था।[3] शाही सैनिक अभियान से सन्त्रस्त मेवाड़ी जनता को अपनी रक्षार्थ पहाड़ों में शरण लेनी पड़ी थी। बादशाह ने सीमा पर स्थित कुछ मेवाड़ी परगनों को भी हस्तगत कर लिया था। यद्यपि शाहज़ादा दारा का यह दावा था कि उसने बीच-बचाव कर राणा के संकट को टालने में योगदान दिया था, किन्तु इससे राणा राजसिंह के स्वाभिमान को कोई बल नहीं मिला। इसके विपरीत चित्तौड़ के क़िले को नष्ट-भ्रष्ट करने तथा मेवाड़ी परगनों पर शाही अधिकार होने से राणा के हृदय को ठेस पहुँची थी। उसे परिस्थिति वश बादशाह के सामने नत-मस्तक होना पड़ा था। वस्तुतः वह बादशाह शाहजहाँ से अत्यधिक नाराज था और दारा से भी कोई प्रसन्न नहीं था। वह ऐसे अवसर की खोज में था जब वह

---

१ राजरत्नाकर, सर्ग १०, श्लोक ११

२ इनायतखां शाहजहाँनामा, इलियट भाग ७, पृ० १०४,
जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुग़ल एम्परर्स, पृ० १५४–१५५

३ वीर विनोद, पृ० ४०२–४०३

इस अपमान का बदला ले सके और बादशाह की शक्ति को चुनौती देकर मेवाड़ की खोई हुई प्रतिष्ठा की पुन स्थापना कर सके। भाग्यवश उसे शीघ्र ही ऐसा अवसर मिल गया।

वृद्ध बादशाह शाहजहाँ का स्वास्थ्य कुछ महीनो से निरन्तर गिरता जा रहा था। ई० स० १६५७ के सितम्बर मास मे वह अचानक इतना बीमार पड़ा कि उसके बचने की आशा नही रही। यहाँ तक कि उसके मरने की अफवाह भी सर्वत्र फैल गई।[४] शाहजहाँ के चार पुत्र थे—दारा, शुजा, औरगजेब और मुराद। ये चारो पुत्र बड़े महत्वाकांक्षी थे और सिंहासन प्राप्त करने के लिए सभी बड़े उत्सुक थे। शाहजहाँ का प्रथम बेटा दारा स्वभाव से उदार व धार्मिक प्रवृति का व्यक्ति था। वह अपने प्रपितामह अकबर की भाँति समन्वयवादी सिद्धान्त का समर्थक था। बादशाह का भी उसके प्रति अगाध स्नेह व अनुराग था। उसने दारा को उत्तराधिकारी निर्देशित भी कर दिया था।[५]

शाहजहाँ का द्वितीय पुत्र शुजा योग्य सेनापति, वीर सैनिक और उत्साही नेता था। वह बगाल और उड़ीसा का सूबेदार था। उसने सूबे बगाल मे अपने को बादशाह घोषित कर दिया। एक विशाल सेना के साथ वह दिल्ली और आगरे की ओर रवाना हुआ और पटना तक पहुँच चुका था।[६]

सब से छोटे पुत्र मुराद मे वीरता व साहस की कमी नही थी, किन्तु उसमे सयम और गम्भीरता का सर्वथा अभाव था। उसने भी गुजरात मे अपने को बादशाह घोषित कर दिया था।[७]

शाहजहाँ का तीसरा पुत्र औरगजेब गम्भीर प्रकृति का व्यक्ति था।

---

४ काम्बू : अमल-ए-सलीह, पृ० १२८; मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट भाग ७, पृ० २१३–२१४, काजीम : आलमगीरनामा, इलियट भाग ७, पृ० १७८, यदुनाथ सरकार : औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० ४२

५ मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट भाग ७, पृ० २१४
यदुनाथ सरकार : औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० ४३

६ मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट भाग ७, पृ० २१४
यदुनाथ सरकार : औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० ४३

७ मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट भाग ७, पृ० २१४,
यदुनाथ सरकार : औरगजेब (१६१८–१७०७) पृ० ४६
काजीम : आलमगीरनामा, इलियट भाग ७, पृ० १७८

अपनी भावनाओं को छुपाने का उसमे असाधारण गुण था। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। स्वार्थसिद्धि के लिए वह अत्यन्त निर्दय और घृणित से घृणित कार्य भी कर सकता था। उसमे जैसी दृढता, सगठन शक्ति तथा कार्यक्षमता थी वैसी उसके किसी दूसरे भाई मे नही थी। प्रतिभा, सयमशीलता, नेतृत्व, कूटनीतिज्ञता, अनुभवशीलता और व्यवहार-कुशलता मे वह सर्वोपरि था।[८]

जब औरगज़ेब को यह समाचार मिले कि बादशाह मृत्यु-शय्या पर है और दारा ने सारी शक्ति अपने हाथ मे लेली है, उसने बुद्धिमानी और धैर्य से काम लिया। गोलकुण्डा और बीजापुर के सुल्तानो के साथ उदारतापूर्वक समझौता कर उनसे यथा-सम्भव सहायता प्राप्त करली। शाहजादा मुअज्जम को एक मेवाडी सेना के साथ अपनी अनुपस्थिति मे दक्षिण प्रदेश का प्रबन्धक नियुक्त कर दिया। ख्याति प्राप्त मुगल सेनापति मीर जुमला को औरगजेब ने कैद कर उसका बढिया तोपखाना तथा विशाल कोष हस्तगत कर लिया। इससे औरगज़ेब की सैनिक शक्ति सुदृढ हो गई[९]। यद्यपि उसने अपने आपको बादशाह घोषित नही किया, किन्तु बादशाह बनने के लिये उसने पूरी योजना बनाली थी। उसने अपने भाई मुराद के साथ सन्धि करली जिसके अन्तर्गत मुराद को पजाब, अफगानिस्तान, कश्मीर और सिन्ध देना तय किया गया था। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चय हुआ कि युद्ध मे प्राप्त सामग्री का एक-तिहाई भाग मुराद को मिलेगा। मुराद को अपनी सेना सहित औरगज़ेब से मालवा मे मिलने के लिए कहा गया।[१०]

औरगज़ेब ने अब नर्मदा के सब घाटो पर अपना अधिकार कर लिया।[११] इन सब तैयारियो के बाद औरगज़ेब एक विशाल सेना के साथ उत्तर की ओर अग्रसर हुआ। उसने देखा कि दारा को आम्बेर और मारवाड

---

८ अवधबिहारी पाण्डेय: उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ० ३२४

९ मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट भाग ७, पृ० २१७
यदुनाथ सरकार : औरगज़ेब (१६१८-१७०७) पृ० ४६-५०
औरगज़ेब का गृह-युद्ध से पहिले तैयारी और नीति सम्बन्धी तथ्यों के लिए अदब-ए-आलमगीरी द्रष्टव्य है।

१० यदुनाथ सरकार : औरंगज़ेब (१६१८-१७०७) पृ० ४७
शर्तें स्वय औरगज़ेब के पत्रो मे (अदब-ए-आलमगीरी पृ० ७८), उसके हाकिम आकिलखाँ रजी के इतिहास मे (पृ० २५) और 'तज-कीरात-उस-सलातीन-उस-चगताइयाँ' मे स्पष्ट रूप से दी है।

११. वही, पृ० ४८

के शासक जयसिंह और जसवन्तसिंह का सहयोग प्राप्त है। जयसिंह को सुलेमान शिकोह के साथ शुजा के विरुद्ध भेजा गया था।[१२] जसवन्तसिंह को मालवा की सूबेदारी प्रदान की गई और औरंगज़ेब तथा मुराद को उत्तर की तरफ आने से रोकने के लिए आदेश दिया गया।[13] इन सब गतिविधियों से परिचित, व्यवहार-कुशल और चतुर राजनीतिज्ञ औरंगज़ेब का ध्यान राणा राजसिंह पर गया। औरंगज़ेब यह भलीभाँति जानता था कि ई० स० १६५४ के मेवाड़ विरोधी शाही सैनिक अभियान के फलस्वरूप राणा राजसिंह बादशाह शाहजहाँ और दारा से खिन्न था। औरंगज़ेब ने इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा। उसने शीघ्र ही राणा राजसिंह से पत्र-व्यवहार करना आरम्भ कर दिया तथा उसे वह अपनी ओर मिलाने के लिए सतत् प्रयत्न करने लगा। राणा राजसिंह शाहजहाँ और दारा से वैमनस्य रखता था। अतः उसने औरंगज़ेब का पक्ष लेना ही उचित समझा। महाराणा ने वैसे तो कोई सैनिक सहायता औरंगज़ेब को दक्षिण में नहीं भेजी किन्तु इसके पत्रों का समय-समय पर उत्तर भेजता रहा और औरंगज़ेब को प्रसन्न रखने की चेष्टा करता रहा।

वस्तुतः शाहजहाँ की बीमारी और शाहजादों के सिंहासन प्राप्ति के लिए संघर्ष के फलस्वरूप सर्वत्र फैलने वाली घबराहट, अशान्ति एवम् अनिश्चितता से लाभ उठाने हेतु महाराणा राजसिंह अक्टूबर १६५७ ई० से ही सैनिक तैयारियाँ करने लगा था। वह अपने १६५४ ई० के अपमान का बदला लेने के लिए अधीर हो रहा था।

वीर विनोद में प्रकाशित निशान[१४], जिन्हें औरंगज़ेब ने राणा को प्रेषित किये थे, राणा राजसिंह एवं औरंगज़ेब के पारस्परिक सम्बन्धों पर यथेष्ठ प्रकाश डालते हैं। जब औरंगज़ेब बादशाह बनने की इच्छा से एक विशाल सेना के साथ उत्तर की ओर अग्रसर हुआ तब महाराणा राजसिंह से मदद प्राप्त करने के अभिप्राय से उसने प्रथम निशान अपने विश्वसनीय दूत

---

१२. मुन्तखब-उल लुबाब, इलियट भाग ७, पृ० २१५

१३. वही, पृ० २१७

१४ निशान वे पत्र थे जिन्हें शाहज़ादे, बादशाह को छोड़, अन्य व्यक्तियों को लिखते थे। औरंगज़ेब द्वारा राणा राजसिंह को लिखे गये पाँच निशानों की प्रतिलिपि एवम् अनुवाद वीर विनोद में पृ० ४१५ से ४२४ तक दिया गया है।

१५ वीर विनोद, पृ० ४१५–४१६

इन्द्रभट्ट के साथ उदयपुर भेजा। इन्द्रभट्ट ने औरंगजेब की योजना से राणा को अवगत करवाया और औरंगजेब के लिए उसकी मदद चाही।[१५] इन्द्रभट्ट उदयपुर में तीन दिन राणा से बातचीत कर पुनः औरंगजेब के पास पहुँच गया।[१६] राणा राजसिंह ने भी रघुनाथ के साथ औरंगजेब के पास एक अर्जी भेजी जिसमें राणा ने पुर, माडल आदि परगने (जो शाहजहाँ ने जब्त कर लिए थे) लौटाने के लिए प्रार्थना की थी। इस प्रार्थना के स्वीकार होने पर राणा ने सम्भवतः सैनिक सहायता देने का वायदा किया था। औरंगजेब ने एक अन्य निशान द्वारा राणा को इन परगनों पर अधिकार करने की आज्ञा प्रदान करदी, लेकिन उसे अपने किसी योग्य सेनापति के नेतृत्व में मेवाड़ी सेना उसकी सहायतार्थ शीघ्र भेजने के लिए भी लिखा। औरंगजेब ने इस निशान में स्पष्ट शब्दों में बादशाह बनने की इच्छा व्यक्त करदी थी। औरंगजेब ने एक तलवार और खास खिलअत भेजकर लिखा कि राणाई तलवार, जो हिन्दुस्तान के बादशाह की तरफ से मिलती है, वह हमने अपनी तरफ से भेजदी है।[१७]

औरंगजेब अभी दक्षिण में ही था उस समय इन्द्रभट्ट और व्रजनाथ (राणा राजसिंह द्वारा भेजा गया राजदूत) उसके शिविर में उपस्थित हुए। उन्होंने राणा द्वारा भेजे गये समाचारों से औरंगजेब को सूचित किया।[१८] इस पर औरंगजेब ने राजसिंह को एक और निशान भेजा। इस निशान में औरंगजेब ने राणा को अपने पुत्र के नेतृत्व में मेवाड़ी सेना भेजने के लिए आग्रह किया था और आशा व्यक्त की थी कि यह सेना नर्मदा नदी के उत्तर में उज्जैन के रास्ते पर उसकी सेना में सम्मिलित हो जायेगी। राणा द्वारा की जाने वाली सेवा के बदले में औरंगजेब ने उसकी पदोन्नति करने का आश्वासन भी दिया था और संकेत दिया कि भविष्य में राणा राजसिंह का दर्जा राणा सांगा से भी बढ़कर होगा। राणा के सम्मान हेतु एक सुन्दर जड़ाऊ तुर्रा औरंगजेब की तरफ से भेजा गया।[१९] यह औरंगजेब के सौहार्द का प्रतीक था व साथ ही राणा को अपने विरोधी भाई दारा से विमुख रखने का सफल प्रयास था।

३ अप्रेल, १६५८ को औरंगजेब ससैन्य नर्मदा नदी को पार कर

---

१६ औरंगजेब का दूसरा निशान—वीर विनोद, पृ० ४१७

१७ औरंगजेब का तीसरा निशान—वीर विनोद, पृ० ४२०–४२१

१८ औरंगजेब का चौथा निशान—वीर विनोद, पृ० ४२१–४२२

१९ वही, पृ० ४२२

उज्जैन की ओर अग्रसर हुआ। उज्जैन के निकट पहुँचने पर मुराद की सेना भी उससे आ मिली। धरमत के युद्ध क्षेत्र मे (उज्जैन से लगभग १४ मील दक्षिण पश्चिम मे स्थित) दोनो शाहजादो की सम्मिलित सेना ने १५ अप्रेल को शाही फौज पर धावा बोल दिया।[२०] शाही फौज का नेतृत्व महाराजा जसवन्तसिंह और कासिमखाँ कर रहे थे। युद्ध म जसवन्तसिंह को विजय प्राप्ति दुष्कर थी। कासिमखाँ उसका सहायक था किन्तु वह उसके निर्देश मे कार्य करने के लिए प्रस्तुत नही था। वह प्राय तटस्थ रहा और उसकी सेना का केवल एक भाग युद्ध मे सम्मिलित हुआ। राजपूतो का भयकर नर-सहार आरम्भ हुआ। औरगजेब के वहत्तर तोपखान और श्रेष्ठतर सैन्य सचालन के कारण अन्तत. राजपूतों को पराजित होना पडा।[२१]

औरगजेब ने धरमत के युद्ध मे विजयी होने पर यह खुश खबरी एक अन्य निशान द्वारा राणा राजसिंह के पास पहुँचाई। इस निशान म महाराजा जसवन्तसिंह का घायल होकर रणक्षेत्र से भाग निकलने का वृत्तान्त भी लिखा है। औरगजेब ने राणा राजसिंह को उन परगनो पर जिन्हें शाहजहाँ ने जब्त कर अन्य मनसबदारो को बाँट दिये थे, पुन अधिकार करने की अनुमति दे दी। उक्त निशान मे राणा की पदोन्नति के लिए औरगजेब की तरफ से पुन आश्वासन दिया गया था।[२२]

एक कुशल कूटनीतिज्ञ की भाँति औरगजेब अपनी दक्षिण से उत्तर की ओर बढने की प्रगति का विवरण राजसिंह को समय-समय पर भेजता रहा जिससे वह उसकी उत्तरोत्तर सफलता का सही मूल्याकन कर सके। औरगजेब की राजनैतिक व सामरिक गतिविधियो से राजसिंह को दृढ विश्वास हो गया था कि शाहजहाँ के सभी पुत्रो म औरगजेब अधिक व्यवहार-कुशल व कूटनीतिज्ञ था। उसका बादशाह बनना प्राय निश्चित था। अत राणा ने औरगजेब को सहायता देने मे ही अपना हित समझा। राणा का यह निर्णय नीति सगत कहा जा सकता है।

---

२० विन्सैंट स्मिथ ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इडिया, पृ० ४१०
रेऊ मारवाड का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २२२,
पाद टिप्पणी २।

२१ धरमत के युद्ध के लिए द्रष्टव्य—समकालीन राजस्थानी काव्य ग्रन्थ—
(क) खिड़िया जगा कृत 'राठोड रतनसिंह री वचनिका' (१६५८)
(ख) कुम्भकर्ण कृत 'रतन रासो' (१६७५ ई०)

२२ नर्मदा विजय का निशान—वीर विनोद, पृ० ४२३

धरमत के युद्ध में विजयी होने के पश्चात् औरंगज़ेब ससैन्य आगरे की ओर चढा। वह मई मास मे चम्बल नदी को पार[२३] कर सामूगढ पहुँच गया। २९ मई, १६५८ ई० को दारा की फौजो से एक घमासान युद्ध हुआ। विजयश्री औरंगज़ेब के साथ रही। दारा रणक्षेत्र से भाग निकला और विजयी शाहज़ादे आगरे की तरफ अग्रसर हुए।[२४]

राणा राजसिंह ने इस शाही अव्यवस्था का लाभ उठाया। राणा इस बात से पूर्णतया परिचित था कि अभी केन्द्रीय शक्ति का प्रयोग विद्रोही राजकुमारो को दबाने हेतु किया जा रहा था और राजकुमार अपनी स्वार्थ-सिद्धि मे सलग्न थे। इन परिस्थितियो मे राणा अपना मन्तव्य निस्सन्देह बिना किसी रुकावट के पूरा कर सकता था।

राणा ने बहुत पहिले से ही वि० स० १७१४ आश्विन शुक्ला १० (ई० स० १६५७ तारीख ६ अक्टूबर) को दशहरा पूजन के बाद 'टीका दौड' की रस्म पूरी करने हेतु सैनिक तैयारी प्रारम्भ कर दी थी और बादशाही क्षेत्र को लूटने की योजना बनाली थी।[२५]

वि० स० १७१४ कार्तिक (ई० स० १६५७ नवम्बर) माह मे राणा ने उदयपुर से ससैन्य कूच किया और चित्तौड पहुँच कर तलहटी तथा मालवे के लोगों को सम्मिलित कर एक विशाल सेना का वहाँ जमाव कर लिया था।[२६]

धरमत के युद्ध के पश्चात् औरंगज़ेब ने शाहजहाँ द्वारा जब्त किये गये मेवाडी परगनों पर राणा को अपना अधिपत्य स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान कर दी थी। राणा ने भी अनुकूल समय देखकर बादशाह द्वारा जब्त किये हुए क्षेत्रो को हस्तगत करने तथा शाही मुल्क को लूटने हेतु चित्तौड से प्रयाण किया।[२७] सर्वप्रथम राणा ने मांडलगढ के किले पर अधिकार कर लिया।[२८] यह किला शाहजहाँ ने मेवाड से छीन कर किशनगढ़ के स्वामी

---

२३ मुंशी देवीप्रसाद . औरंगज़ेबनामा, भाग १, पृ० ३३
२४. यदुनाथ सरकार औरंगज़ेब (१६१८–१७०७) पृ० ६७–६६
२५ वीर विनोद, पृ० ४१४
२६. वही
२७. मान—राजविलास, षष्टम विलास, पद्य २
सजि सेन राणाश्री राजसिंह। असुरेस धरा सद्धन अबीह ॥२॥
जी० एन० शर्मा . मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १५७
२८ ओझा · उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३६

रूपसिंह को दे दिया था। रूपसिंह वजीर सादुल्ला खा के साथ चित्तौड की चढाई मे सम्मिलित था। वह सामूगढ़ की लडाई मे दारा की तरफ से लडता हुआ मारा गया था।[२९]

माडलगढ के किले को हस्तगत कर लेने के पश्चात् मेवाडी सेना ने वि० स० १७१५ वैशाख शुक्ल १० (ई० स० १६५८ तारीख २ मई) को खैराबाद को लूट कर पुर, माडल व दरीवा को जा घेरा। वहाँ मुगल सैनिक नियुक्त थे, जिनमे कुछ तो भाग निकले और शेष मौत के घाट उतार दिये गये। इनका सामान महाराणा की फौज ने लूट लिया और माडल, पुर तथा दरीवा के जमीदारो से २२ हजार रुपये दण्ड के वसूल किये।[३०] राणा ने इन परगनो के प्रबन्ध हेतु अपने सैनिक नियुक्त कर दिये।

इसी तरह बनेडे के जमीदारो से छब्बीस हजार रुपये दण्ड के लिये।[३१] तदुपरान्त महाराणा ने शाहपुरा का घेरा डाला। शाहपुरा का अधिकारी सुजानसिंह था। वह महाराणा अमरसिंह प्रथम के भाई सूरजमल का पुत्र था और महाराणा राजसिंह का चाचा था। वह भी चित्तौड अभियान मे वजीर सादुल्लाखा के साथ था। अत राणा ने उसे दण्ड देना चाहा। शाहपुरा वालो से २२ हजार रुपया दण्ड के रूप मे एकत्रित किया गया।[३२] सुजानसिंह बादशाही फौज मे शाहपुरा से दूर मालवा की तरफ था। वह धरमत के युद्ध मे मारा गया था।[३३] इसी प्रकार महाराणा ने सावर, जहाजपुर,

---

२९ मुन्तखब उल लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० २२३,
मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० ३७०, रूपसिंह की वीरता का वर्णन वृन्द कवि ने 'रूपसिंहजी की वचनिका' नामक पुस्तक मे किया है।

३० राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक २५–२६

३१ राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक २७

३२ (क) वीर विनोद, पृ० ४१४ सुजानसिंह व वीरमदेव राणा अमरसिंह के द्वितीय पुत्र सूरजमल (मूता नेणसी ने इन्हें तृतीय पुत्र लिखा है और यह भी लिखा है कि सुजानसिंह को फूलिया पट्टे मे मिला था) के पुत्र थे। अत. वे महाराणा राजसिंह के चाचा थे। ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३७ पाद टिप्पणी

(ख) राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक २८

३३ मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० ४३२–४३३

फूलिया केकड़ी आदि को अपने अधिकार में कर लिया ।[३४] वह अब शाही क्षेत्र को लूटता हुआ मालपुरा पहुँचा ।[३५] राजसिंह के समय में मालपुरा एक बहुत समृद्ध नगर और सैनिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का स्थान था । उस समय यहाँ मुग़ल बादशाह का एक सुदृढ़ थाना भी था । महाराणा ने नौ दिन तक वहाँ ठहर कर उसे लूटा । मुग़ल सैनिक भाग गये और एक बहुत बड़ी धनराशि महाराणा के हाथ लगी ।[३६]

महाराणा अमरसिंह का पोता व भीमसिंह का बेटा राजा रायसिंह टोडे का स्वामी था । वह भी वज़ीर सादुल्लाखां की फौज के साथ चित्तौड़ के किले को गिराने में सम्मिलित था । इस कारण महाराणा ने अपने सेनापति कायस्थ फतहचन्द को तीन हज़ार सैनिक देकर टोडे पर आक्रमण करने हेतु भेजा । उस समय राजा रायसिंह शाहजहाँ के आदेशानुसार मालवा में नियुक्त था । उसकी माता ने ६०,००० रुपये दंड के देकर अपने क्षेत्र की रक्षा

---

३४ वीर विनोद, राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक १९ व २१, पृ० ४१४

३५ टॉड ने अपनी पुस्तक एनाल्स एण्ड एन्टिक्युटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३०१ (१९६० संस्करण) में लिखा है कि गद्दी पर बैठते ही राजसिंह ने मालपुरा पर आक्रमण किया था, किन्तु वैकुठ रचित अमरसिंहाभिषेक काव्य के श्लोक ५२—'समरे विवर लब्ध्वा दाराशाह मुरादयो' के आधार पर युद्ध को ई० स० १६५८ के जून महिने में रखना ही उचित होगा ।

३६ (क) राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक ३१–३६

(ख) मान—राजविलास, छठा विलास, पद्य २८–३१ मान कवि ने मालपुरा को सात दिनो तक लूटने का उल्लेख किया है ।

दलविटिया मालपुरा मुचहो दिसि ऊगम चदन जानि ग्रही ।
तह कीन मुकाम घुरत सु नवक सोच पर्‌यो सुलतान सही ।।
नरनाथ रहै तह सत्त अहोनिसि सोवन मोरस धीर घर ।
चित्रकोट धनी चढि राजसी राण सु मारि उजारिय मालपुर ।।३१।।

(ग) देवबारी अभिलेख, श्लोक २४
दग्ध मालपुरा भिस्य नगर व्यतनोदिह ।
दिनाना नवक स्थित्वा लूटन समकारयत् ।।

चो।[३७] फतहचन्द ने वीरमदेव (सुजानसिंह का भाई और बादशाही नौकर) के नगर को जलाकर भूमिसात कर दिया।[३८] इसके बाद महाराणा ने टोंक, साभर, लालसोट और चाटसू के क्षेत्रो को खूब लूटा।[३९] तत्पश्चात् चातुर्मास के पूर्व ही, जून के महीने के अन्त तक, महाराणा अपनी राजधानी उदयपुर लौट आया। इस 'टीका दौड' अभियान मे राणा को लाखों रुपये की सम्पत्ति मिली।[४०] खोये हुए मेवाडी परगनो को उसने पुन अपने अधीन कर लिया और वह अपने अपमान का यथोचित बदला लेने मे सफल रहा।

यह पहले बताया जा चुका है कि सामूगढ के निर्णायक युद्ध मे विजयश्री

---

३७ (क) राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक २९

(ख) राजा रायसिंह, महाराणा अमरसिंह के पुत्र भीम का पुत्र था। बचपन से ही शाही सेवाओ मे रहा। चित्तौड के गिराने मे सादुल्लाखा के साथ था। अधिक सूचना के लिए द्रष्टव्य मआसिरुल उमरा, भाग १, पृ० ३६५–३६७

(ग) वीर विनोद, पृ० ४१४–४१५

३८ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३७

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक ३०

अहो वीरमदेवस्य पुर महिरव पर ॥

राजन्वह्नौ जुहोति स्मकोपिकोपोद्भटोभट ॥३०॥

३९ राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक ४२

४० वीर विनोद, पृ० ४१४, श्यामलदास मालपुरे की लूट के सम्बन्ध मे लिखते हैं, 'इस शहर की लूट का हाल लोग कई तरह पर बयान करते हैं—कोई कहता है कि एक करोड का माल लूटा, किसी का बयान है कि पचास लाख का माल मेवाड की फौज ने लिया।'

टॉड ने अपनी पुस्तक एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान मे लिखा है कि 'टीका दौड' की धूमधाम की सूचना बादशाह शाहजहां को मिली। इस पर उसने कहा कि मेरा भतीजा (महाराणा कर्णसिंह का पगडी बदल भाई होने से) लडकपन से ऐसी बातें करता है इस पर ध्यान नही देना चाहिए। टॉड का यह कथन माननीय नही। यदि ऐसा शाहजहां को अपने भतीजे के प्रति प्रेम होता तो वह चित्तौड के किले की मरम्मत को नष्ट नही करता तथा मेवाडी परगनो पर शाही थाने नही बैठाता। वस्तुत शाहजहां इस समय स्वय आपत्तिग्रस्त था। वह राणा के विरुद्ध कार्यवाही करने की स्थिति मे ही नही था।

फूलिया केकड़ी आदि को अपने अधिकार में कर लिया।[३४] वह अब शाही क्षेत्र को लूटता हुआ मालपुरा पहुँचा।[३५] राजसिंह के समय में मालपुरा एक बहुत समृद्ध नगर और सैनिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का स्थान था। उस समय यहाँ मुगल बादशाह का एक सुदृढ़ थाना भी था। महाराणा ने नौ दिन तक वहाँ ठहर कर उसे लूटा। मुगल सैनिक भाग गये और एक बहुत बड़ी धनराशि महाराणा के हाथ लगी।[३६]

महाराणा अमरसिंह का पोता व भीमसिंह का बेटा राजा रायसिंह टोडे का स्वामी था। वह भी वजीर सादुल्लाखां की फौज के साथ चित्तौड़ के किले को गिराने में सम्मिलित था। इस कारण महाराणा ने अपने सेनापति कायस्थ फतहचन्द को तीन हजार सैनिक देकर टोडे पर आक्रमण करने हेतु भेजा। उस समय राजा रायसिंह शाहजहाँ के आदेशानुसार मालवा में नियुक्त था। उसकी माता ने ६०,००० रुपये दंड के देकर अपने क्षेत्र की रक्षा

---

३४ वीर विनोद, राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक १६ व २१, पृ० ४१४

३५ टाड ने अपनी पुस्तक एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३०१ (१९६० संस्करण) में लिखा है कि गद्दी पर बैठते ही राजसिंह ने मालपुरा पर आक्रमण किया था, किन्तु वैकुंठ रचित अमरसिंहाभिषेक काव्य के श्लोक ५२—'सगरे विवर लब्ध्वा दाराशाह मुरादयो' के आधार पर युद्ध को ई० स० १६५८ के जून महिने में रखना ही उचित होगा।

३६ (क) राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक ३१–३६

(ख) मान—राजविलास, छठा विलास, पद्य २८–३६ मान कवि ने मालपुरा को सात दिनों तक लूटने का उल्लेख किया है।
दलबिटिया मालपुरा मुचहो दिसि ऊगम चदन जानि ग्रही।
तह कीन मुकाम धुरत सु त्रबक सोच पर्‌यो सुलतान सही।।
नरनाथ रहै तह सत्त अहोनिसि सोवन मोरस धीर धर।
चित्रकोट धनी चढि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुर।।३१।।

(ग) देवबारी अभिलेख, श्लोक २४
दग्ध मालपुरा मिरूय नगर व्यतनोदिह।
दिनाना नवक स्थिरवा लूटन समकारयत्।।

थी।[३७] फतहचन्द ने वीरमदेव (सुजानसिंह का भाई और बादशाही नौकर) के नगर को जलाकर भूमिसात कर दिया।[३८] इसके बाद महाराणा ने टोंक, सांभर, लालसोट और चाटसू के क्षेत्रों को खूब लूटा।[३९] तत्पश्चात् चातुर्मास के पूर्व ही, जून के महीने के अन्त तक, महाराणा अपनी राजधानी उदयपुर लौट आया। इस 'टीका दौड' अभियान में राणा को लाखों रुपये की सम्पत्ति मिली।[४०] खोये हुए मेवाडी परगनों को उसने पुन अपने अधीन कर लिया और वह अपने अपमान का यथोचित बदला लेने में सफल रहा।

यह पहले बताया जा चुका है कि सामूगढ के निर्णायक युद्ध में विजयश्री

---

३७ (क) राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक २९

(ख) राजा रायसिंह, महाराणा अमरसिंह के पुत्र भीम का पुत्र था। बचपन से ही शाही सेवाओं में रहा। चित्तौड के गिराने में सादुल्लाखा के साथ था। अधिक सूचना के लिए द्रष्टव्य मआसिरुल उमरा, भाग १, पृ० ३६५–३६७

(ग) वीर विनोद, पृ० ४१४–४१५

३८ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३७

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक ३०

अहो वीरमदेवस्य पुर महिरव पर ॥

राजन्वन्हौ जुहोति स्मकोपिकोपोद्भटोभट ॥३०॥

३९ राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ७, श्लोक ४२

४० वीर विनोद, पृ० ४१४, श्यामलदास मालपुरे की लूट के सम्बन्ध में लिखते हैं, 'इस शहर की लूट का हाल लोग कई तरह पर बयान करते हैं—कोई कहता है कि एक करोड का माल लूटा, किसी का बयान है कि पचास लाख का माल मेवाड की फौज ने लिया।'

टॉड ने अपनी पुस्तक एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान में लिखा है कि 'टीका दौड' की धूमधाम की सूचना बादशाह शाहजहाँ को मिली। इस पर उसने कहा कि मेरा भतीजा (महाराणा कर्णसिंह का पगडी बदल भाई होने से) लडकपन से ऐसी बातें करता है, इस पर ध्यान नहीं देना चाहिए। टॉड का यह कथन माननीय नहीं। यदि ऐसा शाहजहाँ को अपने भतीजे के प्रति प्रेम होता तो वह चित्तौड के किले की मरम्मत को नष्ट नहीं करता तथा मेवाडी परगनों पर शाही थाने नहीं बैठाता। वस्तुत शाहजहाँ इस समय स्वय आपत्तिग्रस्त था। वह राणा के विरुद्ध कार्यवाही करने की स्थिति में ही नहीं था।

औरंगजेब को ही प्राप्त हुई थी।[४१] इस विजय के शीघ्र बाद वह ससैन्य आगरा पहुँचा। ८ जून १६५८ ई० को औरंगजेब ने आगरे के किले पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ को इस किले में एक बंदी की तरह रखा गया।[४२] २२ जनवरी १६६६ ई० में वहीं उसकी मृत्यु हुई।

१३ जून १६५८ ई० को औरंगजेब ने आगरे से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में राणा राजसिंह की ओर से मेवाड़ के युवराज सुल्तानसिंह ने, अपने चाचा अरिसिंह के साथ सतीमपुर के शिविर में उपस्थित होकर वि० स० १७१५ आषाढ सुदि १ (ई० स० १६५८ तारीख २१ जून) के दिन औरंगजेब को उसकी विजयों के लिए बधाई दी।[४३] उसने खिलअत, मोतियों की कंठी, सिरपेच आदि उपहार देकर युवराज को सम्मानित किया। पाँच छः दिन पश्चात् युवराज सुल्तानसिंह को तो पुनः उपहार आदि देकर विदा कर दिया किन्तु अरिसिंह लगभग डेढ़ माह तक औरंगजेब की सेवा में उपस्थित रहा।

औरंगजेब ने मथुरा के पास अपने भाई मुराद को छल से बन्दी बना लिया और उसे ग्वालियर के किले में भेज दिया जहाँ ४ दिसम्बर १६६१ ई० को उसे फांसी के तख्ते पर लटका दिया।[४४] मुराद को कैदी बनाने के बाद औरंगजेब दिल्ली पहुँचा। २१ जुलाई १६५८ को औरंगजेब शालिमार बाग में सिंहासनारूढ़ हुआ तथा आलमगीर गाजी के नाम से उसने स्वयं को मुगल सम्राट घोषित किया।[४५]

युद्धकाल में राणा राजसिंह की सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप अगस्त

---

४१ मुन्तखब-उल लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० २२२-२२३
यदुनाथ सरकार औरंगजेब (१६१८-१७०७) पृ० ६७-६६

४२ मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० २२६
यदुनाथ सरकार औरंगजेब (१६१८-१७०७) पृ० ७१

४३ राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ८, श्लोक १-३
राजरत्नाकर, सर्ग १०, श्लोक ४६-५३
आलमगीरनामा, पृ० १६६-१६७

४४ मुन्तखब उल-लुबाब, इलियट, भाग ७ पृ० २२६
यदुनाथ सरकार औरंगजेब (१६१८-१७०७) पृ० ७२

४५ मुन्तखब उल-लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० २२६
यदुनाथ सरकार औरंगजेब (१६१८-१७०७ ई०) पृ० ७३
मुंशी देवीप्रसाद औरंगजेबनामा, भाग १, पृ० ३४-३५

७, १६५८ ई० को औरंगजेब ने एक फरमान[४६] राणा को भेजा जिसके अनुसार उनका मनसब बढ़ा कर छः हज़ारी ज़ात और छः हज़ारी सवार का कर दिया जिनमे एक हज़ार सवार दो अस्पा-सेअस्पा[४७] निश्चित किया। इस मनसब वृद्धि के साथ पाँच लाख रुपये और हाथी व हथनी उपहार के तौर पर राणा के पास भेजे गये। बदनोर और माडलगढ के परगने, जिन्हे राजसिंह ने 'टीका दौड' के अभियान मे अपने अधीन कर लिए थे, राणा के पास विधिवत् रखने के आदेश जारी कर दिये गये। इन परगनो के अतिरिक्त डूगरपुर, बासवाड़ा, बसाउ और गयासपुर जो एक लम्बे काल से मेवाड से पृथक् कर दिये गये थे, पुनः राणा के अधिकृत स्वीकार कर लिए गये। बादशाह औरंगजेब ने राणा को अपने युवराज तथा भाई अरिसिंह को सेवा मे उपस्थित करने के लिए लिखा।[४८]

औरंगजेब ने जो पत्र (निशान) दक्षिण से राणा राजसिह को लिख भेजे थे उनसे यह स्पष्ट है कि धरमत के युद्ध तक औरंगज़ेब के बार-बार आग्रह करने पर भी राणा ने उसकी सहायतार्थ मेवाडी सेना नही भेजी थी। फिर प्रश्न यह उठता है कि राजसिह ने औरंगज़ेब को ऐसी कौनसी सेवाएँ प्रस्तुत की थी जिसके फलस्वरूप उसे उतना सम्मानित व पुरस्कृत किया गया। इस प्रश्न के समाधान हेतु यहाँ राणा की सेवाओ का उल्लेख करना

---

४६. फ़रमान, रुक्का अहकाम—ये बादशाही पत्रो के नाम हैं। इन्हे बादशाह किसी दूसरे व्यक्ति से लिखवाता या स्वय लिखता, चाहे वह व्यक्ति जिसे यह पत्र लिखा जाए शाहज़ादा हो या उसकी प्रजा का सामान्य जन या अन्य देशीय शासक (डा० दशरथ शर्मा-परम्परा, भाग २४, पृ० २)

४७. मनसबदारी व्यवस्था के नियमानुसार प्रथम श्रेणी के मनसबदारो के लिए ज़ात और सवारो की सख्या बराबर होती थी। ज़ात से सवारो की सख्या कभी बढती नही थी। जब कभी मनसबदार की पदोन्नति की जाती थी तो उसके सवारो मे से कुछ दो अस्पा-तीन अस्पा (सहअस्पा) कर दिये जाते थे, जिससे उसको आर्थिक लाभ हो जाता था। दो अस्पा सवारो का वेतन मामूली से ड्योढा और तीन अस्पो का दूना मिलता था। (ओझा. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३८ पाद टिप्पणी २)

४८. (क) महाराणा राजसिंह के नाम औरंगजेब बादशाह का फरमान— इसका अनुवाद वीर विनोद, पृ० ४२५–४३२ पर दिया गया है।
(ख) नेणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ० ७६ और ७७ (नागरी प्रचारिणी)

उचित ही होगा। प्रथम तो मेवाडी सेना माधवसिंह सीसोदिया के नेतृत्व[४९] मे उत्तराधिकार युद्ध के प्रारम्भ होने के पूर्व से ही दक्षिण मे औरंगजेब की सेवा मे उपस्थित थी। जब दारा ने केन्द्र की शक्ति हस्तगत करली तो दक्षिण के सभी हिन्दू व राजपूत मनसबदार ससैन्य औरंगजेब की सेवा से विमुख होकर उत्तर की ओर पलायन कर गये थे। उस समय मेवाडी सेना औरंगजेब की सेवा मे दक्षिण मे ही रही। द्वितीय धरमत के युद्ध तक राजसिंह ने शाहजादो के संघर्ष के प्रति तटस्थता का रुख अपनाया था।[५०] वह औरंगजेब के लिए एक विशेष सेवा थी, क्योकि उस समय तक राणा के सिवाय सभी राजपूत सरदार औरंगजेब के विरुद्ध उसके प्रतिद्वन्द्वी भाई दारा को सक्रिय सहयोग दे रहे थे। तृतीय, हम ओझाजी के इस मत से सहमत हैं कि धरमत के युद्ध के पश्चात् राजसिंह ने सम्भवत औरंगजेब की सहायतार्थ एक मेवाडी सेना भी भेजी होगी।[५१] अत औरंगजेब का विजयी होने व गद्दीनशीनी के तुरन्त बाद राणा को पुरस्कृत करना नीति संगत ही था।

औरंगजेब ने विधिवत् बादशाह बनने के बाद शुजा को बगाल और उडीसा के अतिरिक्त बिहार का प्रान्त भी दे दिया था। शुजा कुछ समय के लिए शान्त रहा।[५२] परन्तु जब औरंगजेब दारा का पीछा करता हुआ राजधानी से दूर पजाब मे था, तब अक्टोबर १६५८ ई० मे उसने आगरा पर अधिकार कर शाहजहाँ को बन्दीगृह से मुक्त करवाने का उद्योग किया। वह ससैन्य आगरा की तरफ बढा। औरंगजेब ने साम्राज्य के पूर्वी भाग के रक्षार्थ समुचित प्रबन्ध कर रखा था। अत शाही फौज ने शुजा को खजवा के निकट रोक लिया। औरंगजेब भी द्रुत गति मे ससैन्य वहाँ पहुँच गया। उसने शुजा को परास्त कर दिया।[५३] खजवा के युद्ध म राणा राजसिंह का कुँवर सरदार सिंह मेवाडी सेना के साथ बादशाह की सेवा मे उपस्थित था।[५४]

---

४९ औरंगजेब का पहला निशान—वीर विनोद, पृ० ४१५-४१६

५० औरंगजेब द्वारा राणा राजसिंह को दिये गये निशानो से यह तथ्य स्पष्ट है।

५१ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३८, पाद-टिप्पणी २

५२ अवधविहारी पाडेय उत्तर-मध्यकालीन भारत, पृ० ३३५

५३ मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० २३३-२३६
यदुनाथ सरकार औरंगजेब (१६१८-१७०७ ई०) पृ० ८५-८७

५४. वीर विनोद, पृ० ४३२; राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ८, श्लोक ५ और ६

औरंगजेब शुजा को पराजित कर इलाहाबाद (प्रयाग) की तरफ से लौटा। शाहजादा दारा पंजाब से सिन्ध व कच्छ की तरफ होता हुआ गुजरात पहुँचा। गुजरात के नव नियुक्त सूबेदार शाहनवाजखा ने, जो औरंगजेब से नाराज था, उसका स्वागत किया और उसे आर्थिक सहायता दी।[५५] दारा ने अपनी सेना पुन सगठित की और अब वह मारवाड के महाराजा जसवन्तसिंह के आश्वासन पर अजमेर की ओर रवाना हुआ।[५६] ई० स० १६५९ के फरवरी माह के प्रारम्भ म वह सिरोही पहुँचा। यहाँ से वि० स० १७१५ माघ सुदि २ (ई० स० १६५९ तारीख १५ जनवरी) को दारा न राजसिंह के नाम एक निशान भेजा जिसमे राणा को राजपूतो का शिरोमणी मानते हुये उसने राजसिंह को २,००० सैनिक उसकी सहायता हेतु भेजने के लिए आग्रह किया।[५७] राजसिंह ने दारा के इस निशान पर कुछ भी ध्यान नही दिया। राजसिंह तो प्रारम्भ से ही औरंगजेब के पक्ष मे था। फिर भी राणा ने शिष्टाचार के नाते दारा को लिख भेजा कि उसके लिए शाहजहाँ के सभी बेटे बराबर हैं। जो भी दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ होता है उसी की सेवा मे वह प्रस्तुत रहेगा।[५८] राजसिंह के लिए यह उपयुक्त ही था कि वह इस युद्ध मे सम्मिलित न होता और न ही अपनी शक्ति को क्षीण करता। वह दारा और औरंगजेब के बीच युद्ध को एक तमाशे के रूप मे देखना चाहता था।[५९] १६५९ ई० के मार्च के प्रारम्भ मे दारा ससैन्य अजमेर पहुँचा। उसकी आशा के विपरीत एक भी राजपूत राजा उसकी मदद मे उपस्थित नही हुआ। औरंगजेब ने अपनी कूटनीति से जसवन्तसिंह को भी तटस्थ रहने के

---

५५ वीर विनोद, पृ० ४३२
मुंशी देवीप्रसाद औरंगज़ेबनामा, भाग १, पृ० ४१

५६ राणा राजसिंह को दारा द्वारा भेजा गया निशान।

५७ शाहज़ादा दाराशिकोह का निशान अनुवाद वीर विनोद, पृ० ४३२ और ४३३ पर दिया गया है—

"......... " हम लश्कर समेत सिरोही आ गये हैं, और जल्द अजमेर पहुँचेंगे, हमने अपनी शर्म सब राजपूतो पर छोडी है, और असल मे हम सब राजपूतो के मिहमान होकर आये हैं, महाराजा जशवन्तसिंह भी इस बात पर तैयार हो गया है कि हाजिरी दे, और वह (महाराणा) हर किस्म की मिहर्बानियों के लायक तमाम राजपूतो का सरदार है।"

५८. जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १५८

५९ वीर विनोद, पृ० ४३४

लिए राजी कर लिया था।[६०] १२ से १४ मार्च १६५६ ई० तक दौराई के स्थान पर युद्ध हुआ जिसमे दारा पुन पराजित हुआ और वह १४ मार्च की शाम को रणक्षेत्र से भाग गया। राजसिंह ने एक कुशल राजनीतिज्ञ की भांति मेवाड को इस युद्ध म पृथक् रखा।[६१]

बादशाह शाहजहां के पुत्रो मे सिंहासन प्राप्ति के हेतु हुए युद्धो के फलस्वरूप जो अनिश्चितता, अशान्ति और अराजकता की स्थिति राजस्थान म सर्वत्र व्याप्त थी, दौराई के युद्ध के बाद उसका अन्त हो गया। अब दक्षिणी राजस्थान के कतिपय क्षेत्रो को छोडकर सभी जगह शान्ति व सुव्यवस्था दृष्टिगत होने लगी थी।[६२]

अगस्त ७, १६५८ के शाही फरमान द्वारा औरगजेब ने डूगरपुर, बासवाडा तथा देवलिया (प्रतापगढ) के बसावर (बसाड) और गयासपुर के परगने राजसिंह के अधीन कर दिये थे। ये परगने बादशाह अकबर के काल से कभी स्वतन्त्र और कभी महाराणा के अधीन रहे।[६३] यहाँ इन पर सविस्तार विचार कर लेना समीचीन ही होगा।

डूगरपुर का रावल आसकरण (लगभग १५४९ ई० से १५८० ई० तक) और बासवाडा का स्वामी प्रतापसिंह (लगभग १५३३ ई० से १५७८ ई० तक) ने अकबर की अधीनता स्वीकार करली थी।[६४] वे स्वय को अब मेवाड के राणा के अधीन नही मानते थे। मेवाड के शासको के लिए यह असहनीय था। उन्होने समय-समय पर इन्ह पुन अपने अधीन करने के लिए सघर्ष किये।

ई० स० १६१५ म जहाँगीर और राणा अमरसिंह के बीच एक लम्बे

---

६०. मुशी देवीप्रसाद औरगजेबनामा, भाग १, पृ० ४२
रेऊ मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० २३०

६१ (क) मुंशी देवीप्रसाद औरगजेबनामा, भाग १, पृ० ४२-४३
(ख) आलमगीरनामा, पृ० ३१९-३२०; मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० २४०-२४१

६२ औरंगजेब द्वारा भेजा गया फरमान जिसका अनुवाद वीर विनोद मे पृ० ४२५-४३२ पर देखिए।

६३. वीर विनोद, पृ० ४१४

६४ ओझा राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३, भाग १
डूगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ९३-९४

संघर्ष के बाद सन्धि हो गई थी।[६५] इस सन्धि के अनुसार कुंवर कर्णसिंह मुगल बादशाह की सेवा मे उपस्थित हुआ था। बादशाह ने युवराज को अनेक उपहारों खिलअत आदि से सम्मानित किया और बासवाडा तथा डूगरपुर के परगने भी उसके जागीर मे सम्मिलित कर दिये थे।[६६] महाराणा कर्णसिंह मेवाड के पुनर्निर्माण के कार्य में व्यस्त रहा, अतः उसे डूगरपुर और बासवाडे को अपने अधीन लाने के लिए कार्यवाही करने का समय ही नही मिला। परन्तु उसके पुत्र जगतसिंह ने डूगरपुर और बासवाडे को अपने अधीन करना चाहा। उक्त राज्यो के शासक राणा की अधीनता मे रहना पसन्द नही करते थे। उन्होंने राणा के आदेशो की अवहेलना की। इस पर राणा ने अपने मन्त्री अक्षयराज काबडिया को डूगरपुर और कायस्थ भागचन्द को बासवाडा पर अधिकार करने हेतु ससैन्य भेज दिया। डूगरपुर के शासक पुंजराज (लगभग १६०६ ई० से १६५७ ई० तक) ने अपनी रक्षा पहाडों मे शरण लेकर की। अक्षयराज काबडिया ने डूगरपुर को लूटा और राजमहल के चन्दन के बने हुए झरोखो को तोड दिया। राणा की फौजें कुछ दिन वहाँ ठहर कर मेवाड लौट आईं।[६७] इसी प्रकार कायस्थ भागचन्द ने भी बासवाडे के क्षेत्र को लूटा। महारावल समरसिंह (लगभग १६१५ ई० से १६६० ई० तक) ने २ लाख रुपये दड के देकर राणा की अधीनता स्वीकार करली।[६८]

---

६५ वाकियात-ए जहाँगीरी, इलियट, भाग ६, पृ० ३३६–३४१
तुजुक ए-जहाँगीरी, भाग १, पृ० १३४
बेनीप्रसाद हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, पृ० २०७
जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १३८

६६ बादशाह जहाँगीर द्वारा कुवर कर्णसिंह को दिया गया फरमान इसकी नक्ल वीर विनोद, पृ० २३६–२४६ पर दी गई है। फरमान की तिथि वि० स० १६७२ ज्येष्ठ कृष्ण ८ (हि० १०२४ तारीख २२ रबी-उस्सानी) है।

६७ ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३, भाग १
डूगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १०८
राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ५, श्लोक १८–१६

६८ ओझा राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३, भाग २
बासवाडा राज्य का इतिहास, पृ० ६४
बेडवास गाव की बावडी की प्रशस्ति (ई० स० १६६८) भागचन्द के पुत्र फतहचन्द ने लगवाई थी।
राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ५, श्लोक २७–२८
अमर काव्यम्, पत्र ४४, पृ० २

देवलिया (प्रतापगढ) का शासक जसवन्तसिंह भी मेवाड के प्रभुत्व से मुक्त होना चाहता था। बादशाह जहाँगीर के राज्यकाल के अन्तिम दिनो मे नूरजहाँ तथा उसके भाई आसफखा की ईर्ष्या व शत्रुता के कारण महावतखा को विद्रोह करने के लिए बाध्य होना पडा। अन्त मे शाही फौज से पराजित होकर वह दक्षिण मे शाहजहाँ के पास चला गया।[६९] दक्षिण मे जाते समय वह देवलिया मे ठहरा था। देवलिया के महारावल जसवन्तसिंह ने उसका स्वागत किया था। इसलिये शाहजहाँ के राज्यकाल मे जब वह खानखाना व सिपहसालार बनाया गया, तब से देवलिया के महारावत जसवन्तसिंह का पक्ष लेने लगा था। इससे महारावत को मेवाड से स्वतन्त्र होने हेतु प्रोत्साहन मिला। वह राणा की आज्ञाओ की उपेक्षा करने लगा।[७०]

महाराणा कर्णसिंह के समय से ही बसाड परगने के मोडी गाँव के थाने पर मेवाड की तरफ से रावत जसवन्तसिंह शक्तावत नियुक्त था।[७१] देवलिया के शासक जसवन्तसिंह ने मन्दसौर के फौजदार जानिसारखाँ को मोडी के थाने को हस्तगत करने के लिए उकसाया। उसने स्वय तो इस आक्रमण मे भाग नही लिया किन्तु जानिसारखाँ के सहायतार्थ कुछ सैनिक भेजे थे। मोडी थाने की लडाई मे जसवन्तसिंह शक्तावत व राणा के अन्य राजपूत सैनिक मारे गये।[७२] इससे क्रुद्ध होकर महाराणा जगतसिंह ने देवलिया के जसवन्तसिंह को उदयपुर बुलाया। वह अपने ज्येष्ठ पुत्र महासिंह

---

६९ बनीप्रसाद　हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, पृ० ३६५

७०. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द २, पृ० ५२२

७१. महाराणा उदयसिंह

- महाराणा प्रतापसिंह
- शक्तिसिंह
  - अचलदास
    - नरहरदास
      - जसवन्तसिंह (शक्तावत)
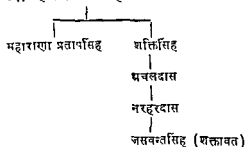
७२ ओझा . राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३, भाग ३,
प्रतापगढ राज्य का इतिहास, पृ० १२८–१२९
मुँहणोत नेणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ० ९६
वीर विनोद, पृ० १०५७

और एक हजार सैनिकों के साथ उदयपुर पहुँचा। वह ससैन्य उदयपुर शहर से एक मील दूर चम्पा बाग मे ठहरा। राणा ने उसे मारने के उद्देश्य से राठौड रामसिंह के साथ एक मेवाडी सेना चम्पा बाग का घेरा डालने हेतु भेजी। चम्पा बाग की लड़ाई मे जसवन्तसिंह अपने ज्येष्ठ पुत्र महासिंह सहित मारा गया।[७३] तदुपरान्त राणा ने राठौड रामसिंह को देवलिया नगर को लूटने के लिए भेजा।[७४] यह घटना सम्भवत. ई० स० १६२८ मे हुई थी। राणा का यह कार्य निन्दनीय था। इसके परिणाम स्वरूप जसवन्तसिंह का दूसरा लडका हरिसिंह (लगभग १६२८ ई० से १६७३ ई० तक) भाग कर बादशाह शाहजहाँ के दरबार मे राणा के विरुद्ध शिकायत लेकर पहुँचा। वहाँ महाबतखाँ की सहायता से हरिसिंह, देवलिया का पट्टा अपने नाम पर लिखवाने मे सफल रहा। देवलिया अब मेवाड के आधिपत्य से मुक्त हो गया। इस प्रकार देवलिया सदैव के लिए राणा के हाथ से निकल गया।[७५]

डूगरपुर और बासवाडा के क्षेत्र कुँवर कर्णसिंह की जागीर मे सम्मिलित किये गये थे जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। सम्भवत महाराणा जगतसिंह के विरोधी कार्यों से असन्तुष्ट होकर बादशाह शाहजहाँ ने उक्त परगनो को मेवाड से पृथक् कर दिया था अन्यथा फिर इन इलाकों का औरंगजेब द्वारा भेजे गये फरमान मे महाराणा राजसिंह के नाम पुन दर्ज

---

७३. ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३, भाग ३
प्रतापगढ राज्य का इतिहास, पृ० १३१–१३२
महारावत जसवतसिंह उदयपुर मे राणा की सेना द्वारा किस वर्ष मे मारा गया, इसके लिए विद्वान एकमत नहीं है। प्रतापगढ़ राज्य की ख्यात, मालकम की रिपोर्ट, प्रतापगढ राज्य के गजेटियर, बाकीदास कृत ऐतिहासिक बातें आदि मे इस घटना का वि० सं० १६९० (ई० स० १६३३) मे होना स्वीकार किया है, जबकि अमरकाव्य, राजप्रशस्ति और वीर विनोद को साक्षी मान कर ओझाजी ने इस घटना का समय वि० स० १६८५ (ई० स० १६२८) माना है।

७४. वीर विनोद, पृ० ३१८–३१६, राठोड रामसिंह जोधपुर के राव चद्रसेन का प्रपौत्र, उग्रसेन का पौत्र और कर्मसेन का पुत्र था। इसे जोजावर का पट्टा प्राप्त था। वह सामूगढ़ की लडाई मे मुराद के तीर से मारा गया था।

७५. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द २, पृ० ५२२

करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।[७६]

बादशाह औरंगजेब का फरमान बासवाड़ा, डूगरपुर और देवलिया के शासको के लिए अनुकूल नही था। उन्होंने महाराणा राजसिंह के आधिपत्य को स्वीकार नहीं किया। इसलिए महाराणा ने ५ अप्रेल १६५६ ई० को कायस्थ फतहचन्द को पांच सौ सवार सहित बासवाडा को अपने अधीन करने भेजा। उसकी सेना मे रावत रुक्मागद (कोठारिया), राठौड दुर्जनसाल (घाणेराव), रावत रघुनाथसिंह (सलूबर), मोहकमसिंह शक्तावत (भीडर), सीसोदिया माधवसिंह आदि अनेक मेवाडी सरदार भी सम्मिलित थे।[७७] मेवाडी सेना का बासवाड़ा पहुँचने पर समरसिंह ने महाराणा की अधीनता स्वीकार करली और उसने एक लाख रुपया, देशदाण (चूगी), दस गाँव, एक हाथी व हथनी महाराणा को भेंट किये।[७८] राजप्रशस्ति महाकाव्य मे यह भी उल्लेख है कि जब समरसिंह महाराणा राजसिंह की सेवा में उदयपुर *उपस्थित हुआ तब दस गाव और दाण का स्वत्व तथा बीस हजार रुपयों की* महाराणा की तरफ से छूट दे दी गई थी।[७९]

डूगरपुर के महारावल गिरधरदास (लगभग १६५७ ई० से १६६१ ई० तक) ने भी फतहचन्द की सेना से घबरा कर बिना लड़े ही महाराणा की अधीनता स्वीकार करली और उसने राणा को नियमित कर देने का वायदा किया।[८०]

देवलिया का महारावत हरिसिंह, फरमान के अनुसार बसाड और गयासपुर के परगने महाराणा को देने के लिए राजी नहीं हुआ। इस पर महाराणा राजसिंह ने अपने प्रधान कायस्थ फतहचन्द को, जो उन दिनो बांसवाडा के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने मे व्यस्त था, देवलिया पर भी

---

७६. ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३, भाग २
बासवाडा राज्य का इतिहास, पाद टिप्पणी पृ० ९७–९८

७७ वीर विनोद, पृ० ४३४–४३५

७८ *ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द तीसरी, भाग २,*
बासवाडा राज्य का इतिहास, पृ० ९९

७९. राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ८, श्लोक १६–२०

८०. (क) ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द तीसरी, भाग १
डूगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ११४
(ख) वीर विनोद, पृ० ४३५
(ग) राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ८, श्लोक ८

आक्रमण करने का आदेश दिया।[८१] बासवाड़ा के कार्य से निवृत्त होकर वह देवलिया पहुँचा। हरिसिंह इस मामले को सुलटाने के लिए बादशाह औरंगजेब के पास दिल्ली पहुँचा। राणा की फौज ने देवलिया पर अधिकार कर लिया। महारावत की माता अपने पौत्र प्रतापसिंह के साथ फतहचन्द के पास उपस्थित हो गई और पाँच हजार रुपये व हथनी देकर उसने सन्धि करली। फिर फतहचन्द प्रतापसिंह को लेकर महाराणा की सेवा मे उदयपुर पहुँचा।[८२] इस घटना की पुष्टि राजप्रशस्ति से भी होती है। इसमे अन्तर केवल इतना ही है कि राजप्रशस्ति मे देवलिया की राजमाता द्वारा पाँच हजार के स्थान पर बीस हजार रुपया देने का उल्लेख किया गया है।[८३]

हरिसिंह का दिल्ली जाना उपयोगी सिद्ध नही हुआ, क्योंकि अभी बादशाह औरंगजेब महाराणा राजसिंह से अत्यधिक प्रभावित था। वह महाराणा को किसी भी प्रकार अप्रसन्न करना नही चाहता था। महारावत को दिल्ली से निराश होकर लौटना पड़ा।[८४] उसके देवलिया मे आने के कुछ समय बाद वि० सं० १७१६ के श्रावण (ई० स० १६५९ जुलाई) मास मे महाराणा का बसाड की तरफ दौरा हुआ। महारावत हरिसिंह, सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त करने के पश्चात्, महाराणा की सेवा मे उपस्थित हो गया। उसने बसाड और गयासपुर के परगनो का दावा छोड़कर महाराणा से मेल कर लिया।[८५] इस अवसर पर हरिसिंह ने महाराणा को पचास हजार रुपये नजर भी किये थे।[८६]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कुशल राजनीतिज्ञ महाराणा राजसिंह ने शाहजादो के गृह-युद्धो से पूर्णतया लाभ उठाया और उसने मेवाड की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन. स्थापित करने मे आशातीत सफलता प्राप्त

---

८१. ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द तीसरी, भाग ३ प्रतापगढ राज्य का इतिहास, पृ० १५५

८२. बेडवास की बावडी की प्रशस्ति (वि० स० १७२५), यह बावडी उदयपुर से देबारी की तरफ जाने वाले मार्ग पर बनी हुई है। मत्री फतहचन्द ने इसको बनवाकर इस पर उक्त प्रशस्ति उत्कीर्ण करवाई थी।

८३. राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ८, श्लोक २१–२४

८४. ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३, भाग ३, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० १५६–१५७

८५. वही, पृ० १५७, वीर विनोद, पृ० ४३५–४३६

८६. राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ८, श्लोक ९–१५

की। महाराणा की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई तथा मुगल दरबार में उसका सम्मान बढ़ा। बांसवाड़ा, डूंगरपुर और देवलिया (प्रतापगढ़) के शासकों के विरुद्ध सैनिक अभियानों ने एक बार फिर कुछ समय के लिए उन्हें मेवाड़ के आधिपत्य को स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया। वे राणा के आदेशानुसार उसकी सेवा में उपस्थित होने लगे। देश में सर्वत्र राणा की प्रशंसा की जाने लगी।

४

औरंगज़ेब और राजसिंह के वैमनस्य का सूत्रपात

महाराणा राजसिंह और बादशाह औरंगजेब के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे। शाहजहाँ के पुत्रों के उत्तराधिकार विषयक युद्धों के प्रारम्भ में राणा की तटस्थता तथा बाद में उसकी सक्रिय सहायता से औरंगजेब राणा का अत्यन्त आभारी था। इसीलिए जब देवलिया का महारावत हरिसिंह राजसिंह के विरुद्ध शिकायत लेकर दिल्ली पहुँचा तो बादशाह औरंगजेब ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।[1] महारावत हरिसिंह को निराश होकर अपने देश में लौटना पड़ा तथा उसे बाध्य होकर महाराणा की शरण में आना पड़ा था। महारावत ने गयासपुर और बसाड परगनों पर राणा का अधिकार भी स्वीकार कर लिया था।[2] महाराणा राजसिंह ने भी औरंगजेब को प्रसन्न रखने हेतु रजत जडित हौदे युक्त एक हाथी और हथनी तथा बहुमूल्य जवाहरात उपहार के रूप में दिल्ली भेजे थे। यह उपहार वि० स० १७१६ आश्विन कृष्ण ८ (ई० स० १६५६ तारीख ३० अगस्त) को उदयकर्ण द्वारा महाराणा की ओर से बादशाह औरंगजेब को नजर किये थे।[3] औरंगजेब ने भी वि० स० १७१६ पौष कृष्ण ८ (ई० स० १६५६ तारीख २७ नवम्बर) के दिन उदयकरण चौहान को एक घोडा और महाराणा के लिए शीतकाल की खिलअत देकर उसे मेवाड जाने के लिए स्वीकृति प्रदान की।[4] इस प्रकार बादशाह औरंगजेब और महाराणा के सम्बन्ध अत्यन्त सौहार्दपूर्ण और मधुर थे। किन्तु यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रही। कालान्तर में एक के बाद दूसरी कुछ

१ ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३ भाग ३
प्रतापगढ राज्य का इतिहास, पृ० १५६–१५७

२ वही, पृ० १५७, वीर विनोद, पृ० ४३५–३६

३ वीर विनोद, पृ० ४३६

४ वही

ऐसी घटनाएँ घटित हुई जिससे महाराणा और बादशाह औरगजेब के बीच सद्भावना मे कमी आगई तथा उनके सम्बन्धो मे कटुता व वैमनस्य का सूत्रपात हुआ, और अन्त मे मारवाड के महाराजा जसवन्तसिंह के देहान्तोपरान्त उसके शिशु पुत्र व उत्तराधिकारी अजीतसिंह के मामले को लेकर राणा का औरगजेब से खुले रूप म सघर्ष प्रारम्भ हो गया।[५] इन्हीं घटनाओ का क्रम बद्ध वर्णन व उनसे महाराणा राजसिंह और औरंगजेब के बीच सम्बन्धो मे जो बिगाड हुआ उसका उल्लेख अगले पृष्ठों म किया जायगा।

किशनगढ[६] व रूपनगर के राजा रूपसिंह[७] ने मुगल बादशाह की सेवा मे उपस्थित रहकर अनेक युद्धो मे भाग लिया तथा अपनी वीरता व स्वामीभक्ति का परिचय दिया था। उसकी सेवाओ से प्रभावित होकर मुगल बादशाह शाहजहा ने उसे चार हजारी जात और तीन हजारी सवार का मनसबदार नियुक्त किया तथा मेवाड से पृथक् कर माडलगढ का किला उसके अधीन कर दिया था।[८] १६५८ ई० में सामूगढ की लडाई मे राठोड रूपसिंह वीरगति को प्राप्त हुआ।[९] इसकी मृत्यु के बाद उसका लडका मानसिंह

---

५ डा० जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६६

६ किशनगढ का राज्य २६ अश १७ कला से २६ अश ५६ कला उत्तर अक्षाश और ७४ अश ४३ कला से ७५ अश १३ कला पूर्व देशान्तर के मध्य था। (मुंहणोत नैणसी की ख्यात, भाग २, पृ० २०८ पाद-टिप्पणी)

७. मोटा राजा उदयसिंह (मारवाड का राजा)
- सवाई राजा शूरसिंह (ई० स० १५६५-१६३८)
  - सहसमल
  - जगमाल
  - भारमल, (उक्त दोनों जाफराबाद की लडाई मे मारे गये।)
- किशनसिंह (किशनगढ राज्य का सस्थापक)
  - हरिसिंह (मृत्यु १६४३ ई० नि सतान)
  - रूपसिंह
    - मानसिंह

८ मआसिरूल् उमरा, पृ० ३६६
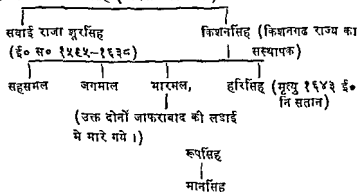
९ आलमगीरनामा, पृ० ३४६-३५१

जिसकी आयु उस समय केवल तीन वर्ष की थी, किशनगढ की गद्दी पर आरूढ हुआ। राजसिंह ने अपने 'टीका दौड' के अभियान मे माडलगढ़ के किले को पुन हस्तगत कर लिया था।[१०] इस प्रकार किशनगढ की स्थिति अभी दयनीय थी।

बादशाह औरंगजेब ने मानसिंह की बहिन चारुमती की सुन्दरता के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुन रखा था। उसने चारुमती (रूपमती) से विवाह करने की इच्छा प्रकट की और इसका सन्देश किशनगढ के शासक के पास पहुँचाया। मानसिंह व उसके सभासदो को विवश होकर इस शादी के प्रस्ताव को स्वीकार करना पडा।[११]

अकबरनामा व अन्य फारसी ग्रन्थो मे जगह-जगह इसका उल्लेख है कि अमुक हिन्दू व राजपूत राजा ने बादशाह से प्रार्थना की कि उसकी लडकी बडी सुन्दर है, अत उस वह अपने अन्त पुर मे ले लें। हम श्यामलदास के इस मत से सहमत हैं कि फारसी इतिहासकारो का यह कथन केवल दिखावा मात्र व खुशामद से भरा हुआ है।[१२] उस समय हिन्दू व राजपूत राजा सामान्यत अपनी लडकी बादशाह को देने मे गर्व का अनुभव नही करते थे। समाज भी इसे हेय समझता था। वस्तुत जब इसके लिए उन पर दबाव डाला जाता था तभी, वे विवश होकर इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार करते थे। स्वेच्छा से नही वरन् राजनैतिक कारणो व अपनी दयनीय स्थिति के फलस्वरूप लाचारी से उन्हें अपनी लडकियाँ बादशाह को देने के लिए बाध्य होना पडता था। यथा सम्भव वे अपनी लडकियाँ बादशाह को नहीं देने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। रीवा के बघेलो ने मुगल सम्राट से वचन ले लिया था कि वे अपनी लडकियो

---

१० ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५३६

११. (क) देबारी के भीतर त्रिमुखी बावडी की प्रशस्ति

(ख) मान-राजविलास, सप्तम विलास, पद्य २३–२४

दोहा

मानसिंह नृप सोचि मन, तुरक विचारिस तप्प।
कन्या तब ब्याहन कही, औरंगजेवहि अप्प ॥२४॥

(ग) टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्युटीज ऑफ राजस्थान, भाग १, पृ० ३०१

१२. (क) वीर विनोद, पृ० ४३७

को शाही रनिवास मे नही भेजेंगे।[१३] इसी प्रकार जब बूंदी मेवाड से पृथक हुआ उस समय बूंदी के शासक ने बादशाह अकबर से इस बात की स्वीकृति प्राप्त करली थी कि बूंदी की बहिन-बेटी मुग़ल शाही परिवार मे नही ब्याही जायेगी।[१४] बादशाह जहाँगीर ने जयपुर के राजा मानसिंह के बेटे जगतसिंह की लडकी से विवाह करने का प्रस्ताव रखा था। इसका विरोध लडकी के नाना बूंदी के राव भोज ने किया, जिससे बादशाह अत्यधिक अप्रसन्न हुआ और उसने बून्दी के राव को इस अपराध के लिए काबुल से लौटकर दड देने का निश्चय किया था। परन्तु उसके काबुल से लौटने के पूर्व ही भोज का देहान्त हो गया जिससे वह कुछ न कर सका।[१५] महाराणा अमरसिंह द्वितीय ने ई० स० १७०८ तारीख २५ मई को अपनी पुत्री चन्द्रकुँवरी का विवाह कछवाहा राजा सवाई जयसिंह के साथ किया तब यह निश्चय किया गया कि इस विवाह से यदि कोई कन्या उत्पन्न हो तो उसका विवाह मुसलमानो के साथ न किया जाय।[१६]

उपर्युक्त तथ्यो से यह स्पष्ट है कि राजपूत राजा अपनी बहिन व बेटियों को सामान्यत. स्वत. खुशी से मुगलों को नही देते थे। यदि ऐसा होता तो फिर राजपूत लडकियो के विवाह अन्य मुसलमान सरदारो के साथ भी सम्पन्न होते, जिनका सर्वथा अभाव-सा ही दृष्टिगत होता है।

चारुमती को जब इस बात की सूचना मिली कि उसका विवाह बादशाह औरगजेब से होना निश्चित कर दिया गया है तो उसे इसका अत्यन्त दुःख हुआ[१७] तथा उसके मन मे द्वन्द्व उत्पन्न हो गया। चारुमती के पिता राठौड रूपसिंह परम वैष्णव थे और इसका प्रभाव किशोरी चारुमती पर भी पडा था।[१८] उसे एक मुसलमान के साथ वैवाहिक जीवन व्यतीत करना असहनीय था। उसने अपने परिवार के सदस्यो को स्पष्ट शब्दो मे चेतावनी दे दी थी कि

---

१३. वीर विनोद, पृ० ४३७

१४. टॉड : एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, भाग २, पृ० ३८३
जगदीशसिंह गहलोत: राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ११२

१५. बगाल ए० सो० का ई० स० १८८८ का जर्नल, भाग १, पृ० ७५

१६. वीर विनोद, पृ० ७७१,
टॉड: एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, भाग १, पृ० ३१८
वशभास्कर, पृ० ३०१७–१८

१७ मान राजविलास, सप्तम विलास, पद्य २५–२६

१८. वीर विनोद, पृ० ४३८

यदि उसका विवाह बादशाह औरंगजेब के साथ किया गया तो वह अन्न-जल का परित्याग कर जहर खाकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेगी।[१६] किशनगढ के राजपरिवार मे विषम सकट उत्पन्न हो गया था। औरंगजेब को नाराज करने की क्षमता उनमे नही थी। अत: वे चारुमती का विवाह औरंगजेब से करने के लिए विवश थे।[२०] चारुमती को जब अपने बचाव के लिए कोई अन्य उपाय दृष्टिगत नही हुआ तब उसने महाराणा राजसिंह की शरण ली। उसने एक पत्र लिख कर ब्राह्मण के साथ महाराणा राजसिंह के पास भेजा, जिसमें उसने अपनी दु:खपूर्ण गाथा का विवरण दिया और अन्त मे उसने राणा को सविनय प्रार्थना की कि वह तुरन्त किशनगढ आकर उससे विवाह कर क्षत्राणी की लज्जा व धर्म की रक्षा करे।[२१] यदि हिन्दू शिरोमणी, सूर्यवंशी राणा समय रहते किशनगढ़ नही पहुँचा तो वह विषपान कर अपने जीवन का अन्त कर लेगी।[२२] महाराणा राजसिंह ने तुरन्त ससैन्य किशनगढ की ओर प्रस्थान किया। उसने वहाँ पहुँच कर मानसिंह व अन्य

---

१६. वही, पृ० ४३८-४३९

२०. वीर विनोद के लेखक श्यामलदास अपनी पुस्तक मे पृष्ठ ४३८ पर लिखते हैं कि राजपूताने मे तो यह मान्यता रही है कि औरंगजेब ने रूपमती को अपने अन्त:पुर मे प्रविष्ट करवाने हेतु अहृदी और नाजिर लोगों को ससैन्य किशनगढ भेज दिया था। टॉड ने भी अपनी पुस्तक एनाल्स एण्ड एन्टिक्युटीज ऑफ राजस्थान, भाग प्रथम, पृ० ३१० पर लिखा है कि औरंगजेब ने रूपमती को किशनगढ़ से शाही अन्त:पुर मे ले आने के लिए २,००० सवार भेज दिये थे। राणा राजसिंह शाही फौज को परास्त कर चारुमती को अपनी राजधानी उदयपुर ले आया।

२१. (क) मान-राजविलास, सप्तम विलास, पद्य ३१-३७

लहि औसरि सुन्दरि पत्र लिखें, चित्रकोट धनी अवरू' यु राखें।
हरि ज्यों सु रुकमनि लाज राखी, अबला यों राखहु आस मुखी
गजराज तजै खर कौन गहैं, सुर वृक्ष छतै कुन आक चहे।
पय पान तजै विष कौन पियैं, लहि पाचरू कार्चहि कौन लियै
नर नायक तो सम और नहीं, सरणागत बत्सल तूज सही।
प्रभु के सुर लुलि लुलि पाय परौं, कर जोरि इती अरदास करौं

(ख) टॉड : एनाल्स एण्ड एन्टिक्युटीज ऑफ राजस्थान, भाग प्रथम, पृ० ३१०

२२. वीर विनोद, पृ० ४३९

राजपरिवार के सदस्यों को दिखावे के तौर पर कैद कर लिया और चारुमती से विधिवत् विवाह कर वह उसे उदयपुर ले आया जहाँ वर-वधु का भव्य स्वागत किया गया।[२३] महाराणा का यह एक साहसपूर्ण कार्य था। इस घटना की चर्चा सर्वत्र फैली और सभी यह अनुमान करने लगे थे कि औरंगजेब महाराणा के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करेगा।[२४]

देवलिया का शासक हरिसिंह जो महाराणा से पहले ही अप्रसन्न था, सुअवसर देख, औरंगजेब को इस घटना की सूचना देने दिल्ली पहुँचा तथा उसने बादशाह को राजसिंह के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने के लिए उकसाया।[२५] औरंगजेब इस समाचार को सुन कर बहुत क्रुद्ध हुआ किन्तु राणा के विरुद्ध इस बात को लेकर सेना भेजना उसने उचित नहीं समझा क्योंकि वह आम जनता में इस प्रकार की धारणा उत्पन्न नहीं होने देना चाहता था कि रूपमती जिसका विवाह बादशाह औरंगजेब से होना तय हुआ था उसे राणा राजसिंह विवाह करके ले गया। इसमें बादशाह की हीनता का प्रदर्शन होता था। बादशाह ने अन्य प्रकार से राणा को दंडित किया। उसने गयासपुर और बसाड के क्षेत्र मेवाड से पृथक कर महारावत हरिसिंह को दे दिये[२६] और महाराणा को एक फरमान लिखा जिसमें शाही हुक्म के बिना किशनगढ़ जाकर चारुमती से विवाह करने के लिए उसे अपनी सफाई प्रस्तुत करने को

---

२३. (क) राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ८, श्लोक २९–३०
[इस अभियान की तिथि वि० स० १७१७ (ई० स० १६६०) थी]
(ख) मान-राजविलास, सप्तम विलास, पद्य ९९–१०६
(ग) वीर विनोद, पृ० ४३९

२४. वीर विनोद, पृ० ४३९

२५. ओझा राजपूताने का इतिहास, तीसरी जिल्द, तीसरा भाग, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ० १५८

२६ ओझा : वही, वीर विनोद, पृ० ४३९
महारावत हरिसिंह का गयासपुर और बसाड पर कब अधिकार हुआ यह स्पष्ट नहीं है, किन्तु महाराणा के किशनगढ़ चारुमती से विवाह करने के जाने का समय राजप्रशस्ति महाकाव्य में वि० स० १७१७ (ई० स० १६६०) दिया है और चौहान उदयकर्ण राजसिंह का प्रार्थनापत्र लेकर बादशाह के पास वि० स० १७१८ (ई० स० १६६१) में पहुँचा था। अत वि० स० १७१८ (ई० स० १६६१) के लगभग इन परगनों पर महारावत का अधिकार होना सम्भव है।

५

शान्ति व समृद्धि का काल

किशनगढ की राजकुमारी चारुमती का विवाह महाराणा राजसिंह के साथ सम्पन्न होने की घटना के परिणामस्वरूप बादशाह औरगजेब और महाराणा के सम्बन्धो म क्षणिक तनाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। किन्तु नीतिकुशल औरगजेब ने इस घटना को अधिक महत्व नही दिया। उसने इसे मुगल-प्रभुसत्ता के विरुद्ध चुनौती के रूप मे नहीं समझा और न उसने इसे अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न ही बनाया। किन्तु उसने परोक्ष रूप से महाराणा को दड अवश्य दिया। जैसा कि पिछले अध्याय मे उल्लेख कर दिया गया है कि उक्त घटना के कारण ही महाराणा को गयासपुर, बसाड आदि परगनों से सदैव के लिए हाथ धोना पडा था।[1] राणा तत्कालीन परिस्थितियो से पूर्णतया परिचित था। वह उक्त परगनो के प्रश्न को लेकर कोई ऐसा कदम उठाने के पक्ष मे नहीं था, जिससे बादशाह रुष्ट हो और मेवाड के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने के लिए उद्यत हो जाये। राणा ने खोये हुए परगनो को पुन प्राप्त करने के लिए केवल शान्तिमय उपायों का प्रयोग किया। उसन इस सम्बन्ध मे सम्राट के पास प्रार्थनापत्र भेजा तथा उसका निजी दूत व्यक्तिगत रूप से औरगजेब को अर्ज करने के लिए दिल्ली दरबार मे उपस्थित हुआ।[2] बादशाह ने परगने तो राणा को नहीं लौटाये परन्तु उसके दूत को सम्मानपूर्वक उपहार आदि देकर उदयपुर जाने की स्वीकृति प्रदान

---

१ (अ) ओझा राजपूताना का इतिहास, तीसरी जिल्द, भाग तीसरा, प्रतापगढ राज्य का इतिहास, पृ० १५८

(ब) वीर विनोद, पृ० ४३६

२ जी० एन० शर्मा : मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६० राणा की ओर से बादशाह औरगजेब को दिया गया प्रार्थनापत्र वीर विनोद, पृ० ४४०, ४४२, ४४३।

की।[3] आलमगीरनामा ग्रन्थ से स्पष्ट है कि इस घटना के बाद भी राणा अनेकानेक अवसरों पर अपने युवराज को सरदारों व सैनिकों सहित शाही दरबार मे सेवार्थ भेजता रहता था। बादशाह भी उन्हें यथोचित उपहार, खिलअत आदि से सम्मानित किया करता था।[4]

वि० स० १७१७ भाद्र पद शुक्ल ६ (ई० स० १६६० तारीख ३ सितम्बर) को महाराणा राजसिंह की तरफ से सूरसिंह आलमगीर के पास पहुँचा था। उसे बादशाह ने घोडा और खिलअत देकर विदा किया।[5] इसी प्रकार औरंगजेब ने राजसिंह के लिए वि० स० १७३१ पौष शुक्ल २ (ई० स० १६७४ तारीख १६ दिसम्बर) को अपने १८ वें जुलूस के उपलक्ष मे खासा खिलअत, जडाऊ जमधर और फ़रमान भेजे थे।[6] अत. मेवाड और मुग़ल राज्य के सम्बन्ध पूर्ववत् मैत्रीपूर्ण बने रहे।

मुग़लो के साथ अच्छे सम्बन्ध होने से राणा राजसिंह को मेवाड की आन्तरिक स्थिति को सुधारने, मित्रो की सहायता करने, सहयोगी सरदारो को भूमि बाटने तथा जनोपयोगी कार्य करने का अवसर प्राप्त हो गया।

मेवाड राज्य के दक्षिणी भाग मे 'मेवल' नामक प्रदेश प्रसिद्ध था, जहाँ अर्द्ध-सभ्य मीणा जाति के लोग अधिक सख्या में रहते थे। वि० स० १७१६ (ई० स० १६६२) मे इन मीणो ने राणा के विरुद्ध सिर उठाया और प्रदेश को लूटना चालू किया। इस पर राणा ने अपने प्रधान फतहचन्द व अन्य उमराव सरदारों के नेतृत्व मे राजकीय सेना मीणो को दबाने हेतु भेजी। इस सेना ने वरापाल, नठारा, पडूना, बीलक, सगतडी, सराडा, घनवावाडा इत्यादि क्षेत्रों को नष्ट कर मीणो के गाव, मकान व पशु लूट लिए। बहुत से मीणे मौत के घाट उतार दिये गये व अन्य कैद कर लिए गये। महुवा तथा आम के वृक्ष कटवा दिये, क्योंकि ये उनकी आमदनी के मुख्य स्रोत थे। इस प्रकार मीणों की शक्ति का उन्मूलन कर दिया। मानसिंह (सारंगदेवोत) व अन्य स्वामीभक्त सरदारों को इस विजय के उपलक्ष में सिरोपाव आदि देकर इस उद्देश्य से मेवल प्रदेश उन्हें जागीर मे दे दिया गया कि वे वहाँ लुटेरों व

---

३ वीर विनोद, पृ० ४४२-४४३

४. आलमगीरनामा (फारसी मूल), पृ० ३४१, ४३४, ४५४, ६६४, और ८६६।

५ वीर विनोद, पृ० ४५१-५२

६ वीर विनोद, पृ० ४५४

अर्द्ध-सभ्य जातियों को सदैव दबाए रखेंगे।[७]

लगभग १६६७ ई० में मीणों के नेता पीप्पा को महाराणा की शरण में उपस्थित होने तथा क्षमायाचक बनने पर राणा ने सहाडा जिले में जदोली गाँव उसे जागीर में देकर पुन बसाया।[८] इस सैनिक कार्यवाही से सम्पूर्ण क्षेत्र में पुन शान्तिमय व व्यवस्थित जीवन का प्रादुर्भाव हुआ।

महाराणा राजसिंह के राज्य काल के प्रारम्भिक सैनिक अभियानों में जिन लोगों ने सेवाएँ अर्पित की थी उन सभी को महाराणा ने भूमि व जागीर देकर उनका सम्मान किया। जहाजपुर के निकट कल्याण गाँव व माडल जिले में भावली गाँव जागीर में दिए गये, जिनका उल्लेख उदयपुर के राजकीय पत्रों में किया गया है। इसी प्रकार महाराणा ने प्रसन्न होकर केसरीसिंह और रतनसिंह को क्रमश पारसोली और सलूम्बर की जागीरें प्रदान की और उन्हें प्रथम श्रेणी के जागीरदारों में स्थान दिया।[९] सिरोही के महाराव अखेराज को, जो *राजसिंह का मित्र था*, कैद से मुक्त करवा कर *सिरोही के सिंहासन* पर पुन बैठाने में राणा ने सहायता दी। यहाँ मेवाड का सिरोही राज्य के साथ सम्बन्धों पर सविस्तार विचार कर लेना उपयुक्त ही होगा।

मेवाड और सिरोही राज्य के बीच प्राचीन काल से ही वैवाहिक सम्बन्ध होते आये हैं। महाराव सुरतान (१५७१-१६१० ई० स०) का विवाह राणा अमरसिंह प्रथम की पुत्री से हुआ था।[१०] सुरतान का लडका व उत्तराधिकारी राजसिंह, जो मेवाड का दोहिता था, पृथ्वीराज के द्वारा मार दिया गया, किन्तु कुँवर अखेराज की जान बच गई। राजसिंह के बाद अखेराज सिरोही की राजगद्दी पर आसीन हुआ।[११] अखेराज की बहिन कमलकवर का विवाह उदयपुर के महाराणा करणसिंह के साथ हुआ था। ई० स० १६२७ म मेवाड के महाराणा करणसिंह का स्वर्गवास हुआ और महाराणा जगतसिंह मेवाड के राजसिंहासन पर बैठा। उसने ई० स० १६२८ में सिरोही

---

७ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक ३१-३३
श्रीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स' मे सर्ग ७ लिखा है, वह सही नहीं है। श्लोक ३१ से ३३ है, ३० नहीं।
(ब) वीर विनोद, पृ० ४४७

८ जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६१

९. वही

१० ओझा, सिरोही राज्य का इतिहास, पृ० २४४

११ वही, पृ० २४६-२५०, मुहणोत नैणसी की ख्यात पृ० १३७

राज्य पर आक्रमण करने हेतु अपनी सेना भेज दी। मेवाड़ी फौज ने सिरोही राज्य के अनेक गाँव लूट लिए। इस घटना से सिरोही और मेवाड़ के सम्बन्ध बिगड़ गये थे।[१२] किन्तु १६५२ ई० मे महाराणा राजसिंह मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हुआ उस समय महाराव अखेराज ने मेवाड़ से अपनी मैत्री पुन. दृढ़ करली।[१३]

महाराव अखेराज का बड़ा लड़का उदयभान अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध आचरण करने लगा जिससे पिता और पुत्र के बीच सम्बन्धों मे निरन्तर कटुता बढ़ने लगी। उदयभान सिरोही राज्य के बागी सरदारो से मिलकर अपने पिता को गद्दी से पदच्युत करने के लिए षड्यंत्र करने लगा। १६६३ ई० मे एक दिन अवसर पाकर उसने अपने पिता महाराव अखेराज को कैद कर लिया।[१४]महाराणा राजसिंह महाराव अखेराज का मित्र था। अत उसने पहले उदयभान को समझाने का प्रयास किया किन्तु जब वह महाराणा के कहने पर भी अपने पिता को कैद से मुक्त करने के लिए उद्यत नही हुआ तो फिर राणा ने राणावत रामसिंह के नेतृत्व मे एक मेवाड़ी सेना अखेराज की सहायतार्थ सिरोही भेजी। इस सेना के पहुँचते ही उदयभान पहाडो मे भाग गया। राणावत रामसिंह ने महाराव को पुनः सिरोही की गद्दी पर बिठाया।[१५] तब से सिरोही व मेवाड़ के सम्बन्ध और भी अधिक सौहार्दपूर्ण हो गये। महाराव अखेराज ने कुछ ही दिनो के बाद अपने बागी लड़के उदयभान व उसके एक पुत्र की हत्या करवादी।[१६]

श्यामलदास ने वीर विनोद मे अखेराज के दूसरे पुत्र उदयसिंह का बागी होना लिखा है। किन्तु यह माननीय नही, क्योंकि मुहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात मे उदयभान का बागी होना बताया है।[१७] इस तथ्य की पुष्टि राजप्रशस्ति से भी हो जाती है।[१८] दोनो ही साक्ष्य लगभग समकालीन हैं,

---

१२ वही, पृ० २५३

१३. वही, पृ० २५४

१४. मुहणोत नैणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ० १३८

१५ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक ३५-३६
   (ब) वीर विनोद, पृ० ४४७
   (स) ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास, पृ० २५४

१६. ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास, पृ० २५४

१७ मुहणोत नैणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ० १३८

१८. राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक ३५

अत इसे स्वीकार कर लेना समीचीन ही होगा। श्यामलदास ने उदयसिंह का नाम सिरोही के दीवान खानबहादुर मुन्शी नित्रामतअलीखाँ के लेख के आधार पर लिखा है, जो अधिक विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

महाराणा राजसिंह की सद्भावना व सहानुभूति सदैव सिरोही के महाराव के प्रति बनी रही। ई० स० १६७७ मे सिरोही के महाराव वैरीसाल के शत्रु उसको सिंहासनाच्युत करने के लिए प्रयत्नशील थे, उस समय महाराणा राजसिंह ने उसकी सहायता की और उसे गद्दी पर स्थिर रखा। इस सहायता के बदले मे वैरीसाल ने राणा को एक लाख रुपया और कोरट आदि पाँच गाँव दिये। इस अवसर पर सिरोही के कतिपय लोगो ने राणा का सोने का कलश चुरा लिया और उसे सिरोही पहुँचा दिया। इससे राणा बहुत नाराज हुआ और उसने सिरोही के महाराव से हर्जाने के पचास हजार रुपये वसूल किये।[१९]

ई० स० १६६२ से ई० स० १६७६ (औरगजेब से युद्ध होने के पूर्व) तक का महाराणा राजसिंह का काल मेवाड के इतिहास मे शान्ति व समृद्धि का काल रहा। इसी काल मे महाराणा ने राजसमुद्र झील का निर्माण करवाया था। आज भी यह झील राणा के स्वर्णमय युग की याद दिलाती है। राजसमुद्र के निर्माण से सम्बन्धित अनेक रोचक व महत्त्वपूर्ण तथ्य रणछोड कृत राजप्रशस्ति महाकाव्य मे वर्णित हैं, जिनका सक्षेप में उल्लेख करना समीचीन होगा।

राजनगर के निकट दो पहाडियों के मध्य गोमती नाम की एक नदी बहती थी। इस नदी के पानी को रोक कर एक विशाल तालाब बनाने की योजना महाराणा अमरसिंह प्रथम ने बनाई थी और उसने बाध बनवाने का कार्य भी आरम्भ कर दिया था, किन्तु नदी के तेज वेग के कारण यह बाध स्थायी नहीं रह सका था।[२०]

राजसिंह अपने युवराज पद मे जैसलमेर के रावल मनोहरदास की पुत्री कृष्णकुँवरी से विवाह करने जैसलमेर गये थे। विवाह कर वापिस लौटते समय उसने राजनगर पर पडाव किया था। वर्षाऋतु होने के कारण गोमती नदी मे पानी का बहाव काफी तेज था। उस समय राजसिंह ने गोमती नदी के पानी को रोक कर एक विशाल तालाब बनाने के लिए सोचा था।[२१] इस

१९ राजप्रशस्ति, सर्ग २१, श्लोक २८–३१
२०. मान-राजविलास, विलास ८, पद्य ११०
२१ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक ३ और ७
(ब) वीर विनोद, पृ० ४४४

तालाब की परिधि मे सोलह गावो की सीमा था जाती थी।[२२]

राज्यासीन होने के पश्चात् वि० स० १७१८ मार्ग शीर्ष (ई० स० १६६१ नवम्बर) मे महाराणा राजसिंह ने रूपनारायण की यात्रा की। रूपनारायण का मन्दिर उदयपुर से लगभग ५३ मील उत्तर दिशा मे स्थित है। इस यात्रा मे लौटते समय राजसिंह राजनगर मे ठहरा। वहाँ उसने पुन गोमती नदी के वेग को देखा, जिससे उसकी पुरानी स्मृति जाग उठी। उसने अब इस नदी के पानी को रोकने हेतु बाध बनवाने का मन मे निश्चय किया।[२३]

राजसमुद्र के निर्माण के सम्बन्ध मे एक यह बात भी प्रचलित है कि राजसिंह ने एक पुरोहित, एक राणी, एक कुँवर और एक चारण को मार दिया था अत ब्राह्मणो की सम्मति से इन नृशस हत्याओ के प्रायश्चित के रूप मे राणा ने इस विशाल तालाब को बनाने का निर्णय लिया था।[२४]

ई० स० १६६१–६२ के वर्ष मे उदयपुर राज्य मे भयकर अकाल पडा।

---

२२ राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक ५–६, सोलह गाँवों के नाम इस प्रकार है—धोयन्दा, सनवाड, सिवाली, भिगावदा, मोरचणा, पसूद, खेडी, छापर खेडी, तासोल, मडावर, भाण, लुहाणा, वसोल, गुडली, कांकरोली और मडा।

२३ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक ६–१०

(ब) मान-राजविलास, विलास ८, पद्य ४, १११, ११२

(स) वीर विनोद, पृ० ४४४

२४ वीर विनोद, पृ० ४४४–४६–इस विषय मे मेवाड मे यह प्रसिद्ध है कि कुँवर सरदारसिंह की माता, ज्येष्ठ कुँवर सुलतानसिंह को मरवाकर अपने पुत्र सरदारसिंह को मेवाड की गद्दी दिलवाने के लिए षडयत्र रच रही थी। उसने राणा को शक दिला कर उसके द्वारा कुवर सुलतानसिंह को मरवा दिया। फिर उसने अपने पुत्र को राज्य दिलाने के लिये महाराणा को विष देने के सम्बन्ध मे एक पुरोहित को पत्र लिखा, जिसका भेद खुल जाने पर महाराणा ने पुरोहित और राणी दोनो का काम समाप्त कर दिया। इस पर कुँवर सरदारसिंह ने स्वय विषपान कर अपनी जीवन लीला समाप्त करली। चारण उदयभान ने महाराणा की बुराई मे एक कविता सुनाई, जिससे अप्रसन्न होकर महाराणा ने उसे मार डाला—

गया राण जगतसिंह जग का उजवाला।
रही विरम्मी बाप्पडी कीधां मुँह काला।।

मेवाडी जनता भूख के मारे पूर्णतया सत्रस्त थी।[२५] महाराणा ने राजसमुद्र भील के निर्माण का सकल्प तो पहले से ही कर रखा था, अत अब भयकर दुर्भिक्ष से पीडित लोगों की सहायता करने हेतु उक्त सकल्प को उसने तुरन्त मूर्तरूप मे परिणत कर दिया।[२६] उक्त जलाशय के निर्माण के कई अन्य कारण रहे होगे, किन्तु हमारे मत में इसका मुख्य व तत्कालीन कारण मेवाड मे महाप्रलयकारी दुर्भिक्ष पडना ही था। महाराणा ने अकाल-पीडितों को सहायता देने और तालाब के जल से पैदावार मे वृद्धि करने हेतु यह कार्य प्रारम्भ करवाया था।

गोमती नदी के जल को एकत्रित करने हेतु अनेक स्थानो पर बाघ बनवाना आवश्यक था। राजसमुद्र के बाध की नींव खुदाई का कार्य वि० स० १७१८ माघ वदि ७ (ई० स० १६६२ तारीख १ जनवरी) को प्रारम्भ हुआ।[२७] यहाँ हजारों मजदूर काम करते थे। कार्य की विशालता को देखकर राणा ने इस कार्य की पूर्ति हेतु अनेक विभाग बनाये और प्रत्येक विभाग पर अनुभवी व विश्वासी सरदार को नियुक्त किया जो कार्य को सुचारु रूप से पूर्ण करवा सके।[२८] नींव खुदाई व पाल पर मिट्टी डालने का कार्य पूर्ण हो जाने पर श्रावणादि वि० स० १७२१ (चैत्रादि १७२२) वैशाख सुदि १३ (ई० स० १६६५ तारीख १७ अप्रेल) को पुरोहित गरीबदास के पुत्र रणछोडराय के हाथ से पचरत्न सहित नीव का पत्थर डाला गया और शुभ मुहूर्त मे चुनाई का कार्य आरभ हुआ।[२९] वि० स० १७२७ (चैत्रादि १७२८) आषाढ

---

२५ कवि मान ने इस दुर्भिक्ष का मार्मिक शब्दो मे वर्णन किया है। द्रष्टव्य-

विक्कल भयँ नर अन्न बिनु, भूखहिं अभाव भखत।
कत तजत निज कामिनी, कामिनी तजत सुकत ॥११५॥
मात पिता हू निठुर मन, बेंचत बालक बाल।
ररबरि रक करक परि, दिसि दिसि रौर दुकाल ॥११६॥
राजविलास, विलास ८

२६ (अ) मान-राजविलास, विलास ८, पद्य १३४–१३६
(ब) वीर विनोद, पृ० ४४६

२७ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक १३–१४
(ब) वीर विनोद, पृ० ४४८

२८ राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक २१

२९. (अ) राजप्रशस्ति, सग ६, श्लोक ३४–३७
(ब) वीर विनोद, पृ० ४४८

सुदि ४ (ई० स० १६७१ तारीख ३० जून) को इस जलाशय म नाव का मुहूर्त किया गया।[३०] बाध के बन जाने पर गोमती, ताल (ताली) और केलवा की नदियो का पानी इसम एकत्रित होने लगा।[३१]

राजसमुद्र निर्माण का महत्ती कार्य ई० स० १७७६ मे पूर्ण हुआ और इसी वर्ष १४ जनवरी (वि० स० १७३२ माघ सुदि ६) को इसकी प्रतिष्ठा का कार्य प्रारम्भ किया गया।[३२] महाराणा ने सपरिवार इस कार्य मे भाग लिया। इसके उपलक्ष मे एक बहुत बडे यज्ञ का आयोजन किया गया और रात्रि को जागरण रखा[३३], जिसमे हरिकीर्तन आदि किये गये। महाराणा ने अपने परिवार के सदस्यो, सभासदो, सामन्तो तथा अनुचरो के साथ पैदल परिक्रमा की।[३४] आगे आगे वेदपाठी ब्राह्मण चलते थे। पांच दिन मे १४ कोस की यह पैदल परिक्रमा समाप्त होने पर पूर्णिमा के दिन प्रतिष्ठा की पूर्णाहुति का कार्य बडी धूमधाम से सम्पन्न किया गया।[३५] इस अवसर पर महाराणा ने सोने का तुलादान किया। इस समय राणा ने अपने पोते बालक अमरसिंह को भी साथ बैठाया। इस तुला मे ६००० तोले सोना चढा।[३६]

---

३० (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग १०, श्लोक २२-३०

(ब) वीर विनोद, पृ० ४४८

३१ वही, सर्ग १२, श्लोक ६

३२ (अ) मान राजविलास, विलास ८, पद्य १५४-१५५

सुप्रतिष्ठा कीन सत दह सवत बत्तीसै उत्तम बरसै। ॥१५४॥
मासोत्तम माह रच्यौ सु महोत्सव पोवन आये देवपनी ॥१५५॥

(ब) राजप्रशस्ति, सर्ग १४, श्लोक १३

३३ वही, सर्ग १४, श्लोक २२-२७ और सर्ग १५, श्लोक १४-३७

३४ परिक्रमा के प्रारम्भ म डूगरपुर के रावल जसवन्तसिंह ने महाराणा से कहा कि महाराणा उदयसिंह ने उदयसागर की प्रतिष्ठा के दिन परिक्रमा पालकी म बैठ कर की थी, अत वह भी ऐसा ही करें।

लेकिन राजसिंह ने पैदल परिक्रमा करना ही उचित समझा।
ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ५७३

३५ राजप्रशस्ति, सर्ग १६, श्लोक ३-५, २७-२८ और सर्ग १७, श्लोक १-६।

३६ वही, सर्ग १७, श्लोक २८-३२-

पटराणी सदाकुंवरी, रणछोड़राय, राव केसरीसिंह (पारसोली), टोडे के रायसिंह की माता और बारहठ केसरीसिंह ने चादी की तुलाएँ की।

महाराणा ने इस शुभ कार्य के अवसर पर सप्तसागर[३७] आदि अनेक दान मुक्त हस्त से किया। पुरोहित गरीबदास को, जिसने स्वय स्वर्ण तुलादान किया था, महाराणा ने धार आदि १२ गाँव जागीर मे दिये।[३८] अन्य ब्राह्मणो को भी भूमि, गाँव, स्वर्ण, चादी तथा सिरोपाव प्राप्त हुए।[३९] चारणो, भाटो व पडितो को घोडा, हाथी, व अन्य उपहार देकर सम्मानित कर सभी प्रकार से उन्हे सन्तुष्ट किया गया।[४०] मुख्य शिल्पी को इस कार्य की समाप्ति पर २५,००० रुपये दिये गये।[४१]

महाराणा ने इस उत्सव मे सम्मिलित होने के लिए अपने मित्र व सम्बन्धी राजाओ को निमन्त्रित किया था। जो इस अवसर पर किन्ही कारणो से उपस्थित नही हो सके थे, उन्हे उपहार भेजे थे। उदाहरणार्थ जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह, आमेर के राजा रामसिंह बूंदी के राव भावसिंह हाडा, बीकानेर के स्वामी अनूपसिंह, रामपुरा के चन्द्रावत मुहकमसिंह जैसलमेर के रावल अमरसिंह आदि को इस उत्सव के उपलक्ष मे एक-एक हाथी, दो-दो घोडे और जरदोजी सिरोपाव भेजे गये।[४२]

इस उत्सव के दर्शनार्थ दूर-दूर से ब्राह्मण तथा अन्य लोग उपस्थित हुए थे। ऐसे दर्शनार्थियो की सख्या लगभग ४६००० थी। इन सभी लोगो को भोजन, वस्त्रादि से सन्तुष्ट किया गया।[४३]

इस तालाब के निर्माण मे १,०५,०७,६०८ रुपयो की कुल धनराशि

---

३७ इस दान की व्याख्या राजप्रशस्ति सर्ग १७, श्लोक १०–१४ मे की गई है। उक्त दान के लिए क्रमश ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, रमा, और गौरी के नाम के स्वर्ण के सात कुण्ड तैयार किये जाते थे, जिनमे नमक, दूध, घी, गुड, धान्य, शक्कर व जल भरा जाता था और एक निश्चित विधि के बाद सातो भरे हुए स्वर्ण कुण्ड दान मे दिये जाते थे।

३८ राजप्रशस्ति, सर्ग १८, श्लोक १–१५

३९ वही, सर्ग १९, श्लोक २७

४० वही, सर्ग २०, श्लोक ४८–४९

४१. वही, श्लोक ३०

४२ वही, सर्ग २०, श्लोक १–२९

४३ राजप्रशस्ति, सर्ग १९, श्लोक २२–२३

व्यय की गई थी।[४४] नौचौकी नामक बांध पर पच्चीस बड़ी-बड़ी शिलाओं पर २५ सर्गों में राजप्रशस्ति महाकाव्य उत्कीर्ण करवाया गया। भारत में यह सबसे बड़ा शिलालेख एवम् शिलाओं पर खुदवाया हुआ महाकाव्य है। इस महाकाव्य की रचना तैलंग जातीय मधुसूदन के पुत्र रणछोड भट्ट ने की थी।

इस महत्ती कार्य के लिए राजसिंह की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी और उसकी ख्याति सभी रजवाड़ों में तथा हिन्दू जगत में फैल गई। राणा राजसिंह व उसके कार्य चारणों व भाटों के लिए कविता के विषय बन गये। राजसिंह की प्रशंसा में उसके काल में तथा उसके मृत्योपरान्त अनेक साहित्यिक ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं।

राजसिंह का राज्यकाल महत्ती क्रियाशीलता का काल था। वह धर्मनिष्ठ, दानशील, प्रजापालक और कला अनुरागी शासक था। उसके राज्य काल में स्थापत्य कला को अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त था। उसके समय की निर्मित इमारतों में जनहित व सुरक्षा की भावना निहित थी। महाराणा राजसिंह ने अपने कुंवरपदे में ही उदयपुर नगर के अग्निकोण में स्थित कर्ण बावडी के समीप सर्वऋतु विलास नामक महल और बावडी युक्त बाग का निर्माण करवाया। यह बाग सुन्दर फव्वारों, हौज, विभिन्न प्रकार के वृक्षों व पौधों से शोभायमान था।[४५]

महाराणा ने वि० सं० १७१६ (ई० स० १६५९) में देवारी के घाटे का कोट और दरवाजा तैयार करवाया तथा पास में बावडी और छोटा तालाब बनवाया।[४६] इस घाटे का कोट और छोटा दरवाजा पहिले महाराणा उदयसिंह द्वारा बनवाया गया था, किन्तु विक्रमी १६७१ (ई० स० १६१४) में शाहजादा खुर्रम ने इसे गिरवा दिया था।

महाराणा राजसिंह के काल में खवासण सुन्दर ने वि० सं० १७१७

---

४४. राजप्रशस्ति, सर्ग २१, श्लोक २२

४५ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक ६

(ब) मान-राजविलास, चतुर्थ विलास

सर्वरितु विलास तसु नाम सति, नयन सु महल निरीखियं ॥१॥

मान कवि ने इस बाग का २३ पद्यों में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

(स) वीर विनोद, पृ० ४४३ और ४७६

४६ राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक २६–२८

वीर विनोद, पृ० ४७६

(ई० स० १६६०) मे उदयपुर से २११ मील ईशान कोण मे पारडा ग्राम के पास एक सुन्दर बावडी बनवाई। इसकी प्रतिष्ठा पर महाराणा ने व्यास गोविन्दराम व व्यास बलभद्र को भराणा ग्राम मे ७५ बीघा जमीन दी। इस भूमि पर गोविन्दराम की माता ने बावडी कराई तथा यात्रियो की सुविधा हेतु एक सराय बनवाई।[४७]

राजसिंह ने अपनी माता राठौड़ राजसिंह मेड़तिया की बेटी और महाराणा जगतसिंह की राणी जनादे बाईजीराज (राजमाता) के नाम से तालाब बनाने का मुहूर्त बडी नामक ग्राम मे किया और वि० स० १७२५ माघ शुक्ल १० (ई० स० १६६६ तारीख ३१ जनवरी) को प्रतिष्ठा करके उसका नाम जना सागर रखा। इस समय राणा ने चांदी का तुला दान किया था। इस तालाब के निर्माण मे २,६१,००० रुपये व्यय हुए। प्रतिष्ठा के समय महाराणा ने पुरोहित गरीबदास को गुणहूडा और देवपुरा नामक दो गाँव जागीर मे दिये। यह तालाब उदयपुर नगर के उत्तर-पश्चिम मे छ: मील की दूरी पर स्थित था।[४८]

वि० स० १७२१ (ई० स० १६६४) मे उदयपुर मे अम्बामाता का मन्दिर बनवाया[४९] और वि० स० १७२५ (ई० स० १६६८) मे रगसागर नामक तालाब का निर्माण हुआ। यह तालाब बाद मे पीछोले मे मिला दिया गया। उक्त तालाब की प्रतिष्ठा कुंवर जयसिंह ने की थी। इस अवसर पर दान मे विपुल धन वितरित किया गया।[५०]

वि० स० १७२५ वैशाख शुक्ल ६ (ई० स० १६६६ तारीख २६ अप्रेल) को महाराणा राजसिंह के मन्त्री फतहचन्द ने बेडवास गाँव मे एक बावडी का निर्माण करवाया। इस बावडी के सामने एक सराय व एक महल भी बनवाया गया। इसी बावडी के सलग्न १३ बीघो मे एक सुन्दर उद्यान की

---

४७ वीर विनोद, पृ० ५७८। इस बावडी पर उत्कीर्ण प्रशस्ति।

४८ राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक ४६–५०। इस तालाब के सम्बन्ध मे कुल ६,८८,००० रुपये की धनराशि खर्च की गई थी।

(ब) बडी के तालाब की प्रशस्ति–वीर विनोद, पृ० ६३५–३६

४९. अम्बामाता की चरण चौकी की प्रशस्ति

५०. (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक ५१–५२

(ब) वीर विनोद, पृ० ४४८

व्यवस्था की गई। बावडी का पानी मीठा व आरोग्यवर्द्धक था।[५१]

मेवाड की रानियों ने भी प्रजा के हित मे बावडियों का निर्माण करवाया। वि० स० १७३२ माघ शुक्ल ७ (ई० स० १६७६ तारीख १२ जनवरी) को किशनगढ के राजा रूपसिंह की बेटी चारुमती महाराणी राठौड ने राजनगर ग्राम के पश्चिम दिशा में सफेद पत्थर की बावडी बनवाई। इसमे कुल खर्च ३०,००० रुपये हुए।[५२]

वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७५) मे महाराणी पंवार रामरसदेबाई ने देबारी के भीतर झरणा की सराय के निकट त्रिमुखी बावडी का निर्माण करवाया। इसकी प्रतिष्ठा ई० स० १६७६ मे हुई। इस अवसर पर प्रचुर मात्रा मे धन बांटा गया। इस बावडी के निर्माण में २४,००० रुपये लगे थे।[५३]

उपर्युक्त बावडियो व जलाशयों के अतिरिक्त राजसिंह ने राजसमुद्र तालाब के निकट नौ चौकी से संलग्न पहाडी पर एक महल बनवाया[५४] तथा कांकरोली के पास वाली पहाडी पर द्वारकाधीश का मन्दिर बनवाया।[५५] यहाँ राजनगर नाम का एक कस्बा भी बसाया।[५६] एकलिंगजी के पास स्थित इन्द्रसर का जीर्णोद्धार किया गया। पुराने बांध के स्थान पर नये बाध के बनवाने की व्यवस्था की गई।[५७]

महाराणा राजसिंह बडा दानी था। उसे देवी-देवताओं मे पूर्ण विश्वास था। धार्मिक पर्व, ग्रहण, जन्म दिन आदि अवसरों पर वह स्वर्ण, चाँदी व बहुमूल्य वस्तुओं का दान किया करता था। राजप्रशस्ति मे उसके द्वारा किये

---

५१. बेडवास की बावडी की प्रशस्ति। यह बावडी उदयपुर से देबारी की तरफ जाने वाले मार्ग पर बनी हुई है।
वीर विनोद, पृ० ३८१–८३

५२. (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग १४, श्लोक ११–१२
(ब) वीर विनोद, पृ० ४४६

५३. त्रिमुखी बावडी की प्रशस्ति।
वीर विनोद, पृ० ५५४ और ६३८–६४०

५४. राजप्रशस्ति, सर्ग १०, श्लोक ३ और सर्ग १८, श्लोक १६

५५. (i) वही, सर्ग १०, श्लोक १ (ii) पहले महाराणा राजसिंह ने इनके लिए कांकरोली के पास आसोटिया ग्राम मे एक मन्दिर बनवाया था—
कांकरोली का इतिहास, पृ० १४–१५

५६. वही, सर्ग १८, श्लोक १६

५७ वही, सर्ग १०, श्लोक ४०–४२

गये अनेक प्रकार के दान का उल्लेख मिलता है। उनमे विश्वचक्र, हेमब्रह्माण्ड पचकल्पद्रुम, स्वर्णपृथ्वी, कामधेनु आदि मुख्य हैं।[५८]

महाराणा राजसिंह अपनी धर्मनिष्ठा, दानशीलता और जनोपयोगी कार्यों के फलस्वरूप सर्वत्र लोकमान्य बनता जा रहा था। इसके विपरीत उसका समसामयिक मुगल बादशाह औरंगजेब अपनी हिन्दू विरोधी अनुदार धार्मिक नीति के कारण सभी जगह अलोकप्रिय और बदनाम हो रहा था। अकबर के काल की मुगल व्यवस्था शक्ति, न्याय एवम् मानवता के लिए प्रसिद्ध थी। औरंगजेब ने समन्वयवादी नीति का परित्याग कर मुगल शक्ति का प्रयोग दार्-उल्-हर्ब (काफिरो का देश) को दार्-उल् इस्लाम (इस्लामी राज्य) मे परिणत करने हेतु किया[५९], जिसके फलस्वरूप साम्राज्य मे सभी जगह असन्तोष का वातावरण उत्पन्न हो गया।

कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के कारण औरंगजेब अपने जीवन के प्रारभ काल से ही हिन्दू धर्म के प्रति द्वेष रखता था। अपने युवराज पद मे जब वह गुजरात का सूबेदार था उसने वहां हिन्दू मन्दिरो को नष्ट कर अपनी धर्मान्धता का प्रथम परिचय दिया था।[६०] सम्राट बनने के पश्चात् उसने हिन्दू और मुसलमान व्यापारियों के लिए चुगी की विभिन्न दरें निश्चित कर अपनी हिन्दू विरोधी नीति का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया।[६१] मिर्जा राजा जयसिंह के मृत्योपरान्त (ई० स० १६६७) औरंगजेब की इस हिन्दू विरोधी नीति ने उग्र रूप धारण कर लिया। उसने हिन्दू त्यौहारो, उनके धार्मिक मेलो आदि पर

---

५८ (अ) वही, सर्ग ६, श्लोक २७–३५, सर्ग ८, श्लोक ४४–४५, सर्ग १०, श्लोक ५–६, २०–२१, ३३–३४, सग १२, श्लोक २६–३०, ३६–३८ आदि।
(ब) वीर विनोद, पृ० ४४७–४८

५९ सरकार औरंगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १४०

६० (अ) सरकार औरंगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १५०
(ब) बम्बई गॅजेटियर जिल्द १, भाग १, पृ० २८०

६१ (अ) मुन्तखब-उल् लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० २६३
(ब) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द २, पृ० ५४६–४७
(स) सरकार . औरंगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १५३
१० अप्रेल १६६५ ई० को एक आदेश जारी किया गया। इसके अनुसार मुसलमान सौदागरो की वस्तुओ के मूल्य पर ढाई प्रतिशत और हिन्दुओ से उसका ५ प्रतिशत चुंगीकर लिया जाता था।

प्रतिबन्ध लगा दिये।[६२] वैसे तो नए मन्दिर बनाने के लिए राज्यारोहण के तुरन्त बाद ही मनाही के आदेश प्रसारित कर दिये गये थे किन्तु अप्रेल ९, १६६९ को उसने हिन्दुओ व सभी शिक्षालयो व मंदिरो को गिरा देने की आज्ञा मुगल पदाधिकारियो के पास भेज दी थी। इस आज्ञा की सूचना मिलने पर मथुरा मे विद्रोह की भावना भडक उठी।[६३]

कट्टरपथी सम्राट आलमगीर ने सुप्रसिद्ध सोमनाथ, विश्वनाथ, केशवराय आदि मन्दिरो को भी अपनी नीति का शिकार बनाया।[६४] औरगजेब की इस हिन्दू विरोधी नीति ने मथुरा के मन्दिरो के पुजारियो मे खलबली उत्पन्न करदी। ब्रज प्रदेश के कुछ मन्दिरो के पुजारियो ने विशाल व भव्य मन्दिरो की इमारतो का मोह त्याग कर वहाँ की पूज्य मूर्तियो को नष्ट होने से बचाने के अभिप्राय से यथासम्भव योजनाएँ बनाईं।

गोवधन पर्वत पर स्थित वल्लभ सम्प्रदाय वालो के गिरराज के प्रमुख मन्दिर की श्रीनाथजी की मूर्ति को लेकर वहाँ के मुख्य गोसाई दामोदरजी सपरिवार व अन्य पुजारियो को साथ लेकर सितम्बर २९, १६६९ (वि० स० १७२६ आश्विन शुक्ल १५) को गोवधन से चल पडे।[६५] कुछ दिन आगरे मे विश्राम कर फिर कार्तिक शुक्ल २ वि० स० १७२६ (ई० स० १६६९ तारीख १६ अक्टोबर) के दिन पुजारियो का दल बूदी के रावराजा अनिरुद्धसिंह के पास पहुँचा। वर्षा का समय उन्होने कोटा म ही व्यतीत किया। तदुपरान्त वे श्रीनाथजी की मूर्ति सहित पुष्कर होते हुए किशनगढ पहुँचे।[६६] किशनगढ से वे जोधपुर गये जहाँ नगर से छ मील दूर चौपासनी गाँव मे इनका पडाव रहा। मारवाड का स्वामी जसवन्तसिंह उस समय जोधपुर म उपस्थित नही था, इसलिए मारवाड के प्रशासक स्थायी रूप से मूर्ति को वहाँ स्थापन करने की

---

६२ सरकार औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १५५

६३ (अ) मआसिर ए आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० ८१

(ब) इलियट भाग ७, पृ० १८४

(स) सरकार औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १५५–५६

६४ मआसिर ए आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० ८१ और ९५, इलियट, भाग ७, पृ० १८४

६५ वीर विनोद, पृ० ४५२

६६ वीर विनोद, पृ० ४५२

गये अनेक प्रकार के दान का उल्लेख मिलता है। उनमे विश्वचक्र, हेमब्रह्माण्ड पचकल्पद्रुम, स्वर्णपृथ्वी, कामधेनु आदि मुख्य हैं।[५८]

महाराणा राजसिंह अपनी धर्मनिष्ठा, दानशीलता और जनोपयोगी कार्यों के फलस्वरूप सर्वत्र लोकमान्य बनता जा रहा था। इसके विपरीत उसका समसामयिक मुगल बादशाह औरगजेब अपनी हिन्दू विरोधी अनुदार धार्मिक नीति के कारण सभी जगह अलोकप्रिय और बदनाम हो रहा था। अकबर के काल की मुगल व्यवस्था शक्ति, न्याय एवम् मानवता के लिए प्रसिद्ध थी। औरगजेब ने समन्वयवादी नीति का परित्याग कर मुगल शक्ति का प्रयोग दार्-उल्-हर्ब (काफिरो का देश) को दार् उल्-इस्लाम (इस्लामी राज्य) मे परिणत करने हेतु किया[५९], जिसके फलस्वरूप साम्राज्य म सभी जगह असन्तोष का वातावरण उत्पन्न हो गया।

कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के कारण औरगजेब अपने जीवन के प्रारभ काल से ही हिन्दू धर्म के प्रति द्वेष रखता था। अपने युवराज पद म जब वह गुजरात का सूबेदार था उसने वहाँ हिन्दू मन्दिरो को नष्ट कर अपनी धर्मान्धता का प्रथम परिचय दिया था।[६०] सम्राट बनने के पश्चात् उसने हिन्दू और मुसलमान व्यापारियो के लिए चुगी की विभिन्न दरें निश्चित कर अपनी हिन्दू विरोधी नीति का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया।[६१] मिर्जा राजा जयसिंह के मृत्योपरान्त (ई० स० १६६७) औरगजेब की इस हिन्दू विरोधी नीति न उग्र रूप धारण कर लिया। उसने हिन्दू त्यौहारो, उनके धार्मिक मेलो आदि पर

---

५८ (अ) वही, सर्ग ६, श्लोक २७–३५, सर्ग ८, श्लोक ४४–४५, सग १०, श्लोक ५–६, २०–२१, ३३–३४, सग १२, श्लोक २६–३०, ३६–३८ आदि।
(ब) वीर विनोद, पृ० ४४७–४८

५९ सरकार औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १४०

६० (अ) सरकार औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १५०
(ब) बम्बई गजेटियर जिल्द १, भाग १, पृ० २८०

६१ (अ) मुन्तखब उल् लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० २९३
(ब) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द २, पृ० ५४६–४७
(स) सरकार औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १५३
१० अप्रैल १६६५ ई० को एक आदश जारी किया गया। इसके अनुसार मुसलमान सौदागरो की वस्तुओ के मूल्य पर ढाई प्रतिशत और हिन्दुओ स उसका ५ प्रतिशत चुगीकर लिया जाता था।

प्रतिबन्ध लगा दिय।[६२] वैसे तो नए मन्दिर बनाने के लिए राज्यारोहण के तुरन्त बाद ही मनाही के आदेश प्रसारित कर दिये गये थे, किन्तु अप्रेल ६, १६६६ को उसने हिन्दुओ के सभी शिक्षालयो व मन्दिरो को गिरा देने की आज्ञा मुगल पदाधिकारियो के पास भेज दी थी। इस आज्ञा की सूचना मिलने पर मथुरा मे विद्रोह की भावना भडक उठी।[६३]

कट्टरपथी सम्राट आलमगीर ने सुप्रसिद्ध सोमनाथ, विश्वनाथ, केशवराय आदि मन्दिरो को भी अपनी नीति का शिकार बनाया।[६४] औरगजेब की इस हिन्दू विरोधी नीति ने मथुरा के मन्दिरो के पुजारियो मे खलबली उत्पन्न करदी। ब्रज प्रदेश के कुछ मन्दिरो के पुजारियो ने विशाल व भव्य मन्दिरो की इमारतो का मोह त्याग कर वहाँ की पूज्य मूर्तियो को नष्ट होने से बचाने के अभिप्राय स यथासम्भव योजनाएँ बनाई।

गोवर्धन पर्वत पर स्थित वल्लभ सम्प्रदाय वालो के गिरराज के प्रमुख मन्दिर की श्रीनाथजी की मूर्ति को लेकर वहाँ के मुख्य गोसाई दामोदरजी सपरिवार व अन्य पुजारियों को साथ लेकर सितम्बर २६, १६६६ (वि० स० १७२६ आश्विन शुक्ल १५) को गोवधन से चल पडे।[६५] कुछ दिन आगरे मे विश्राम कर फिर कार्तिक शुक्ल २ वि० स० १७२६ (ई० स० १६६६ तारीख १६ अक्टोबर) के दिन पुजारियो का दल बूदी के रावराजा अनिरुद्धसिंह के पास पहुँचा। वर्षा का समय उन्होने कोटा मे ही व्यतीत किया। तदुपरान्त वे श्रीनाथजी की मूर्ति सहित पुष्कर होते हुए किशनगढ पहुँचे।[६६] किशनगढ से वे जोधपुर गये जहाँ नगर से छ मील दूर चौपासनी गाँव म इनका पडाव रहा। मारवाड का स्वामी जसवन्तसिंह उस समय जोधपुर म उपस्थित नही था, इसलिए मारवाड के प्रशासक स्थायी रूप से मूर्ति को वहाँ स्थापन करने की

---

६२ सरकार औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १५५

६३ (अ) मआसिर ए आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० ८१

(ब) इलियट भाग ७, पृ० १८४

(स) सरकार औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १५५–५६

६४ मआसिर-ए आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० ८१ और ६५, इलियट, भाग ७, पृ० १८४

६५ वीर विनोद, पृ० ४५२

६६ वीर विनोद, पृ० ४५२

स्वीकृति देने की स्थिति में नहीं थे।[६७] वस्तुतः औरंगज़ेब के भय से उपर्युक्त सभी रजवाड़े उस मूर्ति को खुले तौर पर अपने राज्य में रखने के पक्ष में नहीं थे। चौपासनी से गोसाईं दामोदर के चाचा गोपीनाथ राजसिंह के पास पहुँचे और उसे श्रीनाथजी की मूर्ति मेवाड़ राज्य में रखने के लिए प्रार्थना की। महाराणा ने प्रसन्नता के साथ इसे स्वीकार कर लिया और कहा कि "जब मेरे एक लाख राजपूतों के सिर कट जाएँगे उसके बाद आलमगीर इस मूर्ति के हाथ लगा सकेगा।"[६८]

वि० सं० १७२८ कार्तिक शुक्ल १५ (ई० स० १६७१ तारीख ६ नवम्बर) को चौपासनी गाँव से गोसाईं श्रीनाथजी की मूर्ति लेकर मेवाड़ की ओर चले।[६९] उदयपुर से १२ कोस उत्तर की तरफ बनास नदी के तट पर सिहाड़ ग्राम के पास मन्दिर बनवाकर श्रीनाथजी को वि० सं० १७२८ फाल्गुन कृष्ण ७ (ई० स० १६७२ तारीख १० फरवरी) के दिन स्थापन किया।[७०] महाराणा ने गोसाईं वर्ग को मन्दिर स्थापन में सभी सुविधाएँ प्रदान कीं। यही सिहाड़ ग्राम तभी से नाथद्वारा कहलाने लगा। इसी प्रकार गोवर्धन वाले द्वारकाधीश की मूर्ति भी मेवाड़ में लाई गई और कांकरोली में उसकी प्रतिष्ठा कराई गई।[७१]

चारुमती के विवाह के कारण औरंगज़ेब महाराणा से खिन्न तो था ही अब उसकी हिन्दू धर्म के प्रति सक्रियता व निष्ठा को देखकर सम्भवतः वह अधिक नाराज हुआ होगा। यह निर्विवाद है कि श्रीनाथजी व द्वारकाधीश की मूर्तियों को मेवाड़ में स्थापित कर राणा राजसिंह ने औरंगज़ेब को मेवाड़ विरोधी बनाने में एक और कारण प्रस्तुत कर दिया। लेकिन इसका अर्थ यह कभी नहीं लगाया जाना चाहिए कि राणा ने उक्त घटना के उपरान्त बादशाह औरंगज़ेब का विरोध करना आरम्भ कर दिया था। इसके बाद भी राणा और बादशाह के सम्बन्ध मधुर थे। उपहारों का आदान प्रदान भी होता था। रामसिंह और माधोसिंह राणा की तरफ से मुगल दरबार में उपस्थित हुए थे।

६७ आसोपा मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० १८६
गोसाईं व उसके साथी श्रीनाथजी की मूर्ति के साथ चौपासनी के पास कदमखंडी में ६ मास ठहरे थे।

६८ (अ) वीर विनोद, पृ० ४५३
(ब) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द २ पृ० ५४७

६९ वीर विनोद, पृ० ४५३

७० वही,

७१ कंठमणी कांकरोली का इतिहास, पृ० १४

उन्हे बादशाह की तरफ से सम्मान प्राप्त हुआ और मेवाड लौटते समय बादशाह ने राणा राजसिंह के लिए उनके साथ खिलअत आदि उपहार भेजे थे।[७२] यद्यपि राणा ने शाही आदेश की अवहेलना करते हुए मेवाड मे मन्दिरों की स्थापना की थी, परन्तु उसने मुगल आदेश का विरोध नहीं किया। कुंवर अरिसिंह ने मुगल साम्राज्य मे स्थित धार्मिक स्थान गया की यात्रा की थी। उसे मार्ग मे मुग़ल अधिकारियो की तरफ से किसी भी प्रकार की असुविधा का सामना नही करना पडा था।[७३]

जिस समय राणा राजसिंह ने राजसमुद्र निर्माण का कार्य हाथ मे लिया उस समय पुरोहित गरीबदास ने महाराणा को सलाह दी थी कि इस झील के निर्माण काल मे मुग़ल बादशाह से किसी प्रकार युद्ध नही होना चाहिए। यदि मुगलो से युद्ध हो गया तो यह जनोपयोगी कार्य सम्पूर्ण नहीं हो सकेगा।[७४] राणा इन विचारों से पूर्णतया सहमत था। उसने बादशाह औरंगज़ेब के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने के लिए सतत प्रयत्न किया, जिसके परिणाम स्वरूप उसके काल मे शान्ति रही और अनेक जनकल्याण के कार्य सम्पन्न किये जा सके। जलाशय, बावडी, बगीचे, सराय आदि केवल राज्य की ओर से ही नहीं निर्मित किये गये वरन् राणियो, सभासदो, अनुचरों व सम्पन्न व्यक्तियों ने भी इस लोक कल्याण के कार्य में हाथ बटाया। राज्य मे सभी जगह वैभव तथा समृद्धि के स्पष्ट लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। महाराणा, युवराज, राणियो, सभासदो और राजपुरोहित द्वारा अनेक अवसरो पर चादी व सोने का तुलादान किया जाना इस बात का द्योतक है कि राज्य म धन की बाहुल्यता थी। नव निर्मित जलाशयों, बावडियों आदि से कृषि हेतु सिंचाई के लिए पानी दिया जाने लगा, जिससे उपज में वृद्धि हुई। राज्य मे सर्वत्र सुरक्षा व व्यापारियों को राजमार्गों पर ठहरने आदि की सुविधाओं के फलस्वरूप व्यापार मे उन्नति होना स्वाभाविक ही था। मेवाड मे यह स्थिति ई० स० १६७६ (औरंगजेब से युद्ध छिड जाने के समय) तक बनी रही।

७२ आलमगीरनामा (फारसी मूल), पृ० ६६१ और ७६७

७३ (अ) जी० एन० शर्मा. मेवाड एण्ड द मुग़ल एम्परर्स, पृ० १६३
(ब) राजरत्नाकर, पृ० १३१

७४ वीर विनोद, पृ० ४४४ पुरोहित गरीबदास ने अर्ज किया कि यह तो हो सकता है (झील का निर्माण) परन्तु इसमें तीन बातों का बन्दोबस्त होना चाहिए—अव्वल तो रुपये के खर्च की तरफ ख्याल न रखा जाय, दूसरे काम के अन्जाम तक ऐसी ही तवज्जुह रहे, तीसरे मुसलमान बादशाहों से झगडा न हो, वर्ना वे इसको पूरा न होने देंगे।

६

महाराणा राजसिंह और उसके सामन्त

मेवाड मे सामन्त व्यवस्था बहुत प्राचीन काल से प्रचलित थी। इसका अन्त भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात् राजाओ की सत्ता समाप्त होने के साथ ही हुआ। राजस्थान के अन्य रजवाडो के समान मेवाड मे भी प्रमुख रूप से सामन्त दो वर्गों मे विभाजित थे। एक वर्ग उन सामन्तों का था जिनकी उत्पत्ति राजकुल से हुई थी। दूसरे वर्ग मे समकक्ष अन्य राजपूत सामन्त सम्मिलित थे। स्वकुलीय सामन्तो का राजा के साथ बन्धुत्व व रक्त का सम्बन्ध था। ऐसे सामन्त घरेलू और राजनैतिक सभी मामलो मे सामाजिक समानता का दावा करते थे। राज्य को वे पैतृक सम्पत्ति के रूप मे मानते थे। अत वे राज्य मे भूमि भोगने का अपने को अधिकारी बतलाते थे। सामन्त युद्ध मे राजा की सहायता करते थे। उनमे यह भावना भी निहित थी कि वे अपनी पैतृक सम्पत्ति की सामूहिक रूप म रक्षा करने हेतु ऐसा कर रहे हैं।[१]

राजस्थान म स्वकुल वशीय सामन्त बडे शक्तिशाली होते थे। मारवाड मे राजवशीय राठौड सामन्त प्रारम्भ से ही बडे प्रभावशाली व वैभव सम्पन्न थे। वहाँ तो एक कहावत प्रचलित थी कि 'रिडमला थापिया तिके राजा' अर्थात् राव रणमल के पुत्रो के वशज की सहमति से ही मारवाड के राज-सिंहासन पर कोई आरूढ हो सकेगा। मारवाड मे प्रथम श्रेणी के सभी सामन्त राठौड ही थे।[२]

मेवाड मे राजवशीय सामन्त वर्ग प्रारम्भ मे अधिक शक्तिशाली नही था, क्योकि राज्य के वरिष्ठ पदाधिकारियो की भाँति सामन्तो का भी स्थानान्तरण किया जाता था। सामन्त किसी एक स्थान पर परम्परागत स्थायी रूप

१. जी० एन० शर्मा सोशल् लाइफ इन मेडीवेंल राजस्थान, पृ० ८६

२ आर० पी० व्यास : रोल् ऑफ नाबिलिटि इन मारवाड, पृ० ६ और १७२।

से नहीं ठहर सकता था। उसके जागीर क्षेत्र मे परिवर्तन होता रहता था, इसलिये सामन्ती प्रजा का सामन्त के प्रति अधिक लगाव नहीं होने पाता था।[3] जब तक उक्त प्रथा मेवाड मे चलती रही कोई भी सामन्त राणा के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस नही कर सका, क्योंकि उसे अपनी प्रजा का पूर्ण सहयोग उपलब्ध नहीं हो सकता था। इस प्रकार की नीति का आश्रय लेना राणा की बुद्धिमत्ता व राजनैतिक सूझ का परिचायक है।[4]

राणा प्रताप और उसके उत्तराधिकारी राणा अमरसिंह प्रथम को एक लम्बे काल तक निरन्तर मुगलों से संघर्ष करना पडा था। इस संकटकाली परिस्थिति मे सामन्तो का स्थानान्तरण सम्भव नहीं हो सका। राणा का अस्तित्व ही खतरे म था। शनै शनै यह प्राचीन प्रथा समाप्त होने लगी और तब से मेवाड मे भी स्वकुलीय सामन्त शक्ति सम्पन्न होने लगे।

मेवाड की सामन्त व्यवस्था की दूसरी विशेषता यह थी कि राणा के सामन्तो में स्वराजकुलीय चूंडावत और शक्तावत सरदारो के साथ साथ अन्य समकक्ष राजपूत झाला, चौहान, राठौड, पवार आदि जागीरदारो का भी महत्त्व था।[5] अमरसिंह द्वितीय ने तात्कालिक स्थिति के आधार पर सामन्तों को तीन श्रेणियो मे विभाजित करने की विधिवत् उद्घोषणा की थी, जिस के फलस्वरूप ये श्रेणियाँ क्रमश 'सोलह', 'बत्तीस' और 'गोल' कहलाईं।[6] प्रथम सोलह उमरावों में अन्य समकक्ष राजपूत वशीय सामन्तो की सख्या आठ थी। उनका सम्बन्ध राणा से बन्धुत्व व रक्त का नही था वरन् कर्तव्य, आज्ञाकारिता और कृतज्ञता पर आधारित था। राणा अपने सामन्तो म शक्ति सतुलन बनाये रखने के अभिप्राय से ऐसे सामन्तो को अधिक प्रोत्साहन देता था। ऐसे सामन्तो का अस्तित्व राणा की कृपा पर ही निर्भर था, अत सच्चाई के साथ राज्य की सेवा मे रत रहते थे, जब कि स्वकुलीय सामन्त यदाकदा सगठित होकर अपने अधिकारो के लिए संघर्ष करने को उद्यत

---

३. टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, भाग १, पृ० १३३

४ वही, पृ० १२७

५ वही, पृ० १३४

६ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ६०८

त्रण झाला त्रण पुरबिया, चूडावत भड च्यार।
दोय सक्ता दोय राठवड, सारगदे ने पवार॥

किसी कवि ने उमरावों की गणना उपर्युक्त रूप से की है।

जाते थे ।[७]

राजस्थान मे मुगल सम्पर्क से सामन्त प्रथा मे परिवर्तन आया। राजस्थान के लगभग सभी राज्यो मे सामन्तो की शक्ति क्षीण होने लगी। मारवाड मे अब सामन्तों का सम्बन्ध राजा से भाई का न रहकर सेवक और स्वामी का हो गया। मेवाड मे इसका प्रभाव कुछ भिन्न था। मेवाड ने दीर्घ काल तक मुगलो से निरन्तर सघर्ष किया। इस काल मे सामन्त ही राणा के लिए एकमात्र शक्ति थी। अत सामन्तो की शक्ति मे वृद्धि होना स्वाभाविक ही था। अमरसिंह प्रथम के काल मे मुगलो के साथ सन्धि होने के पश्चात् भी यदाकदा मेवाडी सामन्त राणा से नाराज होकर मुगल बादशाह की सेवा म उपस्थित हो जाता था। वह राणा से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर बादशाह से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर लेता था। बादशाह एसे असन्तुष्ट सामन्तो को प्रोत्साहन देने म सक्रिय रहते थे। वे मेवाड भूमि का पट्टा उनके नाम लिख देते थे। इस प्रकार राणा की भूमि का बहुत बडा भाग मेवाड राज्य से पृथक कर दिया गया।[८]

शक्ति वृद्धि के साथ साथ मेवाडी सामन्तो म पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा व वैमनस्य की भावना भी प्रबल होने लगी थी। जब तक राणा शक्तिशाली बना रहा, ऐसे अशान्ति व अराजकता फैलाने वाले सामन्ती तत्वो को उसने दबाए रखा, किन्तु मुग़लो के पतन के साथ ही मराठो के आक्रमणो के फलस्वरूप राणा की शक्ति पूर्णतया कमजोर हो गई थी। उस समय सामन्तो का उत्पात भी बढने लगा, जिससे मेवाड की बरबादी हुई। यहाँ मेवाड के प्रमुख सामन्तो के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी देना व उनके आपसी मतभेदो पर सक्षिप्त रूप से प्रकाश डालना अनुपयुक्त नहीं होगा।

मेवाड राज्य के सामन्तो म बडी सादडी के चन्द्रवशी झाला सरदार का प्रथम स्थान था। प्रथम श्रेणी के उमरावो मे झालो के दो अन्य ठिकाने देलवाडा और गोगूदा के सरदार भी सम्मिलित थे। झालो के पूर्वज हलवद (काठियावाड) राज्य के स्वामी थे। ई० स० १५०६ मे हलवद के शासक

---

७ (अ) टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० १३४
(ब) आर० पी० व्यास रोल् ऑफ नोबिलिटि इन मारवाड, पृ० १६७

८ (अ) देवलिया (प्रतापगढ़), शाहपुरा, बनेडा आदि ने मेवाड राज्य से ही पृथक होकर स्वतन्त्र राज्यों की स्थिति प्राप्त की थी। यह उपर्युक्त नीति का ही परिणाम था।
(ब) टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० १३८

राजसिंह के दो राजकुमार अज्जा और सज्जा महाराणा रायमल की सेवा मे मेवाड चले आये।[९] महाराणा ने उन्हें जागीर देकर सम्मानपूर्वक अपनी सेवा मे रख लिया। झाला सरदारो की मेवाड के स्वामी के प्रति अनेकानेक महत्त्वपूर्ण सेवाएँ रही हैं। अज्जा ने खानवे के युद्ध में अपनी वीरता का सुन्दर प्रदर्शन किया था। राणा सागा के घायल हो जाने और उसको रणक्षेत्र से दूर ले जाने पर झाला अज्जा ने महाराणा के छत्र, चंवर आदि राजचिह्न धारण कर हाथी पर सवार होकर राणा के प्रतिनिधि के रूप में सेना का संचालन किया और अन्त मे वह इस युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुआ।[१०] उसके पांच पीढी तक के उत्तराधिकारी क्रमशः सिंहा, आसा, सुलतान, बीदा और देदा सभी ने मेवाड की रक्षा के लिए लडे गये युद्धो मे अपने प्राणों का उत्सर्ग किया।[११]

मेवाड-मुगल मैत्री के बाद झाला सरदार रायसिंह ने कई वर्षों तक मुगल सेवार्थ भेजी गई मेवाडी सेना का नेतृत्व किया। उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर मुगल सम्राट ने उसे १,००० जात और ७०० सवार का मनसब प्रदान किया। उसका विवाह महाराणा कर्णसिंह की पुत्री के साथ हुआ था।[१२]

महाराणा राजसिंह के काल मे रायसिंह के पुत्र सुलतानसिंह का देवलिया (प्रतापगढ) के शासक हरिसिंह को महाराणा की सेवा मे उपस्थित होने तथा उसकी अधीनता स्वीकार करवाने मे बडा योगदान रहा।[१३] सुलतान का उत्तराधिकारी महाराणा का विश्वसनीय सलाहकार था। महाराणा ने उसे कुवर जयसिंह के साथ ई० स० १६७६ मे बादशाह औरंगजेब की सेवा में उपस्थित होने के लिए भेजा था।[१४] तदुपरान्त औरंगजेब के

---

९. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ८७१–७२

१०. (अ) वीर विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३६६

(ब) जी० एन० शर्मा : मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० ३८–३९

रघु सुर तव राण सिरवारे गज सिर चढे
काटे खल सुरताण, ईस फते कीधो अजा।

११. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ८७२

१२. वही

१३. मान-राजविलास, विलास १०, पद्य ५९

१४. राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक १–४; वीर विनोद, पृ० ४५५–५९

साथ राणा की लडाइयो मे उसने सक्रियता से भाग लिया। जिस समय कुँवर जयसिंह ने चित्तौड के निकट शाहज़ादे अकबर के शिविर को लूटा था, उस समय झाला सामन्त चन्द्रसेन (सादडी), जसवर्तसिंह (गोगूदा) और जैतसिंह द्वितीय कुवर के साथ थे।[१५] अज्जा और उसके वशजो की मेवाड घराने के लिए अनुपम सेवाएँ थी, इसलिए उन्हें विशेष कुर्ब और ताज़ीम प्राप्त थी। उनका खिताब 'राजराणा' था।

मेवाडी सामन्तो मे चौहान सरदारो का भी एक विशिष्ट स्थान रहा है। इनका प्रमुख ठिकाना बेदला था। कोठारिया के चौहान सरदार भी मेवाड मे सदैव अग्रणीय रहे है। पारसोली का चौहान ठिकाना महाराणा राजसिंह के समय मे ही स्थापित हुआ था।[१६] चौहानो का सम्बन्ध पृथ्वीराज चौहान और रणथम्भौर के सुविख्यात चौहान शासक हमीर से है। खानवा की लडाई मे चन्द्रभान चौहान अपने ४,००० योद्धाओ के साथ मैनपुरी क्षेत्र से आकर राणा सांगा की सेना मे सम्मिलित हुआ था। इसी प्रकार एक अन्य चौहान सेनापति माणिकचन्द भी अपने सैनिको के साथ राणा सागा की सहायतार्थ खानवा के युद्धक्षेत्र मे उपस्थित हुआ था। चौहान नेताओ ने इस युद्ध मे वीरगति प्राप्त की थी।[१७] तभी से इनके वशज मेवाड म रहे और उनको क्रमश बेदला और कोठारिया की जागीरें राणा की तरफ से दी गईं।

मेवाड-मुगल सघर्ष के काल मे चौहानो ने अनुपम वीरता का प्रदर्शन किया और मेवाड की स्वतन्त्रता हेतु अपने प्राणो की आहुति भी दी थी। महाराणा इनसे बडे प्रसन्न थे। मेवाड-मुगल मैत्री हो जाने के उपरान्त मेवाड का सभी क्षेत्र राणा के अधिकार मे आ गया था। किन्तु बेगू पर अभी भी

---

१५ मान राजविलास, विलास १८, पद्य २०;

१६ (अ) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ६११

(ब) पारसोली ठिकाने के अतिरिक्त लसाणी, डाबला और भादू के ठिकाने भी महाराणा राजसिंह के काल मे ही स्थापित हुए थे।

द्रष्टव्य (अ) ओझा पृ० ६७१, ६८० और ६८८

(ब) श्रीराम शर्मा महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पृ० २१

१७ वीर विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३६४ और ३६६

शक्तावत नारायणदास का स्वामित्व था। वह अपने को राणा सगर[१८] का सामन्त मानता था। रावत मेघसिंह चूडावत ने शक्तावत नारायणदास को बेगू से निकाल दिया और वहाँ राणा का अधिकार करवा दिया। महाराणा अमरसिंह प्रथम ने बेगू की जागीर बल्लू चौहान को दे दी। इस पर मेघसिंह राणा से रुष्ट होकर मुगल बादशाह की सेवा मे चला गया।[१६] इसी घटना से चूडावत-चौहान वैमनस्य का सूत्रपात हुआ। कुछ समय के पश्चात् मेघसिंह राणा के बहलाने पर पुन मेवाड मे आ गया। राणा ने बेगू की जागीर मेघसिंह को दे दी और राव बल्लू चौहान को बेगू के बदले गगराड का क्षेत्र और बेदला की जागीर प्रदान करदी।[२०] अत राणा ने अपने दोनो ही सरदारो को प्रसन्न रखने की नीति का अनुसरण किया, लेकिन इससे वह चूडावतो और चौहानो के बीच उत्पन्न कटुता को कम नही कर सका।

बेदला के राव रामचन्द्र महाराणा राजसिंह के काल म कुँवर जयसिंह के साथ औरगजेब बादशाह की सेवा मे उपस्थित हुआ था।[२१] उसका उत्तराधिकारी राव सबलसिंह औरगजेब की लडाइयो मे राणा की सेवा मे रहा। जब कुँवर जयसिंह ने शाहजादे अकबर की सेना का सहार किया, वह भी कुँवर के साथ था।[२२] कोठारिया के रावत रुक्मागद ने भी उपर्युक्त लडाइयो मे भाग लिया था। महाराणा राजसिंह के मृत्योपरान्त महाराणा जयसिंह और मुगलो के बीच सन्धि वार्ता हेतु वह औरगजेब के पास राणा की तरफ से भेजा गया था।[२३] रुक्मागद का पुत्र उदयकर्ण (उदयभान) महाराणा राजसिंह

१८ (अ) मआसिरुल उमरा, पृ० ४००

(ब) मुहणोत नैणसी की ख्यात, प्रथम भाग, पृ० ६२–६३

सगर राणा सागा के पुत्र राणा उदयसिंह का पुत्र था। मेवाड के राणा से नाराज होकर वह बादशाह की सेवा मे उपस्थित हो गया। जहागीर ने इसे राणा बनाकर चित्तौड दे दिया।

१६ वीर विनोद, पृ० २५२–२५३

२० (अ) वही, पृ० ४५३–४५४

(ब) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ८७५ और ८६३

२१ वीर विनोद, पृ० ४१३

२२ मान-राजविलास, विलास १०, पद्य ५६, विलास १८, पद्य ५६; राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ३०–३८

२३ वही, पद्य ६५, विलास १८, पद्य ६६,
राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ३०–३८

के समय बासवाडा की चढाई मे अपने पिता के साथ था और उसकी विद्यमानता मे ही महाराणा की ओर से शाहजादे औरंगजेब के पास दक्षिण मे भेजा गया था। बादशाह की बिना अनुमति के महाराणा राजसिंह ने किशनगढ की राजकुमारी चारुमती से विवाह कर लिया था। औरंगजेब ने राजसिंह से इसका स्पष्टीकरण चाहा। महाराणा की तरफ से उक्त घटना सम्बन्धी एक पत्र उदयकर्ण के हाथ बादशाह के पास भेजा गया।[२४] औरंगजेब की मेवाड पर चढाई के समय उदयकर्ण ने वडी वीरता दिखाई। उसने उदयपुर के शाही थाने पर आक्रमण कर मुगल फौजो को वडी क्षति पहुँचाई।[२५]

बेदला के स्वामी रामचन्द्र चौहान के कनिष्ठ पुत्र केसरीसिंह की सेवाओ से प्रभावित हो महाराणा ने उसे राव की उपाधि दी और पारसोली की जागीर प्रदान कर उसे मेवाड के प्रथम श्रेणी के सरदारो मे स्थान दिया।[२६]

किन्ही कारणो से सलूबर के रावत रघुनाथसिंह से महाराणा राजसिंह नाराज हो गया और उसकी मूल जागीर सलूबर का पट्टा भी केसरीसिंह के नाम लिख दिया। चूडावत रघुनाथसिंह महाराणा से नाराज हो गया। केसरीसिंह सलूबर पर अधिकार नही कर सका। महाराणा के इस आदेश से चूडावतो और चौहानों मे कटुता बढी। इसका सविस्तार विवरण चूडावतो के परिचय के साथ आगे दिया जायेगा।[२७]

राव केसरीसिंह ने मेवाड मुगल युद्धो मे सक्रियता से भाग लिया। शाहजादे मुअज्जम को अपने पिता औरंगजेब के विरुद्ध भडकाने के अभियान मे राठौड दुर्गादास, सोनिग आदि के साथ केसरीसिंह ने भी योग प्रदान किया था। जब उनको मुअज्जम से सफलता नही मिली तो उन्होने दूसरे शाहजादे अकबर को औरंगजेब के विरुद्ध करने के लिए प्रयत्न किये, जिसमे उन्हें सफलता भी मिली।[२८] इस प्रकार चौहानो की मेवाड के महाराणाओ के प्रति अनेकानेक सेवाएँ थी, जिसके फलस्वरूप महाराणा ने भी उन्हें जागीर, सिरोपाव आदि से सम्मानित किया। विशेषकर महाराणा राजसिंह के काल मे इनका बडा सम्मान था।

---

२४ वीर विनोद, पृ० ४४२
२५ मान राजविलास, विलास १२, द्रष्टव्य पद्य १–२३
२६ वीर विनोद, पृ० ४५३
२७ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग १४, श्लोक ६ और ७
(ब) वीर विनोद, पृ० ४५३–४५४
ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ५८३

झालो और चौहानो के अतिरिक्त मेवाडी सामन्तो मे राठौड और पवार जागीरदारो का भी महत्व रहा है। राठौडो का प्रमुख ठिकाना बदनोर था। बदनोर के राठौडो का मूल पुरुष जयमल, जो महाराणा उदयसिंह की सेवा मे आया था, राव दूदा का पोता और वीरम का पुत्र था। राव दूदा जोधपुर के स्वामी राव जोधा का पुत्र था। इसे मेडता जागीर के रूप मे दिया गया था, इसलिए इसके वशज मेडतिया राठौड कहलाये। ई० स० १५६७ मे अकबर ने चित्तौड पर आक्रमण किया। उस समय किले की रक्षा हेतु महाराणा उदयसिंह ने जयमल को चित्तौड मे स्थित मेवाड़ी सेना का सेनापति नियुक्त किया था।[२९] जयमल राठौड और सीसोदिया पत्ता के रणकौशल, साहस, सैनिक प्रतिभा और विलक्षण पराक्रम से सम्राट अकबर मुग्ध हो गया था। उसने आगरे के किले के दरवाजे के समीप स्मारक के रूप मे इन दो वीरो की मूर्तियां खडी करवाई थी।[३०]

जयमल के वशज मेवाड राज्य की सेवा मे सदैव आगे रहे और देश की रक्षा हेतु प्राणो को न्योछावर करने के लिए भी तत्पर रहे। जयमल का वशज राठौड सावलदास महाराणा राजसिंह का समसामयिक था। उसने औरंगजेब के विरुद्ध लडी गई लडाइयो मे राणा का साथ दिया। औरंगजेब के मेवाड से अजमेर चले जाने के पश्चात् राठौड सावलदास ने महाराणा के आदेशानुसार बदनोर के शाही थाने पर आक्रमण किया। इस भयकर आक्रमण से भयभीत होकर शाही सेनापति रुहिल्लाखां और उसके १२,००० सवार अपनी जान बचाने के लिए रात्रि को वहां से भाग निकले और बादशाह के पास अजमेर पहुंचे। उनका सामान मेवाडी सेना के हाथ लगा। इस विजय से राठौड वीरो की सर्वत्र प्रशसा होने लगी।[३१]

मेवाड मे पवारो का मुख्य ठिकाना बिजोलिया था। इन पवारो का सम्बन्ध मालवा के परमारो से था। इनका मूल पुरुष अशोक महाराणा सग्रामसिंह (सांगा) की सेवा मे आया था।[३२] उसे मेवाड मे जागीर आदि से सम्मानित किया गया। अशोक के वशज निरन्तर मेवाड राज्य की सेवा मे रहे। इसी वश का वैरीसाल महाराणा राजसिंह का समकालीन था। वह

---

२९. (अ) तारीख-ए-अल्फी, इलियट, भाग ५, पृ० १७०
(ब) जी० एन० शर्मा . मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० ६६
३०. ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ६१५
३१. मान-राजविलास, विलास १६, पद्य १–२८
३२. ओझा . उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ८८७

राणा का मामा था। उसने मुगल आक्रमण के समय महाराणा का साथ दिया और कुँवर जयसिंह द्वारा शाहज़ादे अकबर के विरुद्ध किये गये सैनिक अभियान मे भी वह सम्मिलित था।[३३]

उपर्युक्त समवस्त राजपूत सामन्तो के साथ साथ मेवाड राज्य मे सीसोदिया राजवशीय सामन्तो का भी बाहुल्य था। सीसोदिया सामन्तो मे चूडावत और शक्तावत शाखाओ की मेवाड मे प्रमुखता रही है। महाराणा राजसिंह के समय तक सलूबर, देवगढ, बेगू और आमेट के चूडावतो के चार प्रथम श्रेणी के ठिकाने थे। चूडावतो के ठिकानो मे निरन्तर वृद्धि होती गई। इनका मूल ठिकाना सलूबर ही था।

सलूबर के सरदार महाराणा लक्षसिंह (लाखा) के ज्येष्ठ पुत्र चूडा के वशज हैं। चूडा के पुत्र काधल का दूसरा पुत्र सिंह था। सिंह के पुत्र जागा के वशज तो आमेट के रावत हैं और उसके दूसरे पुत्र सागा के वशजो का देवगढ ठिकाना है। देवगढ के रावत सागावत कहलाते हैं। चूडा की छठी पीढी मे खेंगार के पुत्र गोविन्ददास को बेगूं का ठिकाना प्राप्त हुआ था।[३४]

महाराणा लाखा ने मडोवर के राव चूडा की लडकी और रणमल की सहोदर बहिन हसाबाई से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। मारवाड नरेश इस विवाह के पक्ष मे नही था, क्योकि इस विवाह से यदि राणा लाखा के पुत्र हुआ तो वह मेवाड के सिंहासन का अधिकारी नही हो सकेगा। मेवाड की गद्दी का हकदार राणा लाखा का ज्येष्ठ पुत्र चूडा था। जब चूडा को इस बात का पता लगा तो उसने यह निश्चय कर लिया कि यदि उक्त विवाह से कोई पुत्र होता है तो वह मेवाड का स्वामी होगा। चूडा अपने छोटे भाई की सेवा में रहेगा। पितृभक्त चूडा की इस भीष्म प्रतिज्ञा के कारण लाखा का विवाह हसाबाई से सम्पन्न हुआ, जिससे मोकल का जन्म हुआ।[३५] चूडा के इस त्याग और पितृभक्ति से प्रसन्न होकर महाराणा ने चूडा व उसके वशजो को पट्टो, परवानो आदि पर भाले का चिह्न करने तथा महाराणा के हस्ताक्षरो को सही करने का अधिकार दिया। उसने इस बात की भी घोषणा की कि मेवाड़ का भाजगड (राज्य-प्रबन्ध) का कार्य चूडा या उसके मुख्य वशधर की सम्मति से होगा। इन आदेशो का पालन किया गया। राणा लाखा के मृत्योपरान्त मोकल

---

३३ मान-राजविलास, विलास १८, पद्य ६०

३४ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ८७६, ८८६, ८६२ और ८६६

३५ वीर विनोद, भाग प्रथम, पृ० ३०७–३०८

मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हुआ। चूडा ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया।[36]

चूडा व उसके उत्तराधिकारियों ने समय-समय पर मेवाड़ के महाराणाओं की अनुपम सेवाएँ की। सर्व प्रथम उसने रणमल के प्रभाव को मेवाड़ मे कम करने हेतु उसकी हत्या करवादी।[37] इसके पश्चात् चूडा के वंशज कांधल ने पितृघाती ऊदा को मेवाड़ से निकाल कर महाराणा कुम्भा के दूसरे लड़के रायमल को मेवाड़ की गद्दी पर बैठाया।[38] कांधल का पुत्र रत्नसिंह खानवा के युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुआ।[39] रत्नसिंह के उत्तराधिकारी दूदा ने बहादुरशाह की चित्तौड़ की लड़ाई मे राणा की तरफ से लड़कर अपने प्राणा का उत्सर्ग किया।[40] मेवाड़ की स्वतन्त्रता के लिए लड़े गये सभी युद्धों मे चूडावतो का बड़ा योगदान रहा।

चूडावतो को युद्ध मे हरावल का अधिकार प्राप्त था। इससे शक्तावत सरदारो को प्रतिस्पर्द्धा थी। ई० स० १६०० मे महाराणा अमरसिंह ने ऊंटाले के शाही थाने पर आक्रमण करना चाहा, उस समय शक्तावतो ने महाराणा से निवेदन किया कि इस बार सेना की हरावल मे चूडावतो के स्थान पर शक्तावतो को रखा जाय। राणा ने कहा कि भविष्य मे हरावल का अधिकार उसी को दिया जायेगा जो ऊंटाले के गढ़ में पहिले प्रविष्ट होगा। शक्तावतों और चूडावतों मे इस अधिकार प्राप्ति के लिए होड थी। दोनो ही इसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। चूडावत सरदार ने ऊंटाले पहुँचते ही सीढी की सहायता से गढ मे प्रवेश होना चाहा। चूडावत सरदार रावत जैतसिंह जब सीढी पर चढ रहा था तो उसके गोली लगी, जिससे वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसके आदेशानुसार उसके सहयोगियो ने उसका सिर काट कर गढ मे फेंक दिया। शक्तावत गढ़ का दरवाजा तोड़कर गढ मे प्रविष्ट हुए, परन्तु उन्हे बडी निराशा हुई जब उन्होंने चूडावत सरदार रावत जैतसिंह का कटा हुआ सिर किले के भीतर देखा। इससे चूडावतो का हरावल का अधिकार पूर्ववत् बना रहा।[41] इस घटना से स्पष्ट है कि चूडावतो और शक्तावतो में पारस्प-

३६ वीर विनोद, भाग प्रथम, पृ० ३१०–३११

३७ वही, पृ० ३२२

३८ वही, पृ० ३३६

३९ वही, पृ० ३६६

४०. ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ८८१

४१ (अ) टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, भाग १, पृ० १२२–१२३

(ब) वीर विनोद, पृ० २१७–२१८

रिक वैमनस्य और प्रतिस्पर्द्धा की भावना प्रबल थी। आगे जाकर मराठा-आक्रमण के समय इस भावना ने उग्र रूप धारण कर लिया था, जिससे मेवाड का सर्वनाश हुआ और मराठो का मेवाड मे प्रवेश सुलभ हो सका।

एक तरफ चूडावतो और शक्तावतो का वैमनस्य चल रहा था तो दूसरी ओर चूडावतो और चौहानो के मध्य भी प्रतिस्पर्द्धा व कटुता की भावना बलवती होती जा रही थी। यह ऊपर उल्लेख कर दिया गया है कि वेगू के रावत मेघसिंह महाराणा अमरसिंह प्रथम से नाराज होकर बादशाह की सेवा मे चला गया था, क्योंकि महाराणा ने वेगू की जागीर चौहान सरदार बल्लू को दे दी थी। अन्त मे महाराणा ने अपना निर्णय बदला। राणा ने रावत मेघसिंह को शाही दरबार से मेवाड मे बुला कर उसकी इच्छानुसार वेगू की जागीर उसे सुपुर्द करदी। चौहान बल्लू को वेदला की जागीर देकर उसे प्रसन्न रखा।[४२] इसी तरह की घटना पुन महाराणा राजसिंह के काल म भी घटित हुई थी।

स यव्रती चूडा ने अपने पिता को प्रसन्न करने हेतु मेवाड की गद्दी का परित्याग कर अपने कनिष्ठ भ्राता मोकल को मेवाड का राणा बना दिया था, जिससे मेवाड मे उसकी प्रतिष्ठा बढ गई थी। चूडा के इस त्याग के कारण मेवाड का शासन प्रबन्ध चूडा व उसके वशजो की सम्मति से करने का निर्णय महाराणा लाखा ने लिया था। महाराणा के इस निर्णय का मेवाड मे सदैव आदर किया गया और इसका यथा सम्भव पालन भी हुआ, जिसके फलस्वरूप मेवाड का राज्य प्रबन्ध सामान्यत चूडावतो के हाथ मे ही रहा।

महाराणा राजसिंह की गद्दीनशीनी के समय सलूबर का रावत रघुनाथसिंह था।[४३] राणा राजसिंह के शासन के प्रारम्भ काल मे बादशाह शाहजहा ने नाराज होकर चित्तौड पर मुगल सेना भेज दी थी और राणा से सन्धि सम्बन्धी बातचीत करने हेतु उसने मुशी चन्द्रभान को उदयपुर भेजा था।[४४] महाराणा का मुसाहिब होने के कारण रावत रघुनाथसिंह ने उक्त शान्ति वार्तालाप मे सक्रियता से भाग लिया था। फिर शान्ति-शर्तों के अनुसार कुंवर को बादशाह की सेवा मे भेजा गया। कुंवर के साथ वेदला के राव रामचन्द्र

४२ वीर विनोद, पृ० २६५

४३ किशोरदास राजप्रकाश (पाण्डुलिपि), पृ० पत्राक ३६ पद्य ६३, (प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर शाखा, सरस्वती भडार, हिन्दी ग्रन्थाक ३५५)

४४ वीर विनोद, पृ० ४०२

चौहान आदि आठ सरदार भी गये थे।[४५] मुंशी चन्द्रभान रावत रघुनाथसिंह की प्रखर बुद्धि, वाक् पटुता, शासन सम्बन्धी योग्यता आदि से अत्यधिक प्रभावित हुआ था। उसने रावत रघुनाथसिंह की योग्यता के विषय मे बादशाह शाहजहाँ को लिखा था।[४६] इस प्रकार मुंशी चन्द्रभान द्वारा रावत की प्रशसा ईर्ष्यालु व स्वार्थी चौहान और चूडावतो से वैमनस्य रखने वाले अन्य मेवाडी सरदारो के लिए असहनीय थी। अत उन्होंने रावत के विरुद्ध समयानुकूल राणा के कान भरने शुरू कर दिये।[४७]

रावत रघुनाथसिंह पूर्ववत् मेवाड राज्य की सेवा मे सदैव उपस्थित रहा। महाराणा राजसिंह ने डूगरपुर, बासवाडा और देवलिया (प्रतापगढ) के शासकों को नत मस्तक करवाने और उनके राज्यों को मेवाड राज्य के अधीन लाने हेतु प्रधान फतहचन्द के नेतृत्व मे एक मेवाडी सेना भेजी थी। इसमे रावत रघुनाथसिंह, रावत मानसिंह (सारगदेवोत), महाराज मोहकमसिंह शक्तावत आदि सरदार भी सम्मिलित थे। उक्त राज्यों के शासकों ने राजसिंह की अधीनता स्वीकार करली।[४८]

यह ऊपर उल्लेख कर दिया गया है कि रावत रघुनाथसिंह की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा, चौहान, शक्तावत आदि सरदारो के लिए ईर्ष्या का विषय बना हुआ था। उन्होंने राणा को रघुनाथसिंह के विरुद्ध करने मे कोई कसर नही रखी। राणा ने भी अन्त मे उक्त सरदारो के प्रभाव मे आकर अपना रुख रावत के प्रति बदल लिया। उसने चूडा और उसके वशजो के सभी उपकारो को भुलाकर उसकी सलूबर की जागीर का पट्टा राव रामचन्द्र चौहान के कनिष्ठ पुत्र केसरीसिंह (पारसोली वाला) के नाम लिख दिया। इससे रावत रघुनाथसिंह राणा से अप्रसन्न होकर अपनी जागीर सलूबर मे चला गया और उसने यह दृढ निश्चय किया कि चौहानो का सलूबर पर अधिकार नही होने देगा।[४९] कुछ समय के बाद वि० सं० १७२६ ज्येष्ठ शुक्ल १४ (ई० स० १६६९ जून तारीख १३) को वह बादशाह औरगजेब की सेवा मे लाहौर

---

४५. वीर विनोद, पृ० ४१३
४६. मुंशी चन्द्रभान द्वारा भेजा गया पत्र न० १; वीर विनोद, पृ० ४०८
४७. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ५४४
४८. विस्तृत वर्णन के लिए अध्याय तीसरा देखें।
४९. (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग १४, श्लोक ६–७
(ब) ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ५४५ पाद टिप्पणी १

पहुँचा। उसने महाराणा की नाराजगी और मेवाड की स्थिति से बादशाह को परिचित करवाया। बादशाह औरगजेब ने सम्मान पूर्वक उसे अपनी सेवा मे ले लिया। एक हजार रुपये की कीमत का जमधर उपहार मे देकर बादशाह न उस एक हजारी जात व तीन सौ सवार की मनसब प्रदान कर दी।[५०]

चौहान और चूडावतो का मतभेद तो राणा अमरसिंह प्रथम के काल से बेगू की जागीर के प्रश्न को लेकर हो गया था, अब चौहानो को चूडावतो के विरुद्ध कार्य करने का अवसर मिल गया। महाराणा राजसिंह ने सलूबर की जागीर चौहानो के नाम पर लिख दी किन्तु इसे वह कार्यान्वित नही करा सका, क्योकि ऐसा करने पर चूडावत शाखा के समस्त सामन्तो का राणा के विरुद्ध होने की सम्भावना थी।

रावत रघुनाथसिंह के बादशाह औरगजेब की सेवा मे जाने के पश्चात् उसके पुत्र रत्नसिंह ने अपनी परम्परागत जागीर का कार्य भार सम्भाल लिया। वह मेवाड राज्य की सेवा म रहा। औरगजेब द्वारा किये गये मेवाड पर आक्रमण म वह राणा के साथ रहा।[५१] रावत रत्नसिंह ने मुगल सेनापति हसनअलीखाँ को परास्त किया[५२], शाहजादे अकबर पर कुँवर जयसिंह के आक्रमण म वह उसके साथ रहा[५३], गोगूदे की घाटी म उसने दिलावरखाँ को घेरा और रात्रि म घाटे से बाहर निकलती हुई मुगल सेना को क्षति पहुँचाई।[५४] इसके अतिरिक्त शाहजादे मुअज्जम को राजपूतो क साथ मिलाने के लिए प्रयत्नो म उसका भी योगदान रहा। इस प्रकार मेवाड राज्य के लिए चूडावतो की महत्ती सेवाए थी।[५५]

चूडावतो के दूसरे प्रतिद्वन्द्वी सीसोदिया वशी शक्तावत जागीरदार थे। महाराणा राजसिंह क काल तक शक्तावतो के भींडर और बानसी के दो प्रमुख ठिकाने थे। यहाँ के सरदारो की क्रमश 'महाराज' और 'रावत' उपाधिएँ थी।[५६] शक्तावतो का मूल पुरुष महाराणा उदयसिंह का दूसरा पुत्र शक्तिसिंह

---

५० वीर विनोद, पृ० ४५४

५१ मान-राजविलास, विलास १०, पद्य ८३, विलास १३, पद्य ६, ओझाजी ने विलास १२ लिखा है, जो ठीक नहीं है।

५२ मान-राजविलास, विलास १३

५३ राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ३०–३८, राजविलास, विलास १८

५४ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ५८२

५५ मुन्तखब-उल् लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० ३००

५६ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ६१० और ६१७

था। वह पहले महाराणा से अप्रसन्न होकर अकबर बादशाह की सेवा में चला गया था, किन्तु बाद में जब अकबर ने महाराणा प्रतापसिंह के विरुद्ध मुगल फौजें भेजी, वह मुगल सेवा से मुक्त होकर पुनः मेवाड़ चला आया। महाराणा अमरसिंह प्रथम के काल में ऊंटाले के किले की लड़ाई में शक्तिसिंह के तीसरे पुत्र बल्लू ने दरवाजे पर लगे हुए भालों पर खड़े होकर हाथी को उसके शरीर पर हूल देने को कहा था। बल्लू तो मर गया किन्तु दरवाजे के टूट जाने से महाराणा की सेना ने ऊंटाले पर अधिकार कर लिया था।[५७]

शक्तावत सरदार भी मेवाड़ राज्य की सुरक्षा और स्वतन्त्रता के लिए सदैव सेवा में प्रस्तुत रहे। महाराणा राजसिंह के काल में डूंगरपुर, बांसवाड़ा आदि क्षेत्रों पर राणा का अधिकार स्थापित करवाने में शक्तावत सरदार महाराज मोहकमसिंह का योगदान भी सराहनीय था।[५८] औरंगजेब के साथ लड़े गये युद्धों में शक्तावत सरदार मोहकमसिंह (भींडर) और केसरीसिंह (बानसी) महाराणा के साथ थे। राजनगर के शाही थाने और चित्तौड़ में स्थित शाहजादे अकबर की फौजों पर मेवाड़ी सेना के आक्रमण के समय उक्त सरदार सम्मिलित थे।[५९]

कानोड़ के सरदार सारंगदेवोत कहलाते थे। सारंगदेव अज्जा (चूंडा का भाई) का पुत्र और महाराणा लाखा का पौत्र था।[६०] महाराणा राजसिंह के काल में इस वंश के सरदार मानसिंह ने मेवाड़ की अनेक सेवाएं की। ई० स० १६६२ में मानसिंह आदि सरदारों ने 'मेवल' के मीणों का दमन किया था। इस पर महाराणा ने प्रसन्न होकर 'मेवल' प्रदेश उन्हें जागीर में दे दिया।[६१]

महाराणा राजसिंह के काल तक मेवाड़ में सामन्ती व्यवस्था बड़ी सुचारु रूप से चलती रही। सामन्तों ने अपने स्वामी धर्म का पालन किया। जब भी मेवाड़ राज्य पर संकट आया तो ये सामन्त अपने अनुयायियों, भाइयों व जिलायतों के साथ राज्य की रक्षा के लिए मर मिटने को उद्यत रहे।

---

५७. टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० १२२-१२३

५८ वेडवास की प्रशस्ति, वीर विनोद, पृ० ३८१-८२,
राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक १६-२०,

५९ मान राजविलास, विलास १८

६० ओझा मेवाड़ राज्य का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ९०४

६१ राजप्रशस्ति, सर्ग ८ श्लोक ३१-३३,
वीर विनोद, पृ० ४४७

वार्षिक कर देकर वे राजकीय कोष की पूर्ति भी करते थे। महाराणाओं ने भी उनके साथ शिष्टता व सम्मान का व्यवहार किया और समय समय पर उनकी पदोन्नति कर उनकी प्रतिष्ठा को बनाये रखा।

शान्तिकाल मे उत्सवों और त्यौहारो मे उपस्थित होकर सामन्त वर्ग दरबार की शोभा को परिवर्द्धित करते थे। इन अवसरो पर राणा की ओर से उन्हें विधिवत् सत्कार व सम्मान दिया जाता था।

महाराणा राजसिंह के राज्याभिषेक के समय दरबार मे एकत्रित हुए सामन्तो का कवियो ने अपनी कृतियो मे बडी सुन्दर शैली मे चित्रण किया है।[६२] ई० स० १६७६ मे राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के अवसर पर भी सभी सामन्त एकत्रित हुए थे, जिसका उल्लेख राजप्रशस्ति महाकाव्य मे मिलता है। राज्य सम्बन्धी सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों में महाराणा अपने सामन्तो से मत्रणा किया करता था। ई० स० १६७६ मे जब बादशाह औरगजेब न मेवाड पर आक्रमण किया उस समय महाराणा राजसिंह ने सामन्तो से मन्त्रणा करने हेतु एक विशेष दरबार का आयोजन किया था। मान कवि ने अपने ग्रन्थ राजविलास म बडे साहित्यिक ढग से उन सामन्तो का विवरण दिया है जो इस दरबार मे उपस्थित थे।[६३]

अन्त मे हम यह कहेंगे कि महाराणा राजसिंह के सम्बन्ध अपने सामन्तो के साथ सामान्यत बडे सुखद व मधुर थे। इसके काल मे मेवाड का गौरव बढा। यदा कदा सामन्तों मे पारम्परिक ईर्ष्या व प्रतिस्पर्द्धा के कारण राज्य मे झगडे भी हुए किन्तु महाराणा राजसिंह ने अपनी मेधाविता और शासकीय पटुता से इन्हे सुलझा लिया। उसने मेवाडी सामन्तो मे सदैव शक्ति सतुलन बनाये रखा, जिसके फलस्वरूप वह एक दीर्घ काल तक मेवाड मे शान्तिपूर्ण शासन चलाने मे सफल रहा। कालान्तर मे विशेषकर महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के काल मे सामन्तो के साथ छल व कपट का व्यवहार किया गया। महाराणा ने कुछ स्वामी भक्त सामन्तों की हत्या भी करवा दी, जिससे मेवाड में सामन्त व्यवस्था विच्छिन्न हो गई। सामन्तवर्ग उच्छृखल हो उठा, जिसका परिणाम मेवाड को भुगतना पडा।

---

६२ किसोरदास राजप्रकाश (पाण्डुलिपि), पत्राक ३६–४२, पद्य ६२–७३, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर शाखा (सरस्वती भडार) हिन्दी ग्रन्थाक ३५५

६३ मान राजविलास, विलास १०, पद्य ५३–७०

७

मेवाड़-मुगल संघर्ष

शाहजहाँ के शासन काल के अंतिम समय मे (ई० स० १६५३-५४) महाराणा राजसिंह द्वारा चित्तौडगढ का जीर्णोद्धार करवाने के अपराध मे मेवाड के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की गई थी। मुगल सैनिको ने चित्तौड नगरी पर अधिकार कर लिया और गढ की नवनिर्मित दीवारो और बुर्जों को धराशायी कर मुगल प्रभुसत्ता का प्रदर्शन किया। महाराणा ने क्षमा याचना की और अपने छ वर्षीय पुत्र को भी बादशाह की सेवा मे उपस्थित किया, जिससे मेवाड पर की जाने वाली सैनिक कार्यवाही तो समाप्त करदी गई किन्तु शाहजहाँ ने पुर, माडल, खैराबाद, बदनोर आदि राणा के कई परगने शाही अधिकार मे ले लिए थे। महाराणा को परिस्थितिवश मुगल शक्ति के समक्ष झुकना पडा था। उसे इससे बडी आत्मग्लानी हुई थी। वह इस अपमान का बदला लेने के लिए उत्सुक था।[1]

कुछ समय के बाद (ई० स० १६५७) शाहजहाँ बीमार पडा। बादशाह की बीमारी की खबर से उसके सभी पुत्रों मे शाही सिंहासन पर आरूढ होने की महत्वाकाक्षा जाग्रत हो उठी। भाई, भाई के रक्त के लिए लालायित हो उठा। मुगल साम्राज्य, शाहजादों के युद्ध के फलस्वरूप, सकटग्रस्त था। इस अव्यवस्था का महाराणा ने लाभ उठाना चाहा और उसने अपने पुराने अपमान का बदला लेने के लिए इसे उपयुक्त समय समझा। नीति विशारद महाराणा राजसिंह ने उक्त शाहजादो के युद्ध मे पहले तटस्थता का रूप अपनाया किन्तु बाद मे उसने औरगजेब का साथ दिया। शाहजादे औरगजेब से सकेत प्राप्त हो जाने पर राणा ने मेवाड से सलग्न शाही क्षेत्रों को लूटा और शाहजहाँ द्वारा जब्त किये गये सभी मेवाडी परगनों को पुन हस्तगत कर लिया। औरगजेब ने बादशाह बनने के तुरन्त बाद एक शाही फ़रमान द्वारा इन परगनो पर राणा का विधिवत् अधिकार स्वीकार कर लिया और उसने राणा को

---

१. द्रष्टव्य : अध्याय २, पृ० २५-३३

मनसब, उपहार आदि से सम्मानित किया। इस प्रकार मेवाड और मुगल साम्राज्य के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हो गये थे।[2] मेवाड म अगले २१ वर्ष सामान्यत. शान्तिपूर्ण व्यतीत हुए जिससे फलस्वरूप राणा राजसिंह अपना अधिकाश समय मेवाड राज्य की समृद्धि हेतु रचनात्मक कार्यों मे लगा सका।[3]

नि.सन्देह उक्त २१ वर्ष मेवाड राज्य मे शान्ति के वर्ष थे किन्तु यह शान्ति वैसी ही शान्ति थी जैसी तूफान से पहले रहा करती है। यदि हम इस काल के मुगल-मेवाड सम्बन्धो का सर्वेक्षण करें तो हम ज्ञात होगा कि औरगजेब और महाराणा राजसिंह के सम्बन्ध शनै शनै बिगडते जा रहे थे। वे एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे। वस्तुत यह काल शीतयुद्ध का काल था जो अन्ततोगत्वा ई० स० १६७६ म भयकर युद्ध के रूप मे भडक उठा। *यहाँ हम उन घटनाओ का पुन उल्लेख करेंगे जिनसे महाराणा राजसिंह* और औरगजेब के सम्बन्धो मे कुछ तनाव उत्पन्न हो गया था।

किशनगढ की राजकुमारी चारुमती का विवाह बादशाह औरगजेब से होना निश्चित हो गया था, किन्तु राजकुमारी को यह स्वीकार नही था। उसने राजसिंह को एक पत्र द्वारा प्रार्थना की कि वह उसे किशनगढ आकर विवाह करके ले जावे। महाराणा राजसिंह किशनगढ पहुँच गया और उसने विधिवत् चारुमती से विवाह कर उसे उदयपुर ले आया। महाराणा का यह एक साहस पूर्ण कार्य था। इससे सर्वत्र उसकी प्रशसा होने लगी थी। परन्तु इस घटना से बादशाह औरगजेब अप्रसन्न हुआ और उसन इस धृष्टता के लिए महाराणा को सफाई प्रस्तुत करने के लिए एक पत्र भेजा था।[4]

देवलिया के महारावत हरिसिंह ने महाराणा के विरुद्ध बादशाह की इस नाराजगी का लाभ उठाया। जब औरगजेब दिल्ली के सिहासन पर आसीन हुआ उस समय महाराणा की सेवाओ से प्रसन्न होकर उसने एक फरमान के द्वारा अन्य परगनों के साथ देवलिया का क्षेत्र भी राणा के अधीन कर दिया था। हरिसिंह की प्रार्थना पर बादशाह ने कुछ भी विचार नही किया था। हरिसिंह को विवश होकर महाराणा की अधीनता स्वीकार करनी पडी थी। चारुमती के विवाह की घटना से हरिसिंह ने लाभ उठाया। वह दिल्ली *पहुँचा और उसने औरगजेब के कान महाराणा के विरुद्ध भरे,* जिसके परिणामस्वरूप गयासपुर और बसाड के परगने मेवाड राज्य से पृथक् कर हरिसिंह के

---

२ द्रष्टव्य अध्याय ३, पृ० ३५–४८–१७

३ द्रष्टव्य अध्याय ५

४ द्रष्टव्य अध्याय ४, पृ० ५६–६०

नाम लिख दिये गये। महाराणा की इन परगनो सम्बन्धी प्रार्थना पर बादशाह ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इस घटना से भी मेवाड-मुगल सम्बन्धो मे कुछ तनाव उत्पन्न हुआ था।[५]

बादशाह औरगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने हिन्दू धर्म विरोधी नीति का अनुसरण किया। प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार लिखते हैं कि 'औरगजेब ने हिन्दू धर्म पर बडे विषैले ढग से आक्रमण किया था।" पहले तो उसने हिन्दुओ के नये मन्दिरो के निर्माण पर रोक लगा दी। तदुपरान्त ई० स० १६६६ तारीख ६ अप्रेल को उसने काफिरो के सभी शिक्षालयो और मन्दिरो को गिरा देने और मूर्तिपूजा की क्रिया को पूर्णतया बन्द करवाने के लिए आदेश प्रसारित किये।[६] सम्राट के आदेशानुसार हजारो मन्दिर भूमिसात कर दिये गये और मूर्तियों को खडित कर विविध प्रकार से अपमानित किया गया। सोमनाथ (काठियावाड), केशवराय (मथुरा) और विश्वनाथ (वाराणसी) के सुविख्यात मन्दिर भी धर्मान्ध औरगजेब के क्रूर हाथो से बचने न पाये।[७] हिन्दुओ के त्योहारो, मेलो आदि पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। हिन्दुओं को विद्याभ्यास व सस्कृत विषय का अनुशीलन करने की भी अनुमति नही थी। औरगजेब की इस धर्मान्ध व असहिष्णु नीति के फलस्वरूप उत्तरी भारत मे सर्वत्र असन्तोष का वातावरण व्याप्त हो गया। जाटो (१६६६ ई०), सतनामी ब्राह्मणो (१६७२ ई०) और सिक्खो ने (१६७५ ई०) मुगल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह के झडे खडे किये थे। औरगजेब की इस मूर्तिभजन की नीति से भयभीत होकर वल्लभ सम्प्रदाय के गोसाईं मथुरा मे स्थित द्वारकाधीश और श्रीनाथजी की मूर्तिएँ लेकर छद्मवेष मे विभिन्न स्थानो का भ्रमण करते हुए मेवाड मे पहुँचे। यहाँ हिन्दू धर्म रक्षक महाराणा राजसिह ने उनका सहर्ष स्वागत किया। उसने द्वारकाधीश और श्रीनाथजी की मूर्तियाँ क्रमश काकरोली और नाथद्वारा मे प्रतिस्थापित की।[८]

महाराणा राजसिह ने अपने शासनकाल मे मेवाड मे अनेक नये मन्दिर बनवाये और पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाया। उसके राज्य काल मे सस्कृत अध्ययन के लिए सभी सुविधाएँ प्राप्त थी। हिन्दू धर्म सम्बन्धी

---

५ वही, पृ० ६०–६३

६ (अ) मआसिर-ए आलमगीरी (फारसी मूल), पृ ८१
   (ब) मुन्तख्ब उल-लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० १८४

७ वही,

८ द्रष्टव्य : अध्याय ५, पृ० १७–२०

सभी गतिविधियों में राज्य की ओर से प्रोत्साहन प्राप्त था और राणा स्वय इनमे उत्साह और सक्रियता से भाग लिया करता था। उसने औरंगजेब के हिन्दू धर्म विरोधी आदेशो की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

महाराणा का शाही आदेशों की अवहेलना करना तथा इनके विरुद्ध आचरण करना धर्मान्ध औरंगजेब के लिए असहनीय था किन्तु सम्भवत उसने अभी राजपूतो से सघर्ष करना उचित नही समझा, क्योंकि उसे भय था कि यदि धर्म के प्रश्न को लेकर उसने महाराणा राजसिंह के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही की तो सभी राजपूत सरदार सामूहिक रूप से सगठित होकर उसकी सत्ता को चुनौती देने के लिए कही तैयार न हो जाएँ। वह मारवाड के महाराजा जसवन्तसिंह के जीवित रहते इस प्रकार की आपत्ति को आमन्त्रित करने के पक्ष मे नही था। अत वह अप्रसन्न होते हुए भी महाराणा राजसिंह के विरुद्ध कार्यवाही करना नीतिसगत नही मानता था।

इसी प्रकार महाराणा राजसिंह भी औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति से क्षुब्ध अवश्य था किन्तु वह इस स्थिति मे नही था कि शक्ति सम्पन्न मुगल बादशाह औरंगजेब का खुले रूप से विरोध कर सके। ऐसा करना उसके लिए आत्मघात ही सिद्ध होता।[९]

अत उसने भी हर प्रकार से औरंगजेब के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखे, परन्तु स्मरण रहे कि वह इस सम्भावना से अनभिज्ञ नही था कि निकट भविष्य मे धर्मान्ध सम्राट औरंगजेब से उसे युद्ध करना होगा। अत उसने देश की सुरक्षा के लिए साधन जुटाने मे कमी नही रखी। उसने राणा उदयसिंह और प्रताप की भाँति अपना ध्यान 'गीर्वा' मे सुरक्षा की व्यवस्था की ओर लगाया। ई० स० १६७४ मे 'गीर्वा' की फाटक पर जिसे देबारी कहते हैं सुदृढ व मजबूत किवाड लगवाये और उसके चारों ओर की पर्वतमाला को, आक्रमणकारी के लिए अभेद्य बनाने की दृष्टि से, ऊँची ऊँची दीवारों और बुर्जों से सुसज्जित किया।[१०] इस क्षेत्र की रक्षा हेतु महाराणा ने अपने वीर योद्धाओं को कर मुक्त भूमि वितरण की और उन्हें इस क्षेत्र की सुरक्षा की जिम्मेदारी सुपुर्द करदी।[११] अपने साथियों व प्रजाजन मे सैनिक भावनाओ को बल प्रदान करने हेतु उसने 'विजयकटकातु' की उपाधि धारण की।[१२]

---

९. जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६५

१० राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक २६–२८, देबारी का अभिलेख, वि० स० १७३१ श्रावण शुक्ल ५

११. जी एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६५

१२ वही।

मेवाड राज्य मे चूडावतो और चौहानो के बीच प्राचीन काल से ही मनमुटाव व वैमनस्य चला आ रहा था। महाराणा राजसिंह चौहानो की सेवाओं से अधिक प्रभावित था। अत उसने बेदला के चौहान सरदार रामचन्द्र के कनिष्ठ पुत्र केसरीसिंह (पारसोली वाला) को सलूबर की जागीर रावत रघुनाथसिंह चूडावत से छीन कर दे दी।[13] रावत रघुनाथसिंह, जिसकी मेवाड राज्य के लिए अनेक सेवाएँ थी, महाराणा राजसिंह से खिन्न होकर ई० स० १६६६ जून १३ को बादशाह औरगजेब की सेवा मे लाहोर पहुँचा। बादशाह ने उसे सम्मानपूर्वक अपनी सेवा मे ले लिया। रावत रघुनाथसिंह ने महाराणा के विरुद्ध औरगजेब के कान भरे। राणा को भी बादशाह द्वारा रघुनाथसिंह को शरण मे लेना खटक रहा था।[14]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महाराणा राजसिंह और औरगजेब के सम्बन्धों मे शनै शनै तनाव उत्पन्न हो रहा था, किन्तु फिर भी यह ध्यान मे रहे कि उन्होंने खुले तौर पर एक दूसरे के विरुद्ध विरोध का प्रदर्शन नहीं किया। उनमे पूर्ववत् उपहारो का आदान-प्रदान होता था। ई० स० १६७६ में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुई, जिनके फलस्वरूप मुगल-मेवाड सम्बन्ध पूर्णतया बिगड गये और संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इन घटनाओं का विवेचन नीचे किया जायेगा।

वि० स० १७३५ की पौष वदि १० (ई० स० १६७८ तारीख २८ नवम्बर) को जमरूद मे मारवाड के शासक जसवन्तसिंह का स्वर्गवास हो गया।[15] उस समय उसके कोई पुत्र नहीं था। जब इसकी सूचना आलमगीर को मिली तो वह बडा प्रसन्न हुआ। तवारीख मोहम्मदशाही के अनुसार इस समय औरगजेब के मुख से स्वत. ही ये शब्द निकले—दर्वाजए कुफ्र शिकस्त (आज धर्म विरोध का दरवाजा टूट गया)।[16] महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु ने मानो राजपूत-मुग़ल युद्ध का बिगुल बजा दिया। औरगजेब ने तुरन्त

---

१३ वीर विनोद, पृ० ४५३; द्रष्टव्य : अध्याय ६, पृ० ६–६

१४. वही, पृ० ४५४; द्रष्टव्य : अध्याय ६, पृ० ११–१६

१५. (अ) मआसिर ए-आलमगीरी, इलियट, भाग ७, पृ० १८७

(ब) रेऊ : मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० २४१

(स) ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५५२
यदुनाथ सरकार ने जसवन्तसिंह के मरने की तिथि १० दिसम्बर १६७८ दी है।

१६. रेऊ : मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० २४२

मारवाड को खालसा घोषित कर दिया और वहाँ के शासन को चलाने के लिए शाही मुसलमान प्रशासको की नियुक्ति कर दी।[१७] शाही सेना ने मारवाड राज्य पर अधिकार कर लिया। जोधपुर राज्य के उच्च अधिकारी वर्ग व अधिकाश सैनिक महाराजा की सेवार्थ काबुल मे थे, अत जोधपुर मे शाही सेना का विरोध नही हुआ।[१८] इसके अतिरिक्त विरोध करने वालो को भयभीत करने के लिए औरगजेब स्वयं, दलबल के साथ १ जनवरी सन् १६७६ को दिल्ली से अजमेर के लिए प्रस्थान कर चुका था। २ फरवरी को वह अजमेर पहुँचा और वहाँ से मारवाड की गतिविधियो का परिनिरीक्षण करने लगा।[१९] बादशाह ने अजमेर मे कुछ समय तक ठहर कर मारवाड प्रदेश पर पूर्णरूपेण शाही अधिकार करवा दिया। शाही शासको ने बडे उत्साह के साथ औरगजेब के आदेशानुसार मारवाड के मन्दिरो व मूर्तियो को नष्ट करना चालू कर दिया।

नीतिकुशल औरगजेब उक्त घटनाओ के सम्बन्ध मे महाराणा राजसिंह की प्रतिक्रिया जानना चाहता था। महाराणा ने भी बादशाह के मन्तव्य को जानने के लिए अपने वकील अजमेर भेज दिये थे।[२०] बादशाह ने राणा के पास एक फरमान भेजा, जिसमे महाराणा को अपने कुँवर को शाही सेवा मे उपस्थित करने के लिए आदेश था।[२१] महाराणा ने औरगजेब के आदेशानुसार अपने कुँवर जयसिंह को शाही पदाधिकारी मुहम्मद नईम, जो उसे लेने के लिए उदयपुर आया था, के साथ बादशाह की सेवा मे भेज दिया। कुँवर के साथ चन्द्रसेन भाला और पुरोहित गरीबदास भी गये थे।[२२] इस बीच मे २६ फरवरी को बादशाह औरगजेब को स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंह की दो गर्भवती रानियो के दो पुत्र होने की सूचना मिली।[२३] दोनो नवजात कुमारों

---

१७. मआसिर-ए-आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० १७२

१८ अजितोदय, सर्ग ५, श्लोक ५५–५६, सर्ग ६, श्लोक २७–२६
रेऊ : मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० २५०

१६. देवीप्रसाद औरगजेबनामा, भाग २, पृ० ८०;
रेऊ : मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० २५०

२०. वीर विनोद, पृ० ४५५

२१. फरमान तारीख २५ मुहर्रम साल २२ जुलूस, १०६० हिज्री (२७ फरवरी १६७६) को लिखा गया—वीर विनोद, पृ० ४५५–४५८

२२ वीर विनोद, पृ० ४५६

२३ देवीप्रसाद . औरगजेबनामा, भाग २, पृ० ८१

को छीन लेने व अपना पथ निष्कंटक करने हेतु औरंगजेब दिल्ली के निकट पहुँच चुका था, तब कुँवर जयसिंह अपने साथियों के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। औरंगजेब ने यथोचित उपहार देकर कुँवर का स्वागत किया।[२४] कुछ दिनों के बाद १६ अप्रेल १६७६ को बादशाह ने कुँवर जयसिंह को खिलअत, मोतियों का सरपेच कानों के लाल के दाने, जड़ाऊ तुर्रा, सुनहरी सामान सहित अरबी घोडा और हाथी देकर उदयपुर जाने के लिए स्वीकृति प्रदान की। राणा के लिए भी उपहार भेजे गये थे। कुँवर अपने दल के साथ मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों का भ्रमण करता हुआ १५ मई १६७६ ई० को उदयपुर पहुँचा।[२५] अभी तक महाराणा और औरंगजेब के सम्बन्ध पूर्ववत् मैत्रीपूर्ण ही रहे, किन्तु मित्रता की तह काफी मलीन हो चली थी।

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु व मारवाड़ पर मुगलों का सहज ही में आधिपत्य स्थापित हो जाने तथा महाराणा राजसिंह के मैत्रीपूर्ण व्यवहार से प्रोत्साहित होकर धर्मान्ध औरंगजेब ने दिल्ली पहुँचने पर २ अप्रेल १६७६ को हिन्दुओं पर अपमानजनक जजिया कर लगाने की घोषणा कर दी।[२६] इस कर से हिन्दू गरीब जनता की आर्थिक स्थिति पर बड़ा असर पड़ा। दिल्ली के हिन्दू नागरिकों ने इस कर का विरोध किया किन्तु कट्टरपंथी औरंगजेब पर इसका तनिक भी असर नहीं हुआ।[२७] साम्राज्य में जजिया कर बड़ी सख्ती से वसूल किया जाने लगा, जिससे हिन्दू जनता अत्यधिक व्यथित व दुःखी हो उठी। हिन्दुओं का मुगल शासन की न्यायप्रियता के प्रति विश्वास उठने लगा

---

२४ देवीप्रसाद : औरंगजेबनामा, भाग २, पृ० ८२

२५ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ५–६

(ब) देवीप्रसाद : औरंगजेबनामा, भाग २, पृ० ८३

(स) वीर विनोद, पृ० ४५६

२६ मआसिर ए आलमगीरी, पृ० १७४, जजिया एक प्रकार का कर था जो मुसलमानों के राज्य में रहने वाले सभी विधर्मियों से लिया जाता था। इस कर के लिए मुसलमान धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों को यह आदेश दिया था कि जो लोग मुसलमान धर्म स्वीकार न करें, उनसे तब तक लड़ते रहो, जब तक वे विनम्रता से जजिया न दे दें। सम्राट अकबर ने इस कर को अपने साम्राज्य के लिए हानिकारक समझ कर बन्द कर दिया था (१५६४ ई०)। द्रष्टव्य 'जजिया पर लेख,' स्टडीज इन मेडिवेल् इण्डियन हिस्ट्री, पृ० ११३–१४४ डी० सरन

२७ सरकार : औरंगजेब (१६१८–१७०७ ई०) पृ० १५२–१५३

था। साम्राज्य मे यत्र तत्र जजिया कर के प्रश्न को लेकर उपद्रव भी हुए। जिस मुगल साम्राज्य की नीव अकबर ने सहिष्णुता, सम-वयता, धर्मनिरपेक्षता आदि महत्ती सिद्धान्तो के आधार पर डाली थी औरंगजेब ने अपनी पक्षपातपूर्ण धार्मिक नीति से उसे कमजोर व जर्जर करदी। मुगल साम्राज्य की दुर्दशा उसके जीवनकाल म ही दृष्टिगत होने लगी थी।[२८]

ऐसी परम्परागत मान्यता है कि जजिया कर के फलस्वरूप हिन्दू गरीब जनता को सतृस्त देखकर महाराणा राजसिंह ने इसके विरोध मे एक पत्र बादशाह औरंगजेब को लिख भेजा था। इस पत्र की प्रतिलिपि को सर्वप्रथम कर्नल टॉड ने अपनी पुस्तक एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान मे प्रकाशित की थी।[२९] इसका अनुवाद डब्ल्यू० बी० रोज न किया था। इसकी मूल प्रति उदयपुर के महाराणा के निजी कार्यालय मे सुरक्षित है। इसी पत्र की एक प्रति बगाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता और दूसरी प्रति एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन मे प्राप्त है। इन तीनो प्रतियो के विषय-विवरण मे कतिपय अन्तर है और कलकत्ता तथा लन्दन की प्रतियो मे पत्र के लेखक का नाम क्रमश शम्भाजी और शिवाजी दिया है।[३०] इन विभिन्नताओ के कारण यह पत्र इतिहासकारो के लिए विवादास्पद विषय बन गया है। राणा राजसिंह ने उक्त पत्र औरंगजेब को लिखा था इसमे सन्देह होना तो स्वाभाविक ही है। हमे तो इस पत्र की प्रामाणिकता पर भी सशय है। यहाँ इस पत्र के सम्बन्ध मे विद्वान इतिहासकारो के मतो का उल्लेख करना समीचीन ही होगा।

सर्वप्रथम आर्मे ने अपनी पुस्तक ए फ्रेगमेंन्ट ऑफ द मुगल हिस्ट्री मे इस पत्र का उल्लेख किया था। आर्मे के अनुसार इस पत्र के लेखक जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह थे।[३१] उसका यह कथन स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योकि उक्त महाराजा तो जजिया लगाने की तिथि (२ अप्रैल, १६७६ ई०) के पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। कलकत्ता वाली प्रति मे लेखक का नाम शम्भाजी दिया है, जो माननीय नही, क्योकि जिस समय बादशाह औरंगजेब ने जजिया कर लागू किया, उस समय महाराष्ट्र में शिवाजी राजा

---

२८ ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५४६

२९ टॉड : एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३०२

३०. मॉडर्न रिव्यू, ई० स० १६०८, जनवरी, पृ० २१–२३
ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५५१

३१. टॉड : एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३०२
पाद टिप्पणी ३

था न कि शम्भाजी।[३२] इसके अतिरिक्त शम्भाजी इतना प्रतिभासम्पन्न व शक्तिशाली शासक नहीं था कि वह इस प्रकार का पत्र आलमगीर को लिख सके। इसकी कल्पना करना ही निराधार होगा।

ओझा जी का कथन है कि शिवाजी द्वारा औरंगजेब को पत्र लिखना सम्भव नहीं, क्योंकि आगरे से भागकर दक्षिण में पहुँचने पर वह मुग़लों का बराबर विरोधी बना रहा और ई० स० १६७० के बाद तो बादशाह के अधीनस्थ प्रदेशों पर उसने आक्रमण करना शुरू कर दिया था। जजिया कर लगाने के समय शिवाजी एक स्वतन्त्र शासक था, अतः उसके राज्य में इस कर का कुछ भी प्रभाव नहीं पडने वाला था। ग्राण्ट डफ के साक्ष्य के आधार पर[३३] ओझा जी का यह कहना है कि औरंगजेब ने बुरहानपुर क्षेत्र पर शिवाजी के मृत्योपरान्त ई० स० १६८४ में जजिया कर लगाया था इसलिए शिवाजी द्वारा इस प्रकार का पत्र औरंगजेब को लिखने का प्रश्न ही नहीं उठता था। शिवाजी जैसा स्वाभिमानी और स्वतन्त्रता प्रिय राजा अपने को औरंगजेब का शुभचिन्तक लिखे, सम्भव नहीं। महाराणा औरंगजेब के अधीन था और ई० स० १६७९ में मुगल-मेवाड संघर्ष होने तक राणा के बादशाह के साथ सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण व मधुर थे, अतः वह अपने को बादशाह का शुभचिन्तक बताये, ठीक ही प्रतीत होता है। उदयपुर और कलकत्ता वाली प्रतियों में रामसिंह को हिन्दुओं का अग्रणीय माना है और पत्र लेखक ने बादशाह को पहले उससे कर वसूल करने के लिए आग्रह किया है।[३४] ओझा जी इसे ठीक मानते हैं, क्योंकि उस समय वस्तुतः मुगल दरबार में रामसिंह ही सर्वश्रेष्ठ हिन्दू मनसबदार था। उनकी सम्भावना है कि लन्दन वाली प्रति में राजसिंह का नाम रामसिंह के स्थान पर गलती से उल्लेख कर दिया गया है और शिवाजी का नाम पत्र लेखक के रूप में बाद में जोड दिया गया है।

उपर्युक्त तर्क के आधार पर ओझा जी लिखते हैं—"इन सब बातों पर विचार करते हुए यही मानना पडता है कि वह पत्र महाराणा राजसिंह ने ही लिखा होगा और जब उसकी नकलें भिन्न भिन्न स्थानों में पहुँची होंगी तब

---

३२ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५५२

३३ ग्राट डफ हिस्ट्री ऑफ द मराठाज्, भाग १, पृ० २५२ (ई० स० १९२१ का आक्सफर्ड संस्करण)

३४ द्रष्टव्य टॉड—राजस्थान (डब्ल्यू० बी० रीज द्वारा अनुवादित पत्र) पृ० ३०३, जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, परिशिष्ट ७, पृ० २४०–२४८

उसमे किसी ने अपनी ओर से कुछ और बढ़ाकर शिवाजी का और किसी ने शम्भाजी का नाम दर्ज कर दिया होगा।[३५] इस प्रकार ओझा जी ने कर्नल टॉड और कविराज श्यामलदास के मत से सहमति प्रकट की है।[३६]

उक्त मत के विपरीत जदुनाथ सरकार ने वस्तु-विवरण और शिवाजी की आत्म-गाथा सम्बन्धी तथ्यो के आधार पर इस पत्र का लेखक शिवाजी को निर्धारित किया है।[३७] उनका कथन है कि आलमगीर को ऐसा साहसपूर्ण पत्र लिखने की क्षमता केवल शिवाजी मे ही हो सकती थी। डा० जी० एन० शर्मा सरकार के मत से सहमत हैं। उन्होने उदयपुर वाली प्रति को मूल पत्र का सक्षिप्त रूप माना है। अत इसमे शिवाजी सम्बन्धी तथ्यो का उल्लेख नही मिलता। शर्मा जी का तर्क है कि यदि राजसिंह ने ऐसा कोई पत्र लिखा होता तो उसके समकालीन स्थानीय लेखक—मान कवि, सदाशिव, रणछोड भट्ट आदि उक्त पत्र का निर्देशन अपनी कृतियों मे अवश्य करते। इसके अतिरिक्त पत्र की शैली व लिखावट के विचार से भी यह पत्र शिवाजी का होना चाहिए न कि राजसिंह का। लेखक का नाम, तिथि आदि यथा स्थान पर लिखने की पद्धति मेवाड के राजकीय पत्रो मे सामान्यत रही है। उक्त पत्र मे इस पद्धति का अनुसरण नही हुआ है, अत यह पत्र राजसिंह के द्वारा लिखा जाना सम्भव नही। एक जगह पत्र मे उल्लिखित है—"मैं बिना आज्ञा के दरबार से चला आया।" शर्माजी का कहना है कि यह शिवाजी का आगरे स चले आने का सकेत मात्र है। यह सर्व विदित है कि राणा राजसिंह मुगल दरबार मे कभी उपस्थित नही हुए थे। इसी प्रकार पत्र के अन्त मे एक स्थान पर लिखा हुआ है कि—"मेरे से कर लेने के पहले राजसिंह से कर लिया जाय।" इसका अर्थ यह है कि इस पत्र का लेखक राजसिंह नही हो सकता। अत शर्माजी ने पत्र के प्रसग व विषय के आधार पर शिवाजी को इस पत्र का लेखक सिद्ध करने का प्रयास किया है।[३८] शर्माजी का उक्त निष्कर्ष सामान्यतः विश्वासप्रद प्रतीत होता है, किन्तु उक्त पत्र सम्बन्धी अन्य तथ्यो पर विचार करने पर शिवाजी को पत्र का लेखक स्वीकार करने मे हमे

---

३५ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५५३–५५४

३६ (अ) टॉड : एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३०२–३०३
(ब) वीर विनोद, पृ० ४६०–४६३

३७ सरकार : औरगजेब, भाग ३, परिशिष्ट ६; शिवाजी, छठा सस्करण, अध्याय १३, पृ० ३२०–३२३

३८. जी० एन० शर्मा : मेवाड एण्ड द मुग़ल एम्परर्स, पृ० १६३–१६५

सशय है । हमारे मत मे इस सम्बन्ध में पुनः परिशीलन अपेक्षित है ।

महाराणा राजसिंह का जजिया विरोधी पत्र औरंगजेब को भेजना तो सदिग्ध है, किन्तु यह निर्विवाद है कि जजिया कर लगाये जाने से राणा अत्यधिक खिन्न था । वह बादशाह को शका की दृष्टि से देखने लगा था और उसकी गतिविधियो के प्रति पूर्णतया जागरूक था ।[३६]

औरंगजेब राजनैतिक चालबाजियो मे सिद्धहस्त था । उसने स्वर्गवासी महाराजा जसवन्तसिंह के नवजात पुत्रो को दिल्ली लाने के लिए सन्देश भेजा । बादशाह के आदेशानुसार राठौडो का दल बालक अजीत के साथ दिल्ली पहुँचा और उन्होंने बादशाह को आग्रह किया कि वह अजीतसिंह को मारवाड का राजा बना दे, किन्तु औरंगजेब ने इस पर ध्यान नही दिया । वस्तुत वह बालक अजीत को अपनी सरक्षकता मे रखना चाहता था ।[४०] राठौडो मे फूट डालने के हेतु औरंगजेब ने इन्द्रसिंह[४१] को जोधपुर का राजा बना दिया और उससे ३६ लाख रुपया लेना निश्चित किया गया ।[४२] राठौड सरदारो को यह स्वीकार नही था । दुर्गादास, सोनिंग, खीची मुकन्ददास आदि सरदारो ने अजीतसिंह को युक्तिपूर्वक दिल्ली से निकाल कर मारवाड पहुँचा दिया । इस साहसपूर्ण कार्य म रघुनाथ भाटी के नेतृत्व मे अनेक राठौड वीरो ने अपना जीवन न्यौछावर किया था । दिल्ली का कोतवाल फौलादखा जब अजीत को हस्तगत नही कर सका तो उसने एक ग्वाले के बालक को अजीतसिंह बतलाकर बादशाह के सुपुर्द किया, जिसने उसका नाम मोहम्मदीराज रखा और उसका पालन पोषण शाही हरम मे किया जाने लगा ।[४३] औरंगजेब ने दुर्गादास द्वारा पोषित अजीतसिंह को बनावटी व झूठा घोषित किया । किन्तु इसका स्पष्टीकरण तब हो गया जब कि राणा ने उसका विवाह अपने परिवार की पुत्री से

३६ जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६५

४० रेऊ मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० २५२

४१ इन्द्रसिंह महाराजा जसवन्तसिंह के बड़े भ्राता राव अमरसिंह का पौत्र और रायसिंह का पुत्र था ।

४२ (अ) राजरूपक, पृ० २६, पद्य २६
(ब) अजितोदय, सर्ग ६, पद्य १–७
(स) देवीप्रसाद औरंगजेबनामा, भाग २, पृ० ८३
(द) रेऊ : मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० २५३ पाद टिप्पणी १

४३ मआसिर ए-आलमगीरी, पृ० ११०
देवीप्रसाद औरंगजेबनामा, भाग २, पृ० ८५–८६

कर दिया ।[४४]

जैसे ही दुर्गादास अजीतसिंह को लेकर मारवाड में पहुँचा, राठौड सैनिक उसके नेतृत्व म एकत्रित होने लगे । उन्होने तुरन्त मुगल फौजदार के विरुद्ध सघर्ष आरम्भ कर दिया । मारवाड म मुगलो की स्थिति बिगडने लगी । औरगजेब द्वारा मनोनीत मारवाड का राजा इन्द्रसिंह स्थिति को सुधारने में असफल रहा । इसलिए सितम्बर माह के अन्त मे बादशाह औरगजेब स्वय अपने दलबल के साथ अजमेर पहुँचा और वह वहाँ ठहर कर मारवाड म राठौडो के विरुद्ध सैनिक अभियान का सचालन करने लगा ।[४५] अक्तूबर माह के अन्त तक मुगलो का मारवाड मे पुन पूर्णतया अधिकार स्थापित हो गया । मारवाड अनेक जिलो मे बाट दिया गया और प्रत्येक जिले पर एक मुस्लिम फौजदार की नियुक्ति कर दी गई ।

यद्यपि औरगजेब ने मारवाड को अपने अधीन कर लिया था किन्तु वह राठौडो को नतमस्तक नही करवा सका और न वह अजीत को ही ढूंढ सका । मुगल फौजो ने मन्दिरो को नष्ट कर, खेतो को हानि पहुँचा कर, सर्वत्र लूट-खसोट कर बर्बरता का प्रदशन किया था । "जैसे मेघ पृथ्वी पर जल वर्षा करते है उसी प्रकार औरगजेब न इस भूमि पर बर्बर सैनिक बरसा दिये ।" किन्तु राठौड सैनिक हतोत्साहित नही हुए । मारवाड का प्रत्येक घर दुगम दुर्ग बन गया और हर एक राठौड राजपूत दुर्धर्ष सैनिक हो गया । स्वाभिमानी व स्वतन्त्रता प्रिय राजपूतो के मन म मुगल विरोधी भावना बडी प्रबल हो उठी थी ।

राठौड नेता दुर्गादास केवल वीर योद्धा ही नहीं था वरन् सुलझा हुआ कुशल राजनीतिज्ञ भी था । वह मारवाड की तात्कालिक परिस्थिति से पूर्णतया परिचित था । बालक अजीत को मुगलो से सुरक्षित रखना तथा राठौडों की क्षीण शक्ति से शाही सेना से लोहा लेना सुलभ कार्य नही था । उसने सकटग्रस्त परिस्थिति के समाधान हेतु अपने सहयोगी सरदारो से मन्त्रणा की

४४ (अ) मुन्तखब-उल-लुबाब इलियट, भाग ७, पृ० २६८
(ब) रेऊ मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० २५४–५५ अजीतसिंह का विवाह महाराणा जयसिंह के भाई गजसिंह की कन्या से हुआ था ।

४५ (अ) मआसिर-ए-आलमगीरी, पृ० १११
(ब) देवीप्रसाद औरगजेबनामा, भाग २, पृ० ८७
(स) जोधपुर ख्यात, भाग २, पृ० ६६

और यह निश्चय किया कि उन्हें राणा राजसिंह का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। राठौड़ नेता दुर्गादास ने महाराणा राजसिंह को तुरन्त सहायता देने व बालक अजीतसिंह को संरक्षकता प्रदान करने के लिए एक पत्र भेजा।[४६]

पत्र के पहुँचने पर राणा एक अजीब धर्मसंकट की स्थिति में था। राजसिंह ने इस विषय पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया। उसने यह अनुभव किया कि मारवाड़ पर मुगलों का आधिपत्य भावी मेवाड़ विजय की भूमिका मात्र थी।[४७] दूरदर्शी राणा को यह समझने में समय नहीं लगा कि यदि सीसोदिया व राठौड़ राजपूतों ने सम्मिलित शक्ति से शाही सेना का मुकाबला नहीं किया तो एक-एक करके क्रमश दोनों राजपूत जातियाँ सदैव के लिए दबा दी जायेंगी और तब समस्त राजस्थान के असहाय स्थिति में मुगलों के अधीन चले जाने की सम्भावना थी। सम्राट ने मारवाड़ पर अधिकार कर लिया था। क्योंकि मारवाड़ की सीमा मेवाड़ राज्य से लगती थी इसलिए मेवाड़ के लिए संकट उपस्थित हो गया था और मेवाड़ का सुदृढ़ दुर्ग व राणा के अन्तिम आश्रय का क्षेत्र कुम्भलगढ़ भी असुरक्षित हो चुका था। इसके अतिरिक्त औरंगजेब का मन्दिर विध्वंस कार्यक्रम अरावली की पर्वत श्रेणी से रुकने वाला नहीं था। बादशाह औरंगजेब की तरफ से जजिया कर देने हेतु राणा राजसिंह के पास पहले ही फरमान भेजा जा चुका था। स्मरण रहे कि औरंगजेब और राजसिंह के सम्बन्धों में दीर्घकाल से शनैः शनैः तनाव बढ़ता जा रहा था। औरंगजेब की गतिविधियों से यह स्पष्ट था कि मारवाड़ के राठौड़ों से निवृत्त होने के पश्चात् वह मेवाड़ के सीसोदियों की शक्ति को भी कुचल देगा।[४८]

उपर्युक्त राजनैतिक व धार्मिक तथ्यों के साथ-साथ राणा के लिए कुछ अन्य प्रश्न भी विचारणीय थे। अजीतसिंह की माता राणा राजसिंह की भतीजी थी,[४९] अतः उसके शिशु पुत्र के पैतृक अधिकारों की रक्षा करना उसका

---

४६ जी० एन० शर्मा मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६८
राठौड़ गोपीनाथ और सदपाल के साथ राठौड़ दुर्गादास ने राणा राजसिंह के पास पत्र भेजा था।

४७ सरकार औरंगजेब (१६१८–१७०७ ई०), पृ० १६७

४८ (अ) सरकार औरंगजेब (१६१८–१७०७ ई०), पृ० १६७
(ब) जी० एन० शर्मा मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६८–१६९

४९ (अ) टॉड : एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३०२
(ब) द केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ४, पृ० २४८

वक्तव्य हो जाता था। इसके अतिरिक्त शरण मे आये हुये की मदद न करना क्षत्रिय धर्म तथा मेवाड की गौरव-गरिमा के विरुद्ध था।

अन्ततागत्वा यह सोचकर कि औरगजेब से युद्ध होना तो अवश्यभावी है, राणा ने नि सहाय अजीतसिंह के न्यायोचित अधिकारो की रक्षा करने का बीडा उठाया। वस्तुत राठौडो की मदद करने मे राणा के स्वय का हित निहित था। अत उक्त मानसिक द्वन्द्व के उपरान्त राणा ने राठौडों की मदद करने का वचन दिया। उसने अजीतसिंह को १२ गाँवो सहित केलवा की जागीर देकर उसे अपने सरक्षण म ले लिया[५०] और दुर्गादास आदि उपस्थित राठौड सरदारो को विश्वास दिलाया कि बादशाह औरगजेब को राठौडो और सीसोदियो की सम्मिलित सेना का मुकाबला करने मे लोहे के चने चबाने पडेंगे।[५१]

औरगजेब को जब यह सूचना मिली कि राणा राजसिंह ने बालक अजीतसिंह को अपने सरक्षण मे ले लिया है और सीसोदिया राठौड गुट तैयार हो गया है, तब तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ और राणा के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करने लगा। किन्तु मेवाड पर आक्रमण करने के पूर्व उसने राणा को एक के बाद एक तीन पत्र लिखे थे, जिनमे अजीतसिंह को उसे सुपुर्द करने पर जोर दिया था। इन पत्रो म राणा की पिछली सेवाओ के लिए प्रशसा की गई थी और साथ-साथ यदि राणा ने उसके आदेशानुसार कार्य नहीं किया तो मेवाड को बरबाद करने की धमकी भी दी थी। राणा पर इन पत्रों का कुछ भी असर नही हुआ। वह अजीतसिंह की सहायता करने के लिए वचनबद्ध था। भयभीत होकर नही, किन्तु शिष्टाचार के नाते उसने बादशाह को बडी विनम्रता के साथ उक्त पत्रो के उत्तर भेजे थे। उसे सीसोदियो और राठौडों की सम्मिलित शक्ति पर पूर्ण विश्वास था।[५२]

शाही धमकियो का जब राणा पर कुछ भी प्रभाव नही पडा तो फिर बादशाह ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति मेवाड को नष्ट करने मे जुटा दी। शाहजादे मुअज्जम को दक्षिण से अपनी सेना सहित उज्जैन आने के लिए आदेश दिया। अपने दूसरे शाहजादे आजम को शीघ्रातिशीघ्र बगाल से मेवाड विरोधी सैनिक

---

५० (अ) मान-राजविलास, विलास ६, पद्य २०५
(ब) टॉड : एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३०२
(स) चतुरसिंह कृत चतुरकुल चरित्र इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १००
५१ वीर विनोद, पृ० ४६३
५२ मान-राजविलास, विलास १०, पद्य २-२४

अभियान मे सम्मिलित होने के लिए हुक्म भेजा।[५३] तीसरा राजकुमार अकबर उसकी सेवा मे पहले से ही मारवाड म नियुक्त था। औरगजेब ने तहव्वरखा को माडल व अन्य परगनो पर अधिकार करने के लिए भेजा।[५४] नागोर के राव इन्द्रसिह को नीमच, रघुनाथसिह को सियाना और मुहकमसिह मेडतिया को पुर की थानेदारी प्रदान कर उन्हे सेना के साथ रवाना किया।[५५] सम्राट ने अहमदाबाद के सूबेदार मोहम्मद अमीनखा को राजपूत राज्यों के निकट पडाव डालन तथा आदेश मिलने पर उन पर आक्रमण करने के लिए तैयार रहने का सन्देश भेजा।[५६] सात हजार सेना के साथ हसनअलीखा को पहले राणा से लडने के लिए रवाना किया, तदुपरान्त बादशाह ने स्वय वि० स० १७३६ मागशीर्ष सुदि ६ (ई० स० १६७६ तारीख १ दिसम्बर) को अजमेर से उदयपुर की ओर प्रस्थान किया।[५७] उसके साथ तोपखाना भी था जिसकी अध्यक्षता यूरोपियन पदाधिकारी कर रहे थे।[५८] इस समय तक शाहजादा मुहम्मद आज़म भी बादशाह की सेवा मे उपस्थित हो गया था।[५९]

---

५३ (अ) मुन्तखब उल लुबाब, इलियट भाग ७, पृ० २९६
(ब) वीर विनोद, पृ० ४६३
५४ (अ) मुन्तखब-उल लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० २९६
(ब) वीर विनोद, पृ० ४६३
(स) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग ३, पृ० ५५८
५५ (अ) देवीप्रसाद औरगज़ेबनामा, भाग २, पृ० ८८–८९
(ब) वीर विनोद, पृ० ४६३
५६ (अ) मआसिर-ए आलमगीरी (फारसी मूल), भाग २, पृ० १९३, १९५ और १९८
(ब) मुतखब उल लुबाब (फारसी मूल), भाग २, पृ० २६२–२६३
५७ (अ) मआसिर ए-आलमगीरी, पृ० ११२
(ब) देवीप्रसाद औरगज़ेबनामा, भाग २, पृ० ८८–८९
(स) वीर विनाद, पृ० ४६४
५८ सरकार औरगज़ेबनामा, भाग ३, पृ० ३८४
टाड बर्नियर के आधार पर लिखता है कि मुगल सम्राट मनोरजन के लिए कश्मीर जाते थे तब उनके साथ ७० बडी तोपें, ६० घोडे की तोपें, ३०० ऊंटो की सेना आदि जाती थी। अत यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राणा के साथ युद्ध करने हेतु सम्राट कितनी तोपें लाया होगा। टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३०४
५९. देवीप्रसाद औरगज़ेबनामा, भाग २, पृ० ८९–९०

महाराणा राजसिंह भी मुगल आक्रमण के प्रति निष्क्रिय नहीं था। उसने इस सम्बन्ध में मन्त्रणा लेने हेतु एक विशेष दरबार का आयोजन किया, जिसमें उसके भाई, कुँवर, सरदार, सभासद, मन्त्री व पुरोहित उपस्थित थे। राठौड नेता दुर्गादास और सानिंग भी इस दरबार में सम्मिलित हुए थे।[६०] उपस्थित सदस्यों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार मुगल आक्रमण का मुकाबला करने के लिए सुझाव प्रस्तुत किये थे। किसी ने कहा कि अजमेर के निकट ही शाही फौज से युद्ध किया जाना चाहिए, तो किसी का मत था कि चित्तौडगढ में उपस्थित होकर निर्णायक युद्ध लड़ा जाय। उक्त विचारों के सुनने के पश्चात् पुरोहित गरीबदास ने निवेदन किया कि औरंगजेब की सेना विशाल है और इसके साथ तोपखाना भी है, इसलिए खुले मैदान में मुगलों से लोहा लेना नीतिसंगत नहीं होगा। हमें क्षत विक्षत की नीति का अनुसरण कर चित्तौड व उदयपुर आदि खाली कर पहाड़ों में पलायन कर जाना चाहिए और छापामार युद्ध द्वारा शत्रुओं को हानि पहुँचाना हमारा ध्येय होना चाहिए। घाटियों में मुगल सेना को घेर कर उसे भूखों मारें और शाही मुल्क को लूटा जाये। पुरोहित ने याद दिलाया कि हल्दीघाटी के युद्ध के पश्चात् राणा प्रताप और उसके पुत्र अमरसिंह (प्रथम) ने मुगलों से युद्ध करने में इसी नीति का अनुसरण किया था। वे शत्रुओं को तंग करने में सफल हुए थे।[६१]

महाराणा राजसिंह को गरीबदास की राय पसन्द आई। चित्तौड व उदयपुर शहर को प्रजा सहित खाली कर दिया गया।[६२] राणा ने अपना पहला मुकाम देबीमाता के पहाड़ों में किया।[६३] पानडवा मेरपुर, जूडा और जवास के भोमिये सरदार, पालों के मुखियों (पल्लीपति) तथा धनुषबाण

---

६०. दरबार में उपस्थित सदस्यों के नाम, मान-राजविलास, विलास १०, पद्य ५४ से ६७ तक में दिये गये हैं।

६१ (अ) मान-राजविलास, विलास १०, पद्य ७१–७८
(ब) वीर विनोद, पृ० ४६४–४६५

६२ (अ) मुन्तखब-उल-लुबाब (फारसी मूल), पृ० २६३
(ब) सीसोद वंशावली, पत्रांक ३२ (अ)

६३. (अ) मान-राजविलास, विलास १०, पद्य ८७
(ब) वीर विनोद, पृ० ४६५

लिए हुए पचास हजार भीलों सहित आ मिले।[६४] महाराणा ने उन्हे आदेश दिया कि वे हजारो की सख्या मे विभिन्न दलो म विभाजित हो जाएँ, घाटो और नाको का प्रबन्ध करें तथा शत्रुओ की रसद व खजाने को लूट कर उन्हे तग करें।[६५] राणा का दूसरा विश्राम नेणवारा (मोघट) ग्राम म हुआ[६६] इसी स्थान पर मेवाड व मारवाड के राजपूत योद्धाओ के परिवारो को सुरक्षित रखा गया। इनकी सुरक्षा का भार राणा ने स्वय लिया था। राजपूत सेना मे बीस हजार सवार और पचीस हजार पैदल थे। मेवाडी सेना मे १,००० हाथी भी थे।[६७]

मेवाड के उत्तरी और मध्यवर्ती क्षेत्र जो निर्जन व उजाड थे उनको शत्रुओ की सेना के लिए खाली रखा गया।[६८] बदनोर के ठाकुर सावलदास राठौड, देसूरी के विक्रमादित्य सोलकी और घाणेराव के मेडतिया ठाकुर गोपीनाथ को देसूरी, घाणेराव और बदनोर के पहाडी प्रदेश की सुरक्षा का कार्य सुपुर्द किया गया। मन्त्री दयालदास को मालवा की तरफ से आक्रमण को रोकने के लिए नियुक्त किया। कुवर भीमसिंह को गुजरात की तरफ की सीमा को सुरक्षित रखना था। स्वय राणा ने देबारी नाल और नाई नाल की व्यवस्था का भार लिया। बडे कुँवर जयसिंह का कार्य सभी सेनानायको मे तालमेल रखना, उन्ह समय-समय पर राणा के आदेश भिजवाना, और आवश्यकतानुसार उनके लिए कुमुक, रसद आदि की व्यवस्था करना था। उसके पास १३,००० सवार नियत थे।[६९]

---

६४ वही, पद्य ८६-९० भीलो के घर अधिकाशत पहाडो पर या उनके नीचे एक दूसरे से पृथक् होते हैं। ऐसे अनेक घरो के समूह को पाल (पल्ली) कहते हैं और प्रत्यक पाल का मुखिया पल्लीपति (पालवी) कहलाता है। ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग ३, पृ० ५५८ पाद टिप्पणी २

६५ मान राजविलास, विलास १०, पद्य ९४-९५

६६ वही, पद्य ९९, वीर विनोद, पृ० ४६५

६७ (अ) वही, पद्य ८१

(ब) जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १७०-मान कवि द्वारा दी गई सैनिक सख्या मे सम्भवत राठौडो की सैनिक सख्या भी सम्मिलित है, क्योकि वशावली राणाजी री में सेना की सख्या २१,००० घुडसवार, १५,००० पैदल और १०१ हाथी दी है।

६८ मान राजविलास, विलास १०, पद्य ५४-८०

६९ वीर विनोद, पृ० ४६५

मुगल फौजें मेवाड प्रदेश मे प्रविष्ट हो चुकी थीं। मेवाड राज्य का उत्तरी व मध्यवर्ती भाग मुगलो के अधीन हो गया। बादशाह औरंगजेब स्वय एक विशाल सेना सहित अजमेर से माडल होता हुआ देबारी पहुँचा और वहां उसने कुछ दिनो तक अपना शिविर रखा।[७०] उसे यह सूचना प्राप्त हो चुकी थी कि राणा उदयपुर को खाली कर पहाडों मे पलायन कर गया है। बादशाह ने हसनअलीखाँ को सेना सहित राजनगर की ओर से राणा का पीछा करने हेतु पहाडी क्षेत्रो मे जाने का आदेश दिया।[७१]

देबारी के घाटे की रक्षा के लिए राणा ने एक सैनिक टुकडी नियत कर रखी थी। ४ जनवरी १६८० ई० को शाही सेना ने देबारी पर आक्रमण किया जिसके फलस्वरूप राठौड गोरासिंह (बल्लूदासोत) आदि अनेक राजपूत मारे गये और रावत मानसिंह (सारंगदेवोत) आदि घायल हुवे। देबारी के घाटे पर मुगलो का आधिपत्य स्थापित हो गया।[७२] तत्पश्चात् शाहजादा मुहम्मद आजम तथा खानजहां को रुहुल्लाखां और इक्कताजखां के साथ उदयपुर भेजा गया। उन्हे उदयपुर पूर्णतया वीरान व खाली मिला। मुगल सेनापति राणा के महलों के सामने एक विशाल व भव्य जगदीशजी के मन्दिर के निकट पहुँचे। इस मन्दिर को विध्वस करने की आज्ञा दी गई। मन्दिर मे

---

७० राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक १८
रणछोड ने यहां बादशाह का २१ दिन ठहरना लिखा है।

७१ (अ) देवीप्रसाद . औरंगजेबनामा भाग २, पृ० ९१
(ब) वीर विनोद, पृ० ४६६
(स) जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परस, पृ० १७१

७२ (अ) राठौड बल्लू के पुत्र गोरासिंह की देबारी के पासवाली छत्री के मध्य की स्मारक शिला पर नीचे लिखा लेख खुदा है—
सवत १७३६ वर्षे पोस (पौष) सुदी (दि)
१४ पतिसाह ओरंगसाह देहबारी आया बठे राठोड
गोरासग (गोरासिंह) बलूदासोत काम आया जी (मूल लेख)—
ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५५९
पाद टिप्पणी ४
(ब) मआसिर-ए आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० १८६
(स) राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक १५–१८
(द) अजित विलास, परम्परा भाग २७, पृ ३५

बारहट नरू अपने चुने हुए बीस 'माचातोड'[७३] योद्धाओ के साथ मुगलो का सामना करने के लिए बैठा था। मन्दिर के उत्तर दिशा की तरफ की खिडकी से एक के बाद दूसरा वीर योद्धा मुगल सैनिको से लोहा लेने के लिए बाहर आया और शत्रुओ का संहार करता हुआ व वीरगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्त मे उनका नेता नरू[७४] भी बडी बहादुरी से लडता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ। अब मुसलमानो ने मूर्तियो को तोडा और मन्दिर को ध्वस्त कर दिया, जिससे हिन्दू कला का भी नाश हुआ।[७५] बादशाह औरगजेब उदयसागर तालाब को देखने के लिए गया। वहाँ उसने महाराणा उदयसिंह के द्वारा निर्मित तीन मन्दिरो को गिरवा दिया।[७६]

बादशाह औरगजेब को देबारी और उदयपुर पर अधिकार करने मे तनिक भी कठिनाई का अनुभव नहीं करना पडा था, क्योंकि राणा अपने राजपूत सैनिको सहित पहाडो मे चला गया था। उदयपुर से पश्चिम मे कुम्भलगढ तक और राजसमुद्र से दक्षिण मे सलूबर तक एक प्रकार से वृत्ताकार अजेय दुर्ग के समान क्षेत्र मे राणा सुरक्षित था। आक्रमणकारियो के लिए इस क्षेत्र मे युद्ध करना कष्टसाध्य था। राजपूतो ने छापामार युद्ध प्रणाली से शाही सेनापतियो को तग करना शुरू कर दिया था। शाहजादा अकबर तहव्वरखाँ के साथ उदयपुर से एकलिंगजी की दिशा मे अग्रसर हुआ। मार्ग मे आम्बेरी गाँव और चीरवा के घाटे के पास झाला प्रतापसिंह (कारगेट का) और भदेसर के बल्लो ने उस पर आक्रमण किया। शाही फौजो को क्षति उठानी

---

७३. लडकर मरना निश्चय कर किसी स्थान पर खाट डाल कर ठहरे हुए योद्धाओं को 'माचातोड' कहते थे।
ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २, पृ० ५५६, पाद टिप्पणी ६

७४. स्मारक के रूप मे एक चबूतरा मन्दिर के पास बड के पेड के नीचे अब तक विद्यमान है। (वीर विनोद पृ० ४६५)

७५. (अ) मआसिर ए-आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० १८६
(ब) मुन्तखब उल-लुबाब (फारसी मूल) भाग २, पृ० २६३
(स) देवीप्रसाद : औरगजेबनामा भाग २, पृ० ६१
(द) सरकार : औरगजेब भाग ३, पृ० ३८५

७६. मआसिर-ए-आलमगीरी इलियट, भाग ७, पृ० १८८
सरकार : औरगजेब भाग ३, पृ० ३८५
वीर विनोद, पृ० ४६७
देवीप्रसाद : औरगजेबनामा भाग २, पृ० ६३

पडी। उनके हाथी व घोडे राजपूतो के हाथ लगे, जो राणा को प्रेषित कर दिये गये।[७७]

हसनअलीखाँ मुगल सेना के साथ राणा का पीछा करने की दृष्टि से उदयपुर से पश्चिमोत्तर के पहाडी प्रदेश मे प्रविष्ट हुआ। वह ऊदरी, पेई, कोटडा और गोराणा की नाल मे होता हुआ झाडौल पहुँचा। महाराणा ने रावत रत्नसिंह (सलूम्बर), रावत महासिंह चूडावत (बेगू), राव केसरीसिंह चौहान (पारसोली) तथा डेडिया ठाकुर नवलसिंह के नेतृत्व मे एक सैनिक टुकडी को शाही फौजदार पर आक्रमण करने के लिए भेजा।[७८] हसनअली की सेना को इससे क्षति पहुँची। शाही फौजें पहाडी क्षेत्र मे भटक गई। कई दिनों तक उक्त सेना के बादशाह को समाचार नही प्राप्त हुए। औरगजेब इस सम्बन्ध मे चिन्तित था। अन्ततोगत्वा तुराकी मीर शिहाबुद्दीन ने साहस कर पहाडी क्षेत्र मे जाकर हसनअलीखाँ का पता लगाया और बादशाह को सन्देश पहुँचाया।[७९] इस पर उदयपुर मे अतिरिक्त सैनिक व रसद हसनअलीखाँ की सहायतार्थ भेजे गये। सम्भवत इसके बाद एक स्थान पर शाही फौज और राणा की फौज मे मुठभेड हुई, जिसके फलस्वरूप राणा का सामान शाही फौज के हाथ लगा। हसनअलीखाँ उस सामान को २० ऊँटो पर लाद कर उदयपुर लाया और बादशाह के समक्ष उपस्थित हुआ। उसने उदयपुर के आसपास के १७२ मन्दिरो को ध्वस्त किया था।[८०]

मुगलों को मेवाड व मारवाड दोनो क्षेत्रो मे युद्ध करना पड रहा था। मारवाड मे भी राठौड इस समय अवसर देख कर मुगल थानों पर धावा मारते थे। अत औरगजेब को मारवाड की स्थिति पर भी ध्यान रखना नितान्त आवश्यक था। मेवाड मे उसने पहाडी प्रदेश के अतिरिक्त सभी क्षेत्र पर मुगलो का आधिपत्य स्थापित कर लिया था। उसने पुर, माडल, बेराट

---

७७ राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक १६–२२

७८ (अ) मान-राजविलास, विलास १३

(ब) वीर विनोद, पृ० ४७१

७९ (अ) देवीप्रसाद . औरगजेबनामा, भाग २, पृ० ६२

(ब) सरकार औरगजेब, भाग ३, पृ० ३८५

८० इलियट न मआसिर-ए-आलमगीरी के अनुवाद मे भाग ७, पृ० १८८ पर १२२ मन्दिरों का गिराया जाना लिखा है। मुंशी देवीप्रसाद ने औरगजेबनामा, भाग २, पृ० ६४ पर १७२ और सरकार ने अपनी पुस्तक औरगजेब, भाग ३ मे गिराये जाने वाले मन्दिरो की सख्या १७३ दी है।

(बदनोर के पास) भैंसरोड, दशपुर (मन्दसोर), नीमच, जीरन, ऊँटाला, कपासन, राजनगर और उदयपुर पर मुगल थाने नियत कर दिये थे।[८१] २२ फरवरी १६८० को औरंगज़ेब देबारी से प्रस्थान कर चित्तौड पहुँचा। वहाँ उसने ६३ मन्दिरो को नष्ट करने का आदेश दिया।[८२] बादशाह ने मेवाड के लिए चित्तौड को प्रधान सैनिक केन्द्र बनाया। यहाँ शाहज़ादे अकबर को एक विशाल मुगल सेना के साथ नियुक्त किया। उसकी सहायता के लिए हसनअलीखाँ, रज़ीउद्दीन, शुजाअतखाँ आदि सेनानायको को भी नियत किया। उक्त प्रबन्ध करने के पश्चात् बादशाह २२ मार्च १६८० को अजमेर पहुँच गया।[८३]

औरंगज़ेब का अजमेर लौटना राजपूतो के प्रत्याक्रमणों का सकेत मात्र था। महाराणा पहाडों से निकल कर नाई व कोटडे गाँव मे पहुँचा और उसने अपने सरदारों को मेवाड मे स्थापित मुगल थानो पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया।[८४] मवाडी सेना ने मुगल फौजो को भाँति भाँति से तग करना चालू कर दिया था। उनकी रसद रोक दी जाती थी, उनके बिछुडे हुए सैनिको को मौत के घाट उतार दिया जाता था। राजपूत सैनिकों ने मुगल थानों पर निरन्तर आक्रमण कर मेवाड़ प्रदेश मे मुगलो के लिए ठहरना दुष्कर कर दिया था।

उदयपुर के थाने पर कोठारिया के रुक्मांगद के पुत्र उदयभान और अमरसिंह चौहान ने केवल २५ सवारो के साथ आक्रमण कर अनेक मुगल सैनिको को मौत के घाट उतार दिया। इस वीरोचित कार्य से प्रसन्न होकर राणा ने उदयभान को १२ गाँव जागीर मे देकर सम्मानित किया।[८५] इसी प्रकार मुहकमसिंह शक्तावत (भींडर) व कतिपय चूडावत सरदारों ने राजनगर के थाने पर आक्रमण किया और वहाँ की मुगल सैनिक टुकडी को अत्यधिक हानि पहुँचाई।[८६]

मुग़लों ने मेवाड के देवालयों को ध्वस्त किया था, जिसके प्रतिशोध

---

८१. मान राजविलास, विलास १०, पद्य ११६
८२ मग्रासिर-ए-आलमगीरी, इलियट, भाग ७, पृ० १८८
८३. दवीप्रसाद . औरगज़ेबनामा, भाग २, पृ० ९६
८४. (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक २५
(ब) वीर विनोद, पृ० ४७१
८५. मान राजविलास, विलास १२
८६. राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक १२–१४

हेतु राणा ने कुंवर भीमसिंह को चार हजार सैनिको के साथ गुजरात की तरफ शाही क्षेत्र मे लूट-खसोट करने का आदेश दिया। उसने ईडर नगर को विध्वस कर बडनगर के जिले को लूटा और वहाँ से ४०,००० रुपये दण्ड के रूप मे एकत्रित किए। तदुपरान्त वह अहमदाबाद पहुँचा। वहाँ उसने दो लाख रुपयों का माल लूटा। देव मन्दिरो को नष्ट करने के प्रतिकार स्वरूप उसने यहाँ एक बडी और तीन सौ छोटी मस्जिदो को तुडवा दिया। इसके पश्चात् वह पुन मेवाडी सीमा के पहाडों मे चला आया।[८७]

इसी प्रकार मन्त्री दयालदास को ससैन्य मालवा प्रदेश मे भेजा। उसने वहाँ जाकर देश को लूटा, मस्जिदें तुडवाईं तथा लूट का सामान लेकर वह मेवाड मे पुनः चला आया।[८८]

मेवाड मे स्थित मुगल थानों पर निरन्तर राजपूतो के प्रत्याक्रमण हो

---

८७ राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक २७-२६ · उक्त घटना मे कुछ अतिशयोक्ति का सपुट हो सकता है, किन्तु इसे असत्य नहीं ठहराया जा सकता। फारसी इतिहासकारो के विवरण भी कई स्थानो पर खुशामद से भरे रहते हैं। वे तथ्यो को ऐसा तोड-मोड कर रखते हैं, जिससे घटना का स्वरूप ही बदल जाता है। हम इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :—

मिराते अहमदी, भाग १, पृ० ४६२ पर उल्लिखित है कि हजरत बादशाह थोडे दिना के लिए चित्तौड में ठहरे थ। उस समय भीमसिह राणा का छोटा बेटा बादशाही फौज से भयभीत होकर एक सैनिक टुकडी क साथ तग पहाडो स निकल कर गुजरात के इलाके को भागा और वहाँ जाकर कमअक्ली से बडनगर आदि कस्बे और गाँवो को लूटने के बाद फिर पहाडो मे चला आया।

यहाँ कुछ प्रश्न विचारणीय है —प्रथम तो यदि भीमसिंह डरा होता तो वह सुरक्षित पहाडी क्षेत्र को छोड कर शाही प्रदेश गुजरात को क्यो जाता? द्वितीय मे जब वह वहाँ डर कर गया था तो वहाँ कस्बो और गाँवो को लूटने क्यो लगा? तृतीय मे जिन पहाडो को असुरक्षित मान कर वह भागा, उन्ही पहाडो मे पुन. लौट कर क्यो आया?

उक्त विवरण से यह निश्चय है कि राजप्रशस्ति मे उल्लिखित भीमसिंह द्वारा गुजरात अभियान की घटना मे पर्याप्त सत्यता है। वीर विनोद, पृ० ४६६

८८. मान-राजविलास, विलास १७

रहे थे। सांवलदास (बदनोर का) ने रुहिल्लाखां के नेतृत्व में शाही फौज पर आक्रमण कर उसे क्षति पहुँचाई।[८८] शक्तावत केसरीसिंह (बानसी) और उसके पुत्र गंगादास ने ५०० सवारों के साथ चित्तौड़ के पास शाही सेना पर आक्रमण किया और उससे १८ हाथी, २ घोड़े और कई ऊँट छीन कर महाराणा के नज़र किये।[९०] कुंवर गजसिंह ने बेगू के थाने पर आक्रमण किया।[९१] घाणेराव के ठाकुर गोपीनाथ और देसूरी के ठाकुर विक्रमादित्य सोलंकी ने बड़ी बहादुरी के साथ इस्लामखाँ रूमी को, जो १२ हजार फौज के साथ देसूरी के घाटे की ओर बढ़ रहा था, रोका। उसे घाटे में प्रविष्ट नहीं होने दिया। रूमी को पीछे हटने के लिए विवश कर दिया।[९२]

चित्तौड़ में स्थित शाहजादे अकबर की सेना के लिए बनजारे लोग मालवे से मन्दसोर और नीमच के मार्ग से होकर १०,००० बैल अन्न के ला रहे थे।, उन्हें राजपूतों ने लूट लिया। मुगल सेनापति राजपूतों से इतने भयभीत हो गये थे कि वे उनसे युद्ध करने के लिए अपने सुरक्षित स्थान से बाहर ही नहीं निकलते थे, जिसकी शिकायत शाहजादे अकबर ने बादशाह को भी की थी।[९३] मेवाड़ में मुगल सेना भूखों मरने लगी। स्वयं बादशाह को अजमेर से भारी सशस्त्र रक्षक दल के साथ रसद भेजने का प्रबन्ध करना पड़ रहा था। बादशाह की मेवाड़ को उजाड़ देने की आज्ञा का पालन न हो सका।[९४]

शाहजादे अकबर के पास कुल सेना १२,००० थी,[९५] जो अरावली के पूर्व से लेकर अजमेर के दक्षिण तक के विशाल क्षेत्र में स्थित थानों को सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त नहीं थी। राजपूत अपने प्रदेश में लड़ रहे थे और भीलों व मीणों का उन्हें पूर्ण सहयोग था। वे क्षेत्र के रास्तों व वहाँ की

---

८६. मान-राजविलास, विलास १६

९०. (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ३६–४०
(ब) मान-राजविलास, विलास १४

९१. राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ४४

९२. (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ४१
(ब) मान-राजविलास, विलास ११

९३. अदबे आलमगीरी में अकबर के संगृहीत पत्र-पत्रांक ६६६;
सरकार : औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० ४००–४०१

९४. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५६३

९५. मआसिर-ए-आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० १६०

भौगोलिक स्थिति से पूर्णतया परिचित थे। मुगल फौजों को यह सुविधा नहीं थी। राजपूतों के निरन्तर आक्रमण के फलस्वरूप मुगल सैनिकों की स्थिति दयनीय थी। शाहजादे अकबर को स्वीकार करना पड़ा था कि "राजपूतों के भय के मारे हमारी सेना स्तब्ध और निश्चेष्ट हो गई है।"[१६]

अन्ततोगत्वा कुंवर जयसिंह के सेनापतित्व में चन्द्रसेन झाला, सबलसिंह, रत्नसिंह, गोपीनाथ, वैरीसाल, केसरीसिंह, रुक्मांगद आदि अन्य अनेक सरदार ससैन्य चित्तौड़ जिले में जाकर शाहज़ादे अकबर की फौज पर अचानक रात्रि के समय टूट पड़े। इस आक्रमण ने तो शाही सेना की कमर ही तोड़ दी। एक हज़ार मुगल सैनिक और तीन हाथी मारे गये। राजपूतों ने शाही हाथी, घोड़े, निशान और नक्कारे छीन लिए और मुगल सेना के तम्बुओं को उखाड़ फेंका।[१७] इस आक्रमण से शाहज़ादे अकबर की बड़ी बदनामी हुई। बादशाह ने, नाराज होकर उसे चित्तौड़ से हटा कर मारवाड़ में सोजत की तरफ भेज दिया और उसके स्थान पर शाहज़ादे आज़म को नियुक्त किया।[१८]

यद्यपि मुगल फौजों ने मन्दिरों को नष्ट किया, मकानों और खेतों को हानि पहुँचाई, निर्मम निस्सहाय व्यक्तियों की नृशंस हत्यायें की, स्त्रियों और बच्चों को बंदी बनाया और मेवाड़ के समतल भाग पर सर्वत्र मुगलों के थाने स्थापित किये, फिर भी राजपूत योद्धाओं के मनोबल में क्षीणता नहीं आई। महाराणा राजसिंह शाही शक्ति के समक्ष नतमस्तक नहीं हुआ। इसके

---

१६ (अ) अदबे-आलमगीरी में अकबर के संगृहीत पत्र पत्रांक ६६६ और ६६७

(ब) सरकार औरंगज़ेब (१६१८–१७०७ ई०), पृ० १६८–६६

१७ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ३०–३८

(ब) मान-राजविलास, विलास १८
इस घटना का फारसी तवारीखों में उल्लेख नहीं है किन्तु शाहज़ादे अकबर का चित्तौड़ से स्थानान्तरण करना इस बात का प्रमाण है कि अकबर मेवाड़ में बादशाह औरंगज़ेब के आदेशानुसार लक्ष्य की पूर्ति करने में असफल रहा था।

१८. (अ) अदबे-आलमगीरी में अकबर के संगृहीत पत्र पत्रांक सं० ६३६ १७ जून १६८० को यह पत्र अकबर को प्राप्त हुआ था।

(ब) मआसिर-ए आलमगीरी, पृ० १९४

(स) अजितोदय, सर्ग १०, श्लोक २६–२७

(द) देवीप्रसाद औरंगज़ेबनामा, भाग १, पृ० ९७

विपरीत सीसोदियो और राठौडो के छापामार युद्धो की मार से त्रस्त मुगल सेना निष्क्रिय हो चुकी थी। अतः औरंगजेब का मेवाड विजय हेतु सैनिक अभियान महाराणा राजसिंह की सक्रियता और रणकुशलता के कारण निष्फल ही सिद्ध हुआ।

अब औरंगजेब ने राणा के अभेद्य सुरक्षित पहाडी स्थल पर अधिकार करने की योजना बनाई। इस पहाडी क्षेत्र मे पहुँचने के लिए तीन रास्ते हैं। बादशाह ने इन तीनो रास्तों से मुगल फौजो को भेजने का निर्णय लिया। देवारी के दर्रे से उदयपुर की ओर से बढने के लिए शाहजादे आजम को नियुक्त किया। उत्तर मे राजसमुद्र की राह से शाहजादे मुअज्जम को पहाडी क्षेत्र मे आगे बढने के लिए आदेश दिया गया और पश्चिम मे देसूरी की घाटी के मार्ग मे प्रविष्ट होकर कुम्भलगढ तक पहुँचने के हेतु शाहजादे अकबर को आज्ञा दी गई।[९९]

औरंगजेब की मेवाड विजय के लिए यह योजना भी असफल ही रही, क्योंकि रावत रत्नसिंह, उदयभान, महासिंह, केसरीसिंह और रत्नसिंह के सबल प्रतिरोध के फलस्वरूप प्रथम दो शाहजादे अपने मन्तव्य की पूर्ति नहीं कर सके।[१००] इसी प्रकार सीसोदियो और राठौडो के प्रतिघात के कारण शाहजादा अकबर भी मारवाड मे अधिक प्रगति नहीं कर सका। अकबर ने अपने सेनापति तहव्वरखाँ को नाडोल हस्तगत कर कुम्भलगढ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी थी। नाडोल उस समय राजपूतों का मुख्य शिविर था। प्राणों के मोह को त्याग कर रणांगण मे जूझने वाले राजपूत वीरों का एकाएक मुकाबला करने की उसके सैनिकों की हिम्मत न हुई। इसलिए कई महीने तो उसने तयारी मे ही लगा दिये और फिर सैनिकों ने आगे बढने से इन्कार कर दिया तब उसे एक महीने तक रुकने मे रुकना पडा। तदुपरान्त वह बडी कठिनाई मे नाडोल पहुँचा।[१०१] अकबर के अत्यधिक अनुरोध करने पर २७ सितम्बर १६८० ई० को तहव्वरखाँ देसूरी की नाल के पास पहुँचा। वहाँ राठौड़ो और राणा के पुत्र भीम के नेतृत्व मे सीसोदियों की सम्मिलित सेना

---

९९ (अ) जी० एन० शर्मा : मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १७४
(ब) ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५६४

१०० सरकार : औरंगजेब (१६१८–१७०७ ई०), पृ० १६१

१०१ रेऊ . मारवाड का इतिहास, भाग १ पृ० २८०

भौगोलिक स्थिति से पूर्णतया परिचित थे। मुगल फौजो को यह सुविधा नहीं थी। राजपूतों के निरन्तर आक्रमण के फलस्वरूप मुगल सैनिको की स्थिति दयनीय थी। शाहजादे अकबर को स्वीकार करना पडा था कि "राजपूतों के भय के मारे हमारी सेना स्तब्ध और निश्चेष्ट हो गई है।"[६६]

अन्ततोगत्वा कुवर जयसिंह के सेनापतित्व मे चन्द्रसेन झाला, सबलसिंह, रत्नसिंह, गोपीनाथ, वैरीसाल, केसरीसिंह, रुक्मागद आदि अन्य अनेक सरदार ससैन्य चित्तौड जिले मे जाकर शाहजादे अकबर की फौज पर अचानक रात्रि के समय टूट पडे। इस आक्रमण ने तो शाही सेना की कमर ही तोड दी। एक हजार मुगल सैनिक और तीन हाथी मारे गये। राजपूतो ने शाही हाथी, घोडे, निशान और नक्कारे छीन लिए और मुगल सेना के तम्बुओ को उखाड़ फेंका।[६७] इस आक्रमण से शाहजादे अकबर की बडी बदनामी हुई। बादशाह ने, नाराज होकर उसे चित्तौड से हटा कर मारवाड़ मे सोजत की तरफ भेज दिया और उसके स्थान पर शाहजादे आजम को नियुक्त किया।[६८]

यद्यपि मुगल फौजो ने मन्दिरो को नष्ट किया, मकानो और खेतो को हानि पहुँचाई, निर्मम निस्सहाय व्यक्तियो की नृशस हत्यायें की, स्त्रियो और बच्चों को वन्दी बनाया और मेवाड के समतल भाग पर सर्वत्र मुगलो के थाने स्थापित किये, फिर भी राजपूत योद्धाओ के मनोबल मे क्षीणता नही आई। महाराणा राजसिंह शाही शक्ति के समक्ष नतमस्तक नही हुआ। इसके

---

६६. (अ) अदवे-आलमगीरी मे अकबर के सगृहीत पत्र-पत्राक ६६६ और ६६७
(ब) सरकार : औरगजेब (१६१८–१७०७ ई०), पृ० १६८–६६
६७. (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ३०–३८
(ब) मान-राजविलास, विलास १८
इस घटना का फारसी तवारीखो में उल्लेख नहीं है किन्तु शाहजादे अकबर का चित्तौड से स्थानान्तरण करना इस बात का प्रमाण है कि अकबर मेवाड मे बादशाह औरगजेब के आदेशानुसार लक्ष्य की पूर्ति करने में असफल रहा था।
६८. (अ) अदवे-आलमगीरी मे अकबर के सगृहीत पत्र-पत्राक स० ६३६ १७ जून १६८० को यह पत्र अकबर को प्राप्त हुआ था।
(ब) मआसिर-ए-आलमगीरी, पृ० ११४
(स) अजितोदय, सर्ग १०, श्लोक २६–२७
(द) देवीप्रसाद : औरगजेबनामा, भाग १, पृ० ६७

विपरीत सीसोदियों और राठौड़ों के छापामार युद्धों की मार से त्रस्त मुगल सेना निष्क्रिय हो चुकी थी। अतः औरंगजेब का मेवाड़ विजय हेतु सैनिक अभियान महाराणा राजसिंह की सक्रियता और रणकुशलता के कारण निष्फल ही सिद्ध हुआ।

अब औरंगजेब ने राणा के अभेद्य सुरक्षित पहाड़ी स्थल पर अधिकार करने की योजना बनाई। इस पहाड़ी क्षेत्र में पहुँचने के लिए तीन रास्ते हैं। बादशाह ने इन तीनों रास्तों से मुगल फौजों को भेजने का निर्णय लिया। देबारी के दर्रे से उदयपुर की ओर से बढ़ने के लिए शाहजादे आजम को नियुक्त किया। उत्तर में राजसमुद्र की राह से शाहजादे मुअज्जम को पहाड़ी क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए आदेश दिया गया और पश्चिम में देसूरी की घाटी के मार्ग से प्रविष्ट होकर कुम्भलगढ़ तक पहुँचने के हेतु शाहजादे अकबर को आज्ञा दी गई।[99]

औरंगजेब की मेवाड़ विजय के लिए यह योजना भी असफल ही रही, क्योंकि रावल रुक्मागद, उदयभान, महासिंह, केसरीसिंह और रत्नसिंह के सबल प्रतिरोध के फलस्वरूप प्रथम दो शाहजादे अपने मन्तव्य की पूर्ति नहीं कर सके।[100] इसी प्रकार सीसोदियों और राठौड़ों के प्रतिघात के कारण शाहजादा अकबर भी मारवाड़ में अधिक प्रगति नहीं कर सका। अकबर ने अपने सेनापति तहव्वरखाँ को नाडोल हस्तगत कर कुम्भलगढ़ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी थी। नाडोल उस समय राजपूतों का मुख्य शिविर था। प्राणों के मोह को त्याग कर रणांगण में जूझने वाले राजपूत वीरों का एकाएक मुकाबला करने की उसके सैनिकों की हिम्मत न हुई। इसलिए कई महीने तो उसने तैयारी में ही लगा दिये और फिर सैनिकों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया तब उसे एक महीने तक खरवे में रुकना पड़ा। तदुपरान्त वह बड़ी कठिनाई से नाडोल पहुँचा।[101] अकबर के अत्यधिक अनुरोध करने पर २७ सितम्बर १६८० ई० को तहव्वरखाँ देसूरी की नाल के पास पहुँचा। वहाँ राठौड़ों और राणा के पुत्र भीम के नेतृत्व में सीसोदियों की सम्मिलित सेना

---

९९ (अ) जी० एन० शर्मा . मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १७४
(ब) ओझा . उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५६४

१०० सरकार . औरंगजेब (१६१८–१७०७ ई०), पृ० १६६

१०१ रेऊ मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० २६५

ने मुगल सेना का मुकाबला किया, जिसमें दोनों पक्षों की क्षति हुई।[१०२] इस घटना के पश्चात् डेढ़ माह तक तहव्वरखां देसूरी ग्राम में रहस्यमय ढंग से शान्त व निष्क्रिय होकर बैठा रहा। मुगल सेनानायक की यह निष्क्रियता सम्भवतः महाराणा राजसिंह द्वारा औरंगज़ेब के विरुद्ध रचित षड्यन्त्र के कारण ही थी।[१०३]

राणा मेवाड़ की स्थिति से पूर्णतया परिचित था। औरंगज़ेब राजपूतों को पददलित करने के लिए कटिबद्ध था। मुगल सेना का दबाव राजनगर व देसूरी नाल की ओर से निरन्तर बढ़ता जा रहा था। पिछले दस महीनों से मेवाड़ी सेना अपने सीमित साधनों के होते हुए भी शाही सेना से लोहा ले रही थी, जिससे उसमें क्षीणता आना स्वाभाविक ही था। ऐसी परिस्थितियों में राणा राजसिंह ने अब कूटनीति का सहारा लिया। उसने राठौड़ दुर्गादास से विचार-विमर्श कर प्रथम तो शाहज़ादे मुहम्मद मोअज्ज़म को अपने पिता का पदानुसरण कर राजपूतों की सहायता से बादशाह बन जाने के लिए उकसाया और इस विषय के उसे पत्र भेजे। किन्तु मोअज्ज़म पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि उसकी माता नबाव बाई ने, जो उस समय उसके साथ थी, उसे राजपूतों से सचेत रहने की चेतावनी दे दी थी। उसने तो यहाँ तक सतर्कता बरती कि राणा के वकीलों को भी शाहज़ादे तक पहुँचने नहीं दिया। इस प्रकार राणा का मुअज्ज़म को अपने पिता के विरुद्ध करने का प्रयास असफल ही रहा।[१०४]

मोअज्ज़म की तरफ से निराश होने पर राजसिंह का ध्यान अब अकबर की ओर गया। शाहजादे अकबर की आयु इस समय केवल २३ वर्ष की थी। अतः उसमें अभी परिपक्वता का अभाव था। इसके अतिरिक्त अकबर

---

१०२. (अ) सरकार हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० ३६४–३६५

(ब) राजरूपक में इस युद्ध का नाडोल में होना लिखा है। (षष्ठ प्रकाश दूहा, १०७)

(स) इस लड़ाई का वृत्तान्त गुजरात के नागर ब्राह्मण ईसरदास ने 'फ़तूहाते आलमगीरी' (पत्र ७८ पृ० २, पत्र ७६ पृ० १) में लिखा है।

(द) अजित-विलास, परम्परा, भाग २७, पृ० ३८.

१०३. श्रीराम शर्मा : महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पृ० ८२

१०४. मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० ३०० तथा (फारसी मूल), भाग २, पृ० २६४

को अपने पिता की तरफ से अनेक बार झिड़कियों का शिकार होना पड़ा था। इससे शाहज़ादा व्याकुल हो उठा था। ऐसी स्थिति में राजसिंह ने शाहज़ादे अकबर को अपनी ओर मिलाने के लिए प्रयत्न किया। उसे यह सुझाव दिया गया कि वह सीसोदियों और राठौड़ों की सहायता से दिल्ली का सिंहासन प्राप्त कर मुगल वंश को नाश होने से बचाये और अपने पूर्वजों की नीति का अनुसरण कर मुगल साम्राज्य को स्थिर व समृद्ध बनाये।[१०५] सरकार महोदय का विचार है कि इस प्रकार की बातचीत मई के महीने में ही प्रारम्भ हो गई थी। अकबर इस प्रलोभन में फंस गया और राजपूतों के आमन्त्रण को अस्वीकार नहीं कर सका।[१०६]

महाराणा राजसिंह शाहज़ादे अकबर से उक्त बातचीत करने के साथ साथ दूसरी तरफ बादशाह औरंगज़ेब से सन्धि करने के लिए गुप्त वार्ता भी कर रहा था। इसका प्रमाण हमें राजप्रशस्ति महाकाव्य के कुछ अन्तिम श्लोकों से प्राप्त होता है।[१०७] इनमें उल्लिखित है कि राणा ने तीन परगने अथवा तीन लाख रुपये देकर मुगलों से सन्धि करने का प्रस्ताव भिजवाया था, जिसका दिल्लीपति औरंगज़ेब की तरफ से उत्तर भी आया था। राजप्रशस्ति का लेखक रणछोड़ आगे लिखता है कि "छल-बल से यहां पर जो कुछ हुआ वह मैं कहता हूं", [१०८] और इसके बाद के श्लोकों में महाराणा राजसिंह की मृत्यु का उल्लेख कर उसके इतिहास को समाप्त कर देता है। इससे यह स्पष्ट है कि राणा बादशाह से सन्धि वार्ता बड़ी युक्ति व चतुराई से कर रहा था। एक तरफ राणा शाहज़ादे अकबर को औरंगज़ेब के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उकसा रहा था और दूसरी ओर वह बादशाह से सन्धि के लिए भी गुप्त वार्ता कर रहा था। हर हालत में वह मेवाड़ पर मुगल सैनिक दबाव को कम करने के लिए प्रयत्नशील था।

बादशाह के साथ सन्धि का स्वरूप अभी निश्चित नहीं हो पाया था, किन्तु शाहज़ादे अकबर और उसके सेनापति तहव्वरखां ने आलमगीर के विरुद्ध विद्रोह करने की सहमति प्रकट करदी थी और इससे सम्बन्धित योजना विचाराधीन थी। परन्तु इस सम्बन्ध में क्रियात्मक कदम उठाने के पहले ही

---

१०५. (अ) मआसिर-ए-आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० १९६ और १९७
(ब) सरकार औरंगज़ेब (१६१८–१७०७ ई०), पृ० १७०

१०६ सरकार औरंगज़ेब (१६१८–१७०७ ई०), पृ० १७०

१०७ राजप्रशस्ति, सर्ग २२, श्लोक ४५

१०८ वही, श्लोक ४६

सयोगवश महाराणा राजसिंह की वि० स० १७३७ कार्तिक शुक्ला १० (ई० स० १६८० तारीख २२ अक्तूबर) को अकस्मात् मृत्यु होगई[१०६]

---

१०६ (अ) राजप्रशस्ति, सर्ग २३, श्लोक १

(ब) जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १७६

(स) ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २, पृ० ५६५

महाराणा राजसिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में लेखको के विभिन्न मत हैं। वीर विनोद, पृ० ४७४ पर राणा राजसिंह की मृत्यु का वृत्तान्त इस प्रकार है—'राणा नेणवारा गाँव से निकल कर कुम्भलगढ जाते समय ओडा नामक ग्राम मे पहुँचा। वहाँ खिचडी तैयार करवाई गई। राजसिंह और दधवाडिया चारण खेमराज के बेटे आशकरण जिसको राणा भाई कहकर सम्बोधित करता था, भोजन करने बैठे। कुछ समय के बाद उन दोनो का स्वर्गवास हो गया। इस सम्बन्ध मे एक कवि ने राजस्थानी भाषा मे दोहा लिखा है —

ओडे रतन सघारिया, राजड आशकरन्न ।
ऊ हिंदवाणी पातशा ऊ पातशा वरन ।।

ओझाजी का कथन है कि राणा औरगजेब से अन्त तक युद्ध करने के पक्ष मे था। एक दिन कुम्भलगढ जाते समय 'ओडा' गाँव मे वह ठहरा, जहाँ उसे भोजन म विष दे दिया, जिससे उसका देहान्त हो गया। उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २ पृ० ५७७–७८

राजप्रशस्ति मे उल्लिखित है कि वि० स० १७३७ की कार्तिक सुदि १० को ब्राह्मणो को बहुत-सा दान देकर महाराणा राजसिंह मृत्यु को प्राप्त हुआ—सग २३, श्लोक १–२ इसी प्रकार का विवरण अजित-विलास म भी मिलता है।

अजित-विलास परम्परा, भाग २७, पृ० ३६

जगतशिरोमणि मन्दिर से प्राप्त शिलालेख मे बताया गया है कि राजसिंह की मृत्यु विष देने के कारण हुई थी। जोधसिंह मेहता कृत मेदपाटवशीय सक्षिप्त इतिहास मे भी राणा की मृत्यु विष देने के कारण हुई, का उल्लेख है।

जति जयविमल कृत एक समकालीन ग्रन्थ मे उल्लिखित है कि राजसिंह की मृत्यु पानी लग जाने और भयकर गर्मी के कारण हुई थी।

जिससे राजयद्रोहात्मक बातचीत मे गतिरोध उत्पन्न हो गया। उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि २७ सितम्बर १६८० से महाराणा राजसिंह की मृत्यु तक तहव्वरखाँ की निष्क्रियता का एक मात्र कारण राजपूतो से मिलकर औरंगजेब के विरुद्ध षड्यन्त्र करना ही था। यदि महाराणा राजसिंह जीवित रहता तो सम्भवत. तहव्वरखाँ देसूरी की नाल पर आक्रमण कर विजय प्राप्त नही कर सकता था।

महाराणा राजसिंह के मृत्योपरान्त उसका पुत्र जयसिंह राणा बना। राजपूतो और शाहज़ादे अकबर के बीच षड्यंत्र सम्बन्धी गुप्त वार्ता कुछ समय के लिए स्थगित हो गई। औरंगज़ेब के धैर्य की सीमा आ पहुँची थी। उसने रुहेल्लाखाँ के नेतृत्व मे अकबर की सहायतार्थ एक अतिरिक्त सेना भेजी[११०] और उसे देसूरी के दर्रे मे से होकर मेवाड प्रदेश मे आगे बढने के लिए आदेश दिया। २२ नवम्बर को तहव्वरखाँ ६,००० सवारो के साथ घाटे के तंग रास्ते से आगे बढा। भीमसिंह व बीका सोलंकी के नेतृत्व मे मेवाडी सेना ने उस पर धावा बोल दिया।[१११] दोनो ओर के बहुत से व्यक्ति मारे गये परन्तु मुगल सेना विरोध का सामना करती हुई जीलवाडा पहुँच गई। जीलवाडा पर मुगल सेना का अधिकार हो गया।[११२] महाराणा का विख्यात दुर्ग कुम्भलगढ वहाँ से केवल आठ मील दक्षिण को था। परन्तु आने वाले पाँच सप्ताह तक मुगल शिविर मे पुन. रहस्यपूर्ण निष्क्रियता छाई हुई रही। अन्नाभाव के कारण

[पिछले पृष्ठ का शेष]

समसामयिक फारसी ग्रन्थ 'वाक़या-ए रणथम्भोर' मे राणा की मृत्यु का कारण पक्षाघात की बीमारी दी गई है। (पृ० स० ५६५–६६)

राणा के समसामयिक ग्रन्थो मे उसकी मृत्यु का कारण विष देना नहीं बतलाया है। अतः यह सम्भव है कि राणा को विष देने की बात बाद मे चारणो व लेखकों ने जोड दी हो और जिसे सामान्यत: स्वीकार कर लिया गया हो।

११०. मआसिर-ए-आलमगीरी, पृ० १६१

१११. मान राजविलास, विलास ११, पद्य १४
राजप्रशस्ति, सर्ग २३, श्लोक १५

११२. (अ) अदबे-आलमगीरी मे अकबर के संग्रहीत पत्र-जेबुन्निसा के नाम अकबर का पत्र, संख्या ७००

(ब) सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगज़ेब, पृ० ३५०

शाहजादे अकबर ने राणा से फिर सन्धि वार्ता आरम्भ की।[११३] अन्ततोगत्वा राव केसरीसिंह के माध्यम से वार्ता पूर्ण करवाई गई। इसमें यह निश्चय हुआ कि अकबर सम्राट होने पर राणा की प्रतिष्ठा का ध्यान रखेगा और मेवाड़ प्रदेश जो मुगलों के अधीन हो गया है उसे राणा को लौटा दिया जायेगा। अजीतसिंह को मारवाड़ का राज्य दे दिया जायेगा। इसके बदले में मेवाड़-मारवाड़ की ओर से अकबर को सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने पर ४०,००० सेना व धन आदि से सहायता देने का वचन दिया गया।[११४]

जनवरी १, १६८१ ई० को[११५] अकबर ने अपने को बादशाह घोषित कर विद्रोह का झण्डा खड़ा किया और राजपूतों ने उसका ससैन्य साथ दिया। अनुभव विहीन नवयुवक अकबर ने बादशाहत पाने की खुशी में अपना अमूल्य समय नाच रंग में व्यतीत कर दिया। १२० मील की दूरी १५ दिनों में तय कर वह अजमेर के निकट दोराई ग्राम में पहुँचा। शाहजादे की प्रत्येक दिन व प्रत्येक घंटे की देरी औरंगजेब की विजय के लिए वरदान सिद्ध हुई। १५ दिनों में बादशाह ने अजमेर में अपनी स्थिति सुदृढ़ व संगठित करली। १५ जनवरी के दिन दोनों पक्षों की सेनाएँ दोराई के मैदान में आमने-सामने पड़ी युद्ध के लिए अगले दिन सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगी। औरंगजेब ने कूट-नीति से काम लिया और बिना संघर्ष के ही उसने उसी रात्रि को आगामी दिन होने वाले युद्ध में पूर्ण विजय प्राप्त करली। औरंगजेब के छलपूर्ण पत्र ने राजपूतों के मन में अकबर के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिया था तथा उसी रात वे अकबर का बहुत-सा सामान लूटकर युद्धक्षेत्र से प्रस्थान कर गये। अकबर वस्तुतः दयनीय स्थिति में था। वह बिना लड़े ही राजपूतों के पीछे-पीछे चल दिया।[११६] जब राजपूतों को वास्तविक स्थिति का ज्ञान हुआ तब दुर्गादास, सोनिंग आदि राजपूत सेनानायकों ने पुनः अकबर की सहायता की। अब स्थिति बदल चुकी थी। अन्ततोगत्वा राठौड़ दुर्गादास ने शाहजादे अकबर को मराठा राजा शम्भाजी के पास सकुशल कोंकण पहुँचा दिया (जून

---

११३ राजप्रशस्ति, सर्ग २३, पद्य ३०–३१

११४ (अ) सरकार औरंगजेब, भाग ३, पृ० ४०४–०५

(ब) मुन्तखब-उल-लुबाब, इलियट, भाग ७, पृ० ३००–३०१

११५ (अ) सरकार औरंगजेब, भाग ३, पृ० ३९८

(ब) देवीप्रसाद औरंगजेबनामा, भाग २, पृ० १००–यहाँ इस विद्रोह की खबर औरंगजेब को ७ जनवरी को मिलना लिखा है।

११६ देवीप्रसाद औरंगजेबनामा, भाग २, पृ० १०४

१६८१) ।[११७]

अकबर के बागी हो जाने से मेवाड पर बढता हुआ दबाव कम हो गया था । औरंगजेब अब ससैन्य दक्षिण जाने के लिए उत्सुक था, क्योंकि दुर्गादास, अकबर और शम्भाजी का सम्मिलित होना, मुगल साम्राज्य के लिए बहुत बडा खतरा था । उधर राणा जयसिंह अपने पिता राजसिंह की भाँति न तो महत्वाकाक्षी ही था और न कुशल शासक ही । उपज की बडी क्षति हो चुकी थी, अत. दोनो पक्ष सन्धि करने के लिए इच्छुक थे ।[११८] महाराणा के चचेरे भाई श्यामसिंह, जो उस समय शाही सेना मे नियुक्त था, की मध्यस्थता से सन्धि के लिए बातचीत हुई ।[११९] राणा ने सन्धि के लिए सहमति प्रकट करदी, जिसके फलस्वरूप जून २४, १६८१ ई० को महाराणा तथा शाहजादे आजम की मुलाकात हुई[१२०] और सन्धि की शर्तें तय हो गई[१२१] सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थी :—

१. राणा जजिया के बदले मे अपने तीन परगने माडल, पुर और बदनोर देगा ।

२ मुगल बादशाह अपनी सेना मेवाड क्षेत्र से हटा लेगा और राणा के पूर्वजो का प्रदेश उसे लौटा देगा ।

३. महाराणा राठौडो की सहायता नही करेगा ।

---

११७ (अ) मआसिर-ए-आलमगीरी, (फारसी मूल), पृ० २०२
(ब) मुन्तखब-उल-लुबाब, (फारसी मूल), पृ० २७५, भाग २
(स) देवीप्रसाद · औरगजेबनामा, भाग २, पृ० १०६–१०७
इसमे अकबर का शम्भाजी के मुल्क मे १६ मई को पहुँचना लिखा है ।
(द) द केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ४, पृ० २५०–२५२
(ई) सरकार : औरंगजेब, भाग ३, पृ० ३५८–३६८
(प) जी० एन० शर्मा : मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १७८–१७६

११८. द केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ४, पृ० २५२

११६. राजप्रशस्ति, सर्ग २३, श्लोक ३२–३३

१२०. वही : पद्य ३४

१२१. (अ) मआसिर-ए-आलमगीरी (फारसी मूल), पृ० २०७–०८
(ब) मुन्तखब-उल-लुबाब (फारसी मूल), भाग २, पृ० ६०६
(स) देवीप्रसाद : औरंगजेबनामा, भाग २, पृ० १०६
(द) जी० एन० शर्मा : मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १८०

इस प्रकार लगभग डेढ वर्ष के बाद मेवाड मे शान्ति स्थापित हुई और वहाँ पुन: जन-जीवन सुचारु रूप से चलने लगा। युद्ध के कारण जो क्षति पहुँची थी, उसकी पूर्ति धीरे-धीरे होने लगी थी। किन्तु मेवाड अपने पुराने गौरव, राजनैतिक महत्त्व तथा सैनिक प्रतिभा को फिर से प्राप्त नहीं कर सका। वैसे तो महाराणा प्रताप के बाद से ही मेवाड का गौरवमय इतिहास धूमिल होने लग गया था, किन्तु फिर भी राणा राजसिंह के रूप मे मेवाड की विगत आभा का अन्तिम दीपक भारत के क्षितिज पर टिमटिमा रहा था। उक्त मुगल-मेवाड सघर्ष मे यह दीपक अपनी अन्तिम चमक दिखा कर बुझ गया, जिससे मेवाड एक घोर अन्धकारमय निराशाजनक रात्रि मे प्रविष्ट हुआ। यदा-कदा, यत्र तत्र मेवाड को आलोकित करने हेतु कतिपय राणा इतिहास के मच पर अवतरित हुए, किन्तु उनकी क्षीण व अस्थायी चमक उस घोर कालिमा को मिटा नही सकी। अशक्त मेवाड भारत मे तो क्या, राजस्थान के इतिहास मे भी अपना यथोचित स्थान प्राप्त करने के लिए असमर्थ रहा।

८

साहित्य एवम् कला

वीरप्रसविनी मेदपाटीय भूमि ने जहाँ एक ओर आन पर मर मिटने वाले रणबाकुरे योद्धा उत्पन्न किये वहाँ दूसरी ओर कलम के धनी साहित्यकारों को भी जन्म दिया। राष्ट्रीय संस्कृति के मूल मन्त्र—शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चिन्ता प्रवर्तते—का पूर्णत पालन मेवाड़ प्रदेश ने किया। इस प्रकार मेवाड़ ने शक्ति के, चण्डी एवम् सरस्वती, उभयरूपों की उपासना का श्रेय लिया। राजस्थानी साहित्य के सम्बन्ध में प्राय भ्रमात्मक धारणा बनी हुई है कि राजस्थानी साहित्यकारों ने मात्र वीर रसात्मक डिंगल साहित्य की ही रचना की। वस्तुत राजस्थान में डिंगल, पिंगल एवम् संस्कृत की त्रिवेणी में विविध प्रकार के साहित्य की रचना हुई। मेवाड़ ने भी राजस्थान की इस त्रिवेणी का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत किया है।

मेवाड़ में अत्यन्त प्राचीन काल से ही संस्कृत भाषा का प्रचलन रहा।[1] मेवाड़ प्रदेश में संस्कृत साहित्य को स्थानीय शासकों द्वारा सर्वाधिक संरक्षण प्राप्त हुआ। मेवाड़ के महाराणाओं की शिलांकित प्रशस्तियाँ संस्कृत में ही उपलब्ध हैं।[2] संस्कृत शिक्षा हेतु प्रदेश में अनेक पारि-

---

१ मेदपाट प्रदेश में ई० पू० की शताब्दियों में संस्कृत भाषा का व्यवहार होता था, यह तो नगरी (प्राचीन माध्यमिका, शिवि जनपद की राजधानी, चित्तौड़ से ८ मील दूर) से प्राप्त कई शिलालेखों से प्रमाणित है। नगरी के इन लेखों की कुछ शिलाएँ उदयपुर संग्रहालय के पुरातत्त्वकक्ष में प्रदर्शित हैं।

२ द्रष्टव्य . वीर विनोद, भाग १, पृ० ३७३–४२५
भाग २, पृ० ५६–५८ २६७–६८, ३८३–४००
रायमल के समय की एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की शिला प्रशस्ति, मोकल के काल की शृंगी ऋषि की प्रशस्ति, मोकल के समय की समिद्धेश्वर की प्रशस्ति, कुम्भा के काल की कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति, महाराणा

वारिक[3] एवम् सार्वजनिक[4] शिक्षण केन्द्र स्थापित थे, जिन्हे महाराणाओ की ओर से समय-समय पर अनुदान प्राप्त होता रहता था। इन संस्कृत केन्द्रो के फलस्वरूप संस्कृत साहित्य के अध्ययन के प्रति लोगो मे अनुराग उत्पन्न हुआ। यद्यपि संस्कृत सर्वसामान्य के अध्ययन की भाषा तो नही बन सकी

[पिछले पृष्ठ का शेष]

रायमल की धर्मपत्नी शृंगार देवी की बनवाई हुई घोसुंडी गाँव की वापी सम्बन्धी प्रशस्ति, जगतसिंह के काल की जगदीश मन्दिर की प्रशस्ति आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

३. (क) राणा लाखा ने कवि भोटिंग भट्ट को (घोसुंडी की बावडी की प्रशस्ति, श्लोक २५) पिप्पली (पीपली) नामक ग्राम तथा धनेश्वर भट्ट को पचदेवालय (पचदेवला) नाम का गाँव दिया था (एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की शिला प्रशस्ति, श्लोक ३६)

(ख) महाराणा कुम्भा ने अत्रिपुत्र महेश को दो मदमत्त हाथी, सोने की डडी वाले दो चवर और एक श्वेत छत्र पुरस्कार स्वरूप प्रदान किये थे। (कीर्तिस्तभ प्रशस्ति, श्लोक १९१–१९२)

(ग) कवि महेश को राणा रायमल द्वारा रत्नखेट नामक ग्राम के दान का उल्लेख एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति श्लोक ६७ मे किया गया है।

(घ) इसी प्रकार राणा रायमल ने अपने गुरु गोपाल भट्ट को 'प्रहाण' एव 'थूर' नामक गाँव दिये थे—एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, श्लोक ८२ और ८७

(ङ) लक्ष्मीनाथ प्रथम, को मेवाड नरेश महाराणा उदयसिंह और अमरसिंह प्रथम ने 'भूरवाडा' तथा 'होली' नामक ग्राम क्रमश दान मे दिये। लक्ष्मीनाथ प्रथम, लक्ष्मीनाथ द्वितीय (बाबू भट्ट) जगदीश मन्दिर की प्रशस्ति के लेखक के पूर्वजो की चौथी पीढी मे था। जगदीश मन्दिर प्रशस्ति, श्लोक ११३–११५, राजप्रशस्ति, सर्ग ४, श्लोक १८–१९ और सर्ग ५, श्लोक ९

(च) जगतसिंह ने 'भैसडा' ग्राम कृष्ण भट्ट को दिया (जगदीश मन्दिर प्रशस्ति, श्लोक ११६) आदि आदि

४ जी० एन० शर्मा . सोशल लाइफ इन मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० २६८–२७०, २८४, एकलिंग माहात्म्य सर्ग १९, श्लोक ८–११; एकलिंग अभिलेख (१४८८ ई०) श्लोक ९१–९६

तथापि अनेक इच्छुक लोगों को संस्कृत साहित्य के अध्ययन की सुविधा प्राप्त हो सकी। इस सुविधा के फलस्वरूप एक ओर परम्परागत वैदिक एवम् लौकिक संस्कृत साहित्य का इस क्षेत्र मे प्रचार हुआ तथा दूसरी ओर संस्कृत मे कतिपय मौलिक रचनाओ का सृजन भी हो सका। मेवाड के लगभग सभी राणाओं ने संस्कृत साहित्य की प्रगति मे यथा सम्भव योगदान दिया। इसके साथ-साथ कुछ महाराणा तो स्वय भी उच्च कोटि के संस्कृत के ज्ञाता हुए और उन्होने संस्कृत साहित्य का सृजन भी किया। इस सम्बन्ध मे महाराणा कुम्भा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महाराणा कुम्भा की कतिपय मौलिक संस्कृत रचनाएँ एवम् टीका ग्रन्थ उपलब्ध हैं।[५] कुम्भा का काल वस्तुत: सर्वोन्मुखी प्रतिभा सम्पन्नता का युग था। कुम्भा के उपरान्त सतत युद्ध की स्थिति ने साहित्य सृजन के कार्य मे कुछ अवरोध अवश्य उत्पन्न कर दिया था, परन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि मेवाड मे संस्कृत पठन-पाठन का कार्य पूर्णतया स्थगित हो गया था। इस काल मे भी संस्कृत साहित्य के अध्ययन व सृजन का कार्य मथर गति से गतिमान था।[६]

महाराणा राजसिंह का काल भी यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से पूर्ण शान्ति का काल तो नहीं था, तथापि इस काल मे संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में आशातीत प्रगति हुई।[७] इस काल मे पल्लवित एव प्रचारित संस्कृत साहित्य को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—परम्परागत संस्कृत साहित्य एवम् मौलिक साहित्य।

महाराणा राजसिंह के काल मे वैदिक साहित्य, कर्मकाण्डीय साहित्य, पौराणिक साहित्य एव विविध विषयक संस्कृत रचनाओं का अत्यधिक प्रचार रहा। अत्यन्त प्राचीन काल से ही मेवाड प्रदेश में इन विभिन्न ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ तैयार की जाती रही हैं, जो स्थानीय विभिन्न ग्रन्थ भण्डारो मे

---

५ उसके रचे हुए ग्रन्थो में संगीतराज, संगीत मीमासा, सूड प्रबन्ध आदि मुख्य हैं। उसने चण्डीशतक की व्याख्या की थी तथा गीत गोविन्द पर रसिकप्रिया नाम की टीका लिखी। इसके अतिरिक्त उसने महाराष्ट्री, कार्णाटी तथा मेवाडी भाषा मे चार नाटकों को रचकर अपने विविध भाषा सम्बन्धी जानकारी का परिचय दिया। संगीत रत्नाकर की भी टीका राणा द्वारा की गई थी।

६ जी० एन० शर्मा : राजस्थान का इतिहास, पृ० ५२६

७ जी० एन० शर्मा : मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६८

उपलब्ध हैं।[८] सरस्वती भण्डार मे वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत व रामायण आदि ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं। महाराणा राजसिंह के काल मे भी प्रतिलिपि करने का कार्य पर्याप्त मात्रा मे हुआ। महाराणा राजसिंह के काल मे—यजुर्वेद हविर्यज्ञकाण्डम्, वाजसनेयी सहिता (द्वितीय विंशतिका), वाजसनेयी सहिता (प्रथम विंशतिका) प्रायश्चित्त मयूख, शुद्धि मयूख, नित्य श्राद्ध विधि, राम कल्पद्रुम, तीर्थरत्नाकरम्, चमत्कार चिन्तामणी, गोवध व्यवस्थादीप, वाक्यदीप, सीमत पद्धति, जातकर्म पद्धति, उपवीत पद्धति, चतुर्थी कर्म धर्म, मातृ महालय, श्राद्ध पद्धति, सर्व कर्म साधारण प्रयोग, कार्ष्णि सहिता, मथान भैरवागमनम् (प्रथम काण्ड), देव प्रतिष्ठा पद्धति, अनन्त व्रतोद्यापनम् विधि, पारस्कर गृह्यसूत्रे प्रयोग पद्धति, शिवार्चन विधि, कालिका पुराणम्, स्कन्द पुराणम् अवन्तिका खण्डम्, सेतु माहात्म्यम्, वराह सहिता, स्मृति सार, दशकम आदि ग्रन्थो की पाण्डुलिपियाँ तैयार की गई थी जो सरस्वती भण्डार उदयपुर मे विद्यमान हैं। इनकी ग्रन्थ पुष्पिकाओ से ज्ञात होता है कि इन ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ गरीबदास, रणछोडराय, रामराय आदि राजघराने के पुरोहितो ने करवाई थी। उक्त ग्रन्थ अधिकाशत कर्मकाण्ड से सम्बन्धित है। इससे स्पष्ट है कि इस समय मेवाड म हिन्दू धर्मकाण्डो की अच्छी व्यवस्था थी एवम् शुद्ध शास्त्रोक्त विधि से कर्मकाण्डीय क्रियाओ का सम्पादन होता था।

उपलब्ध ग्रन्थो मे ज्योतिष विषयक ग्रन्थ ज्योतिष विषयक अभिरुचि को प्रमाणित करते हैं। वैदिक सहिताओ की प्रतिलिपियाँ वैदिक साहित्य के अध्ययन की प्रवृत्ति की द्योतक हैं। इन प्रतिलिपियो के अतिरिक्त राज्याभिषेक पद्धति से सम्बन्धित प्रतिलिपियाँ भी उपलब्ध हैं, जिनमें परम्परागत शास्त्रोक्त श्लोकों के साथ-साथ स्थानीय राज्याभिषेक पद्धतियो से सम्बन्धित तथ्य भी उल्लिखित हैं। इन राज्याभिषेक पद्धतियो से स्थानीय महाराणाओ के राज्याभिषेकोत्सव पर अच्छा प्रकाश पडता है जिसका विवेचन द्वितीय अध्याय मे किया जा चुका है।[९] इनकी राज्याभिषेक पद्धति वैदिक आर्य परम्पराओ पर आधारित होने के साथ साथ कतिपय स्थानीय विशेषताएँ भी लिये हुए हैं।

परम्परागत सस्कृत साहित्य के प्रति स्थानीय जनता के हृदय मे जो अनुराग रहा उसके परिणामस्वरूप सस्कृत के प्रति इस उत्कट अनुराग ने जहाँ एक ओर प्राचीन साहित्यिक धरोहर को अक्षुण्ण रखा वहाँ दूसरी ओर मौलिक

---

८. द्रष्टव्य . ग्रन्थ सूची, सरस्वती भण्डार, उदयपुर

९ द्रष्टव्य . अध्याय २, पृ० १८–२०

साहित्य सृजन का कार्य भी होने लगा। महाराणा राजसिंह के दरबार में जहाँ प्राचीन साहित्य मे पारगत विद्वानो को आश्रय प्राप्त था वहाँ कई कवियो ने भी राणा के दरबार मे सम्मान प्राप्त किया था। राजकीय सरक्षण प्राप्त इन कवियो ने अनेक काव्य रचनाओं का सृजन कर अपने काव्य-कौशल का प्रदर्शन किया। महाराणा राजसिंह के आश्रय मे प्रणीत काव्यो का विवरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

राजसिंह के दरबारी कवियो मे प्रथम स्थान रणछोड भट्ट का है। रणछोड भट्ट न दो काव्य ग्रन्थो की सृष्टि की थी—राजप्रशस्ति महाकाव्य[10] तथा अमरकाव्य।[11] राजप्रशस्ति कवि की एक अत्यन्त प्रौढ रचना है, जिसका मुख्य विषय है महाराणा राजसिंह की उपलब्धियाँ। राजसिंह की जीवन घटनाओ को प्रस्तुत करने से पूर्व कवि ने प्रारम्भ मे महाराणा जगतसिंह तक के महाराणाओं का सक्षिप्त इतिहास दिया है। प्रत्येक महाराणा के वर्णन प्रसग मे कवि ने सम्बन्धित महाराणा की इतिहासप्रसिद्ध घटनाओं को सक्षेप मे प्रस्तुत किया है। महाकाव्य के प्रथम पाँच सर्गों मे राजसिंह के पूर्वजो का विवरण प्रस्तुत करने के उपरान्त कवि ने छठे सर्ग से महाराणा राजसिंह का इतिवृत्त प्रस्तुत करना आरम्भ किया है। सोलहवे सर्ग तक महाराणा राजसिंह के शासनकाल की प्रारम्भिक घटनाओ पर प्रकाश डाला गया है। अन्तिम आठ सर्गों मे औरगजेब व राजपूतो के मध्य हुई सन्धि तक का वर्णन दिया गया है।[12] महाराणा राजसिंह की राजनैतिक उपलब्धियो के साथ-साथ कवि ने राजसमुद्र के निर्माण के महान् कार्य का भी विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। यह महाकाव्य २४ सर्गों मे विभाजित है।

रणछोड भट्ट ने इस काव्य का सृजन किस उद्देश्य से किया ? इस पर श्रीराम शर्मा ने विस्तार पूर्वक विचार किया है।[13] उन्होंने बताया है कि कवि ने उद्देश्य को उलझा दिया है, क्योकि कवि ने सर्ग १ श्लोक १० मे कहा है कि महाराणा राजसिंह ने माघ कृष्णा ७ वि० स० १७१८ (१ जनवरी सन् १६६२ ई०) को राजसमुद्र के निर्माण की आज्ञा के साथ ही कवि को प्रस्तुत

१० एपिग्राफिया इण्डिका, वर्ष २६ तथा ३० के परिशिष्टाको के रूप मे प्रकाशित हुआ है। वीर विनोद, पृ० ५७८–६३४

११ द्रष्टव्य इण्डियन हिस्टॉरिकॅल् रेकॉर्ड कमिशन, वर्ष १९४५ मे प्रकाशित जी० एन० शर्मा का लेख।

१२ श्रीराम शर्मा महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पृ० ६

१३. वही, पृ० ४–६

काव्य के प्रणयन की आज्ञा प्रदान की। अन्यत्र कवि ने बताया है कि महाराणा जयसिंह ने काव्य सुना एवम् इसे पाषाण पट्टिकाओं पर उत्कीर्ण करवाने की आज्ञा प्रदान की।[१४] एक स्थान पर कवि ने कहा है कि जिस राणा ने काव्य सृजन की आज्ञा प्रदान की उसने काव्य को सुना व शिलोत्कीर्ण करवाने की आज्ञा दी।[१५] इसके अतिरिक्त एक स्थान पर कवि ने कहा कि इस काव्य का सृजन उसने अपने भाइयों लक्ष्मण व भरथ के लिए किया है।[१६] अन्तिम सर्ग में उसने बताया है कि इस काव्य का सृजन लक्ष्मीनाथ आदि बालकों के पठनार्थ किया गया है।[१७] कवि द्वारा प्रदत्त इन परस्पर भिन्न उद्देश्यों के कारण श्रीराम शर्मा ने कहा है कि यह निश्चित करना कठिन है कि लेखक हमें क्या मानने हेतु कहता है।[१८] वस्तुतः श्रीराम शर्मा ने काव्य की शैली को समझने की भूल की है। कवि ने प्रस्तुत काव्य की रचना पौराणिक आख्यानों की शैली पर की है।[१९] अन्तिम सर्ग से यह और अधिक स्पष्ट हो जाता है, जहाँ कवि इस काव्य के पढ़ने से प्राप्त होने वाले पुण्य फलों का वर्णन करता है।[२०] अतः कवि का मात्र उद्देश्य अपने सहोदरों अथवा लक्ष्मीनाथ आदि बालकों के पठनार्थ काव्य रचना करना नहीं रहा वरन् काव्य की रचना सर्व साधारण के लिए की गई है। जहाँ तक काव्य रचना के आरम्भ करने के आदेश का प्रश्न है, यह स्पष्ट है कि यह आदेश उसे अपने आश्रयदाता व काव्य के नायक राजसिंह से ही मिला था। चौबीस सर्गों में निबद्ध इस ११०६ श्लोकों[२१] के काव्य की रचना में लम्बा समय लगा तब तक नायक की

---

१४ राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग १०, श्लोक ४३

१५ वही, सर्ग ५, श्लोक ५२

१६. वही, सर्ग १, श्लोक १

१७ राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग २४, श्लोक १६

१८ श्रीराम शर्मा महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पृ० ६

१९ राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग १, श्लोक १६–१७

यहाँ कवि ने संस्कृत भाषा के महत्त्व का विवरण देते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि संस्कृत वाणी में रचित यह ग्रन्थ महाभारतादि की तरह अमर रहेगा जबकि स्थानिक भाषाओं में रचे गये काव्य मनुष्यों की भाँति क्षणभंगुर होते हैं।

२० राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग २४, श्लोक १७–२४

२१ महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ, मौलिक स्रोत, द्वितीय खण्ड पृ० २०

मृत्यु हो गई एवम् उसके उत्तराधिकारी महाराणा जयसिंह ने काव्य से प्रभावित होकर उसे स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से शिलोत्कीर्ण करने का आदेश दिया।

प्रस्तुत रचना मे कवि ने अपना वंश परिचय भी स्थान-स्थान पर दिया है। तदनुसार रणछोड भट्ट कठोडी कुलोत्पन्न तैलंग ब्राह्मण था। इसके पिता का नाम मधुसूदन तथा माता का नाम वेणी था।[२२] अपने पिता के समान ही यह भी सस्कृत का अच्छा विद्वान था। विद्वत्ता के कारण ही इसे महाराणा राजसिंह, महाराणा जयसिंह (१६८०–१६९८ ई०) तथा महाराणा अमरसिंह द्वितीय (१६९८–१७१० ई०) के दरबार मे अच्छा सम्मान प्राप्त था। मधुसूदन, रणछोड तथा उनके परिवार के सदस्यो को मेवाड के राणाओ द्वारा समय-समय पर उदारता पूर्वक दान दिया गया।[२३]

राजप्रशस्ति महाकाव्य पौराणिक आख्यान शैली का काव्य होते हुए भी निरर्थक कल्पनाओ एवम् अतिशयोक्ति से अछूता है। कवि ने काव्य-नायक राजसिंह का यथासम्भव यथार्थ इतिहास प्रस्तुत किया है, साथ ही घटनाओं की तिथियाँ देकर उसने इस ऐतिहासिक महाकाव्य को अधिक प्रामाणिक बना दिया है। इस प्रकार राजप्रशस्ति काव्य सस्कृत काव्य की एक अमूल्य निधि होने के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है।

रणछोड भट्ट की दूसरी रचना अमरकाव्यम् है। इस काव्य की रचना कवि ने राजसिंह के पौत्र अमरसिंह द्वितीय के काल मे की थी। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना कवि ने सम्भवत महाराणा अमरसिंह के जीवन काल की घटनाओ का वर्णन करने हेतु की थी, जैसा कि रचना के शीर्षक से प्रतिध्वनित होता है। लेकिन प्रस्तुत रचना मे मात्र राजसिंह तक के राजाओं का ही सक्षिप्त वृत्तान्त है।[२४] इससे प्रतीत होता है कि कवि अपनी इस रचना को पूर्ण नहीं कर पाया व बीच में ही उसका देहान्त हो गया। प्रस्तुत रचना का सर्ग एवम् श्लोक क्रम व्यवस्थित नही है लेकिन काव्य सौष्ठव की दृष्टि से यह राजप्रशस्ति की अपेक्षा अधिक प्रौढ है। राजप्रशस्ति की तुलना मे इसकी भाषा अधिक परिमार्जित एवम् प्रौढ है तथा विषय सामग्री भी अधिक व्यापक है।

---

२२. राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग १, श्लोक ३०–३१

२३ वही, सर्ग ५, श्लोक ३३, ४३, ४४, ४६, ५०
सर्ग ६, श्लोक २७, २८, ३८, ३९, ४१, ४२, ४५ और ४६

२४. जी० एन० शर्मा : ए बिब्लिओग्राफि ऑफ मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० ६४–६५

काव्य में लगभग २४० श्लोक हैं। प्रस्तुत काव्य की चार हस्तप्रतियाँ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा में विद्यमान हैं।

राजसिंहकालीन दूसरा महत्त्वपूर्ण कवि सदाशिव था। सदाशिव ने राजरत्नाकर नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की।[२५] राजरत्नाकर भी एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। राजरत्नाकर की काव्य शैली राजप्रशस्ति की अपेक्षा श्रेष्ठ है। कवि की वर्णन शक्ति में अधिक सजीवता है, साथ ही शब्द योजना भी उच्च कोटि की है। कवि ने राजसमुद्र एवम् राजनगर का वर्णन अत्यन्त सजीव और हृदयग्राही शैली में किया है। सदाशिव ने अपने इस काव्य में राजप्रशस्ति एवम् अमरकाव्य के समान प्रारम्भ में मेवाड़ के महाराणाओं का संक्षिप्त वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। तदुपरान्त महाराणा राजसिंह के विस्तृत इतिवृत्त का उल्लेख किया है। कवि का मुख्य उद्देश्य अपने आश्रयदाता व उसके पूर्वजों का यशगान करना रहा है। यद्यपि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कई ऐतिहासिक तथ्यों को तोड मरोड भी दिया है। फिर भी इसकी रचना से हमें अनेक प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान भी होता है। रणछोड भट्ट के समान सदाशिव ने भी अपने काव्य में अपना वंश परिचय दिया है। वह नागर ब्राह्मण कुलोत्पन्न कृष्णजित का पुत्र था। कृष्णजित विद्याधर का प्रपौत्र, गोपाल का पौत्र तथा मडन का पुत्र था। सदाशिव के चारो ही पूर्वज संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। अपनी वंश परम्परा के अनुसार सदाशिव ने भी वाराणसी में रहकर व्याकरण, गणित, छन्दशास्त्र आदि विषयों का अध्ययन किया था। सदाशिव का गुरु भानुजित नामक विद्वान था।[२६] सदाशिव ने प्रशस्ति संग्रह नामक ग्रन्थ में अनेक प्रशस्तियों का भी संग्रह किया था।

इसी समय किसी लाल भाट नामक कवि ने महाराणा राजसिंह की प्रशस्ति में १०१ छन्दों का राजसिंह प्रभा (प्रशंसात्मक) वर्णनम् नामक काव्य ग्रन्थ का प्रणयन किया।[२७] इसी समय राजसिंहाष्टक नामक काव्य लिखा गया

---

२५ जी० एन० शर्मा : ए बिब्लिओग्रॉफि ऑफ मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० ६५
सोशल लाइफ इन मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० २५४
द्रष्टव्य इन्डियन हिस्टॉरिकॅल रेकॉर्ड कमिशन, वर्ष १९५६ में प्रकाशित जी० एन० शर्मा का लेख।

२६ महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, मौलिक स्रोत, द्वितीय खण्ड, पृ० ९

२७. श्रीराम शर्मा : महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पृ० १२५
ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५८०, पाद टिप्पणी २

जिसका लेखक मुकन्द था। इसमें आठ छन्दों में राजसिंह का प्रशस्ति-गान किया गया है। कविता की दृष्टि से सुन्दर कृति कही जा सकती है।[२८]

महाराणा राजसिंह के काल में संस्कृत के समान ही हिन्दी एवम् राजस्थानी कवियों को भी आश्रय प्राप्त हुआ था। डिंगल काव्यों में प्रथम स्थान किशोरदास कृत राजप्रकाश का है।[२९] किशोरदास दधवाडी शाखा का राव था। राजप्रकाश में कवि ने कुल १३२ छन्द लिखे हैं। इनमें से प्रारम्भिक ५६ छन्दों में आरम्भ से लेकर, महाराणा जगतसिंह तक के महाराणाओं का संक्षिप्त वृत्तान्त है। शेष ७६ छन्दों में महाराणा राजसिंह की टीका दौड, राज्य प्रबन्ध, वैभव विलास एवम् शौर्य का वर्णन किया गया है। महाराणा राजसिंह के दरबार का चित्रण कवि ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से किया है। कवि ने अपने काव्य में अपनी आँखों देखी घटनाओं का वर्णन किया है, अत ऐतिहासिक दृष्टि से ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय बन गया है। प्रस्तुत रचना मात्र राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से ही उपयोगी नहीं वरन् समकालीन सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से भी अत्यन्त उपयोगी है। प्रस्तुत रचना में दरबारी वैभव के साथ-साथ कवि ने सामान्य जन-जीवन पर भी कुछ प्रकाश डाला है।

किशोरदास ने राजप्रकाश की रचना के अतिरिक्त कुछ डिंगल गीतों की भी रचना की थी। इन गीतों की प्रतिलिपियाँ साहित्य संस्थान, उदयपुर के संग्रह में उपलब्ध हैं।

किशोरदास के समान कवि मान ने राजविलास नामक काव्य की रचना की। ऐतिहासिक घटनाओं की दृष्टि से राजविलास[३०] अधिक महत्व-पूर्ण रचना है। जहाँ किशोरदास का उद्देश्य मात्र अपने आश्रयदाता का प्रशस्ति गान करना रहा है, वहाँ कविवर मान का उद्देश्य अपने काव्य के

---

२८ जी० एन० शर्मा : मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६६
राजस्थान का इतिहास, भाग १, पृ० ५२७

२९ जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० २२८
सोशल लाइफ् इन मेडिईवेल् राजस्थान, पृ० २५६
यहाँ शर्माजी ने छन्दों की कुल संख्या १३० लिखी है, जबकि हमारे पास जो प्रतिलिपि उपलब्ध है उसमें कुल १३२ छन्द हैं। (प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा-सरस्वती भंडार, हिन्दी ग्रन्थांक ३५५)

३० सरस्वती भवन उदयपुर में इसकी वि० सं० १७४६ की हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। मान कृत राजविलास का संपादन मोतीलाल मेनारिया ने किया है। यह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित है।

नायक की क्रमिक उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए उसके महत्त्व का निरूपण करता रहा है। मान की रचना शैली निश्चित रूप से राजस्थान की चारण शैली से मेल खाती है, लेकिन इसने व्रज भाषा को अपने भाव-प्रकाशन का माध्यम बनाया है। कवि की प्रबन्ध योजना भी किशोरदास की अपेक्षा श्रेष्ठ है। समूचे इतिवृत्त को कवि ने अठारह विलासो (सर्गों) मे विभाजित किया है। राजविलास मे राजनैतिक इतिहास से सम्बन्धित तथ्यों के साथ-साथ सामान्य जन-जीवन की स्थिति पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

इस काल की तृतीय रचना गिरधर आशिया कृत सगतरासो है।[31] सगतरासो का रचना काल सवत् १७२० (१६६३ ई०) के लगभग माना जाता है। प्रस्तुत रचना मे कवि ने महाराणा प्रताप के अनुज शक्तिसिंह का चरित्र वर्णन लगभग ५०० छन्दो मे किया है। शक्तिसिंह के साथ-साथ प्रसग वश कवि ने महाराणा प्रताप का भी चित्रण ७४ छन्दो म किया है। इस ग्रन्थ मे शुद्ध डिंगल भाषा का प्रयोग हुआ है।

दौलत विजय कृत खुमाण रासो ग्रन्थ का रचना काल भी हम महाराणा राजसिंह के काल के आसपास ही मानने हेतु बाध्य हैं। विद्वानो ने इसके रचना काल को अनुमानत वि० स० १७६६ से १७६० (ई० स० १७१२-१७३३) के मध्य निर्धारित किया है।[32] लेकिन इसमे बापा रावल से लेकर महाराणा राजसिंह तक के महाराणाओं का वर्णन है। यदि काव्य का रचना काल वि० स० १७६६ से १७६० के मध्य माना जाय तो राजसिंह के उत्तराधिकारियो—क्रमश जयसिंह व अमरसिंह का वर्णन भी होना चाहिए था। मेवाड के महाराणाओं का विरुद खुमाण रहा है, अत कवि ने समस्त महाराणाओं का वर्णन करने के उद्देश्य से अपनी रचना का शीर्षक खुमाण रासो दिया है। उसका उद्देश्य किसी राणा विशेष का वर्णन करना नही रहा है अन्यथा ग्रन्थ का नामकरण वह राणा विशेष के नाम के आधार पर करता। ऐसी दशा मे रचना काल वि० स० १७६० मानने पर इस स्वाभाविक शका का समाधान नहीं हो पाता कि कवि ने राणा राजसिंह के परवर्ती राणाओं का वर्णन क्यो नहीं किया ? ऐसी स्थिति मे प्रस्तुत रचना को राणा राजसिंह के काल के तत्काल बाद की ही रचना स्वीकार करना समीचीन

---

३१. महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, मौलिक स्रोत, द्वितीय खण्ड, पृ० १२०

३२ वही पृ० १३२, डा० जी० एन० शर्मा ने डा० मेनारिया के आधार पर इसका काल ई० स० १७३०-१७६० के बीच स्वीकार किया है—द्रष्टव्य: सोशल लाइफ इन मेडिईवेल राजस्थान, पृ० २५८

होगा। प्रस्तुत ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना में सग्रहीत है।[33] काव्य का रचयिता श्वेताम्बर जैन तपागच्छीय साधु शान्ति विजय का शिष्य दौलत विजय है। दीक्षा लेने से पूर्व इसका नाम दलपत था।[34]

कवि ने प्रस्तुत काव्य मे शुद्ध डिंगल भाषा का प्रयोग किया है। मेवाड के शासको के इतिहास की दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है, किन्तु कही-कही पर कवि ने कुछ ऐसे तथ्य भी प्रस्तुत किये हैं जिनकी प्रामाणिकता सदिग्ध है।

महाराणा राजसिंह से सम्बन्धित कतिपय गीतो का प्रकाशन महाराणा यश प्रकाश नामक ग्रन्थ मे हुआ है।[35] इन डिंगल गीतों में महाराणा राजसिंह का शौर्य वर्णन एवम् उनकी युद्ध विजयो का उल्लेख हुआ है। इस ग्रन्थ के सम्पादक ने गीतो का रचनाकाल व गीत रचयिताओ के नाम नहीं दिये हैं, अत प्रस्तुत गीतों का रचनाकाल निर्धारित करना कठिन है।

डिंगल एवम् पिंगल की काव्य रचनाओ के साथ साथ इस काल मे कतिपय गद्य रचनाओ की भी सृष्टि हुई थी। प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा के पुस्तकालय मे कतिपय वशावलियाँ सग्रहीत हैं। इनमे से दो वशावलियो मे महाराणा राजसिंह तक का वश वर्णन उपलब्ध है।[36] इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि इन वशावलियो की रचना महाराणा राजसिंह के काल अथवा उसके उत्तराधिकारी जयसिंह के काल के प्रारम्भिक वर्षों म हुई होगी। इससे यह स्पष्ट होता है कि गद्यात्मक इतिहास लेखन की परम्परा का सूत्रपात मेवाड मे इस समय तक हो चुका था।

भारत मे मुस्लिम सत्ता की स्थापना के समय से ही धीरे-धीरे राजस्थान मे भी इस्लाम संस्कृति का प्रवेश होने लगा। शीघ्र ही राजस्थान मे

---

३३ जी० एन० शर्मा सोशल लाइफ इन मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० २५८ पाद टिप्पणी ८६ मे डा० मेनारिया (राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ८२) के अनुसार इसकी एक प्रति बून्दी दरबार के पास है।

३४ महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, मौलिक स्रोत, द्वितीय खण्ड, पृ० १३२

३५ मलसीसर ठाकुर भूरसिंह शेखावत. महाराणा यश प्रकाश पृ० १५६–१७८, गीत सख्या १८०–१८८

३६ ग्रन्थ क्रमांक ८२७ और ८६७,
जी० एन० शर्मा : ए बिबलिओग्राफी ऑफ मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० ८३ और ८४

अजमेर व नागोर इस्लाम संस्कृति के प्रमुख केन्द्र बन गये। लेकिन सल्तनत एवं प्रारंभिक मुगल काल तक मेवाड़ के राणाओं ने मुस्लिम सत्ता के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया, अतः मेवाड़ प्रदेश पर इस्लाम संस्कृति का प्रभाव नहीं के समान ही था। मुगल सत्ता की स्थापना के उपरान्त शनैः शनैः मेवाड़ में भी इस्लाम संस्कृति का प्रवेश होने लगा। सम्राट अकबर के काल में मेवाड़ का अधिकांश क्षेत्र मुगल साम्राज्य का भाग बन चुका था। स्थान स्थान पर मुगलों की सैनिक चौकियाँ स्थापित हो चुकी थीं। मुस्लिम फौजदार व प्रशासक यहाँ नियुक्त किये गये। धीरे-धीरे मेवाड़ प्रदेश में भी मुस्लिम परिवार बसने लगे। परिणामतः इस्लाम संस्कृति का मेवाड़ प्रदेश में प्रवेश हुआ। स्थानीय शासकों ने भी राजनैतिक कारणों से अब मुगल दरबार की तहज़ीब से वाकिफ लोगों को अपने दरबार में स्थान देना प्रारम्भ किया। महाराणा राजसिंह के समय तक आते-आते मुगल दरबार के साथ राणा का सम्पर्क और अधिक बढ़ गया और अब राणा व मुगल दरबार के मध्य प्रायः पत्र-व्यवहार होने लगा था। ऐसी परिस्थितियों में राणा को चतुर फारसीदां लोगों की नियुक्ति करनी पड़ी।[३७] राणा राजसिंह के काल में मुगल सम्राट के साथ काफी पत्र व्यवहार हुआ था। इससे राजदरबार में फारसी का प्रभाव बढ़ा। राणा राजसिंह की ओर से औरंगज़ेब के दरबार में जाने वाले पत्रों की भाषा अत्यन्त परिष्कृत, परिमार्जित एवम् मुगल तहज़ीब के अनुसार है।[३८] इससे स्पष्ट है कि राणा के दरबार में संस्कृत, राजस्थानी एवम् हिन्दी के विद्वानों के साथ-साथ फारसी एवम् उर्दू के विद्वानों को भी आश्रय प्राप्त हुआ था। यद्यपि इस काल में मेवाड़ में रचित किसी फारसी ग्रन्थ की रचना की सूचना तो प्राप्त नहीं होती पर कूटनीतिक पत्र-व्यवहार भी अपने आप में अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

मेवाड़ के शासक साहित्य के साथ-साथ कला के भी महान संरक्षक रहे हैं। मेदपाट प्रदेशीय कला की परम्परा का सूत्रपात अत्यन्त प्राचीन काल में हो गया था। आहाड़ की खुदाई से परवर्ती सिन्धु सभ्यताकालीन कलात्मक सामग्री प्रभूत मात्रा में उपलब्ध हुई है।[३९] तदनन्तर माध्यमिका (वर्तमान

---

३७. जी० एन० शर्मा मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० २००–२०१

३८ द्रष्टव्य . वीर विनोद, भाग २, पृ० ४१५–४३५,
जी० एन० शर्मा · मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० २०१

३९ द्रष्टव्य : एक्सकेवेशन ऐट आहड़, साकलिया, पूना १९६९
जी० एन० शर्मा . राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग १, पृ० ३–७

नगरी) से बौद्ध कालीन कला के अवशेष उपलब्ध हुए हैं।[४०] मेवाड के प्रारम्भिक गहलोतवशीय महाराणाओ के समय से ही देवालय, दुर्ग, राजप्रासाद एवम् सुन्दर प्रतिमाओ की उपलब्धि होने लगती है। मेदपाटीय वास्तु एवम् प्रतिमा निर्माण कला महाराणा कुम्भा के काल तक अपनी शैशवावस्था को पार कर पूर्ण यौवन को प्राप्त हो चुकी थी। कुम्भा के काल मे अनेक देवालयो एवम् प्रतिमाओ का निर्माण हुआ था। चित्तौड दुर्ग मे निर्मित विजय स्तम्भ केवल कुम्भा की सैनिक उपलब्धियो का ही कीर्तिगान नही करता वरन् वह भारतीय वास्तुकला एव मूर्तिकला की कीर्ति का भी महान् गायक है।[४१] कुम्भा का दरबारी कलाविद् सूत्रधार मण्डन प्रतिभा सम्पन्न कलाकार था। उसके ग्रन्थ 'देवतामूर्ति प्रकरण' मे उसने हिन्दू धर्म की विभिन्न देव प्रतिमाओं के लक्षण प्रस्तुत किये हैं, जो उसकी अध्ययनशीलता को प्रमाणित करते हैं। उसने अपने इस सैद्धान्तिक ज्ञान को उन समस्त देव प्रतिमाओं को विजय स्तम्भ मे उत्कीर्ण करवा कर मूर्त रूप प्रदान किया है। अत. विजय स्तम्भ केवल विजय स्मारक ही नही वरन् हिन्दू प्रतिमा शास्त्र की एक अनुपम निधि है।[४२]

मुगल काल के आरम्भ के समय तक मेवाड इस्लाम सस्कृति से प्रायः अछूता रहा था। अत इस समय तक मेवाड की विविध कलाएँ विशुद्ध हिन्दू कला के रूप मे पल्लवित होती रही। लेकिन इसके अनन्तर इस्लाम सस्कृति के प्रवेश के कारण अब उसकी विशुद्धता समाप्त हो गई। मेवाड की कलाओ पर मुगल प्रभाव परिलक्षित होने लगा। महाराणा राजसिह के काल तक इस्लाम प्रभाव का काफी विस्तार हो चुका था। राजसिह कालीन वास्तुकला एव पाषाण तक्षण कला पर इस्लाम प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। इसकी व्याख्या महाराणा राजसिह के काल की प्राप्त वास्तुकला व तक्षण कला के नमूनो के विवरण के साथ यथा सम्भव की जायेगी।

राजसिहकालीन वास्तुकला का सर्वश्रेष्ठ नमूना राजसमुद्र है। राजसमुद्र के निर्माण की योजना व उसके कारणों पर अध्याय ५ मे पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ मात्र उसकी वास्तुकलागत विशेषताओं पर प्रकाश डालना ही पर्याप्त होगा। प्रस्तुत बाँध मुख्य रूप से गोमती नदी के जल को

---

४०. के० सी० जैन : ऐन्शेन्ट् सिटीज एण्ड टॉउन्स ऑफ राजस्थान, पृ० ९९–१००

४१ के० सी० जैन : ऐन्शेन्ट् सिटीज एण्ड टॉउन्स ऑफ राजस्थान, पृ० २२९

४२. जी० एस० गूरे ' राजपूत आर्चिटेक्चर, पृ० ५० पाद टिप्पणी १०

रोकने के उद्देश्य से बनाया गया था। इस नदी में जल पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होता था, जिससे दुर्भिक्ष के समय बाँध के जल से जलाभाव का आसानी से निवारण हो सकता था। बाँध के निर्माण म अत्यन्त सूझबूझ से काम लिया गया। कार्य को अनेक भागो मे विभाजित कर दिया गया।[४३] नदी के किनारो पर स्थित दोनो पहाडो के मध्य बाँध बनाने का कार्य आरम्भ हुआ। परिणामस्वरूप लगभग तीन मील लम्बा एवम् डेढ मील चौडा सागर बना। धनुषाकृति मे निर्मित इस बाँध मे लगभग १९५ वर्ग मील भूमि का जल एकत्रित होता है।[४४] इस विशद बाँध की दृढता को स्थायी रखने के उद्देश्य से पक्की नीव लगाई गई। लेकिन नीव लगाने के समय जलाधिक्य की समस्या का सामना करना पडा। अतः अनेक अरहटो द्वारा जल निकालने का कार्य किया गया एवम् शुष्क भूमि मे दृढ नीव स्थापित की गई।[४५] सौन्दर्य का भी ध्यान रखा गया। पूरे बाँध पर राजनगर की खानो मे उपलब्ध संगमरमर के पत्थर का प्रयोग किया गया। मध्य मे तोरण द्वार का निर्माण किया गया जो कला की दृष्टि से सत्रहवीं शती का एक श्रेष्ठ तोरण है। तोरण के निर्माण मे देवालय तोरण निर्माण शैली का ही अनुकरण किया गया है। तोरण के स्तम्भद्वय नीचे से वर्गाकार हैं, जिसका कि आकार कुछ ऊपर से घट गया है। इसके अनन्तर अष्टकोणाकृति व तदनन्तर षोडष-कोणाकृति हो गई है। वर्गाकार भाग पर विभिन्न प्रकार की रेखाकृतियो को उभार कर स्तम्भ के अधोभागो को पूर्ण अलङ्कृत किया गया है। स्तम्भ के शीर्ष भाग को कमलाकृति प्रदान की गई है एवम् गलकुम्भ प्रदेश मे भी अलकरण की दृष्टि से सुन्दर तक्षण कार्य हुआ है। स्तम्भो पर चार चार टोडो पर तोरण का आधारपट्ट रखा हुआ है। उसके ऊपरी भाग मे त्रिकोणाकृति मे तोरण है। मुख्य तोरण मे अत्यन्त महीन खुदाई का कार्य किया गया है। तोरण विशुद्ध हिन्दू शैली मे बना है। तोरण के पास के इस हिस्से को नौचोकी कहा जाता है।[४६] यहाँ बने हुए मण्डप भी वास्तुकला एवम्

४३. राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक २१

४४ जी० एन० शर्मा राजस्थान का इतिहास, पृ० ५६६
राजसमुद्र और राजस्थान की १७ वी शताब्दी की सस्कृति और समाज, शोध पत्रिका, भाग ६, अक ३, पृ० ५४

४५ राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक २४–३०

४६. इस भाग को नौचोकी इसलिए कहते हैं कि बाँध के नीचे वाले तीन बड़े चबूतरो पर तीन-तीन छतरियो वाले मण्डप बने हुए हैं जिन तीनो का योग 'नौ' होता है।

मूर्तिकला की दृष्टि से श्रेष्ठ नमूने हैं।

नौचोकी मे स्थित मण्डपो की बनावट वैसी है जैसी किसी समाधि-छत्री[47] या गरुड[48] अथवा नन्दी[49] की छत्री की होती है। मण्डपो पर शिखर या गुम्बद नही है, परन्तु इनका तीन छत्री के समूहा मे इस प्रकार निर्माण हुआ है कि ये दिखने में बडे सुन्दर प्रतीत होते हैं। इसके साथ-साथ इनमे छज्जो, पान, छवनो आदि का प्रयोग हुआ है जो विशुद्ध हिन्दू शैली के प्रतीक हैं। डॉ० जी० एन० शर्मा का अनुमान है कि इन मण्डपो का निर्माण अनासागर (अजमेर) पर स्थित बारादरियो से प्रभावित है। इन दोनो की छतें सपाट वाली है और दोनो का निर्माण भील के किनारो पर हुआ है। वस्तुतः राजस्थानी शिल्पकला मे यह एक नया प्रयोग था, जिसका आगे चल-कर जल विलास, जगमन्दिर, मोहन मन्दिर आदि तथा पिछोला भील के प्रासादो मे अनुकरण किया गया है।[50]

इन मण्डपो के स्तम्भो व छतों मे सुन्दर खुदाई का काम है। खम्भो पर पशु पक्षी तथा स्त्री की मूर्तियाँ बडी रोचक तरीके से खोदी गई हैं। खम्भो पर पत्र, पुष्प तथा मगल घट की खुदाई हुई है वह हिन्दू शैली के आधार पर है[51] परन्तु यहाँ जालियाँ तथा बेल बूटो का अलकरण मुगल शैली की देन है।[52] चौरस आकार के पतले खम्भे शाहजहाँकालीन ढग के हैं।[53] शीर्षपटो पर सूर्य, ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्राणी, पार्षद, गन्धर्व, नर्तक-मण्डलियाँ आदि की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गई हैं जो कला की दृष्टि से बडी सुन्दर हैं। स्त्री मूर्तियो के वस्त्र मेवाडी ढग के प्रदर्शित किये गये हैं, जिनमे ओढनी, लहगा, कचुकी आदि मुख्य हैं।[54] बाजूबन्द, पायल, हार, कर्णफूल आदि आभूषणो का प्रयोग भी प्रदर्शित किया गया है। मुगलकालीन भारत मे ये

---

४७ महाराणा प्रताप, अमरसिंह, जगतसिंह आदि की छत्रियाँ

४८ मीराबाई का मन्दिर चित्तौड, एकलिंगजी व जगदीश मन्दिर, उदयपुर।

४९ नन्दी की छत्री, एकलिंगजी का मन्दिर।

५० जी० एन० शर्मा : राजस्थान का इतिहास, पृ० ५६८–५६६, शोध पत्रिका, भाग ६, अक ३, पृ० ५८

५१ हेवल हिन्दू आर्किटेक्चर, इन्ट्रोडक्शन

५२ जी० एन० शर्मा राजस्थान का इतिहास, पृ० ५६६

५३ कैम्ब्रिज हिस्ट्री, भाग ४, पृ० ५५८, ऐसे खम्भे पहाडी पर निर्मित जैन मन्दिर मे भी हैं।

५४ जगदीश मन्दिर की स्त्री मूर्तियाँ।

इस काल में भवनों का निर्माण भी हुआ। महाराणा राजसिंह ने कुमारावस्था में ही सर्वऋतु बाग एवम् महल का निर्माण करवाया था।[६७] इसमें फव्वारे और गुम्बदाकार कमरे मुगल शैली के बने हुए हैं। उदयपुर के पश्चिम में अम्बापोल के बाहर स्थित सुप्रसिद्ध अम्बामाता के मन्दिर का निर्माण सवत् १७२१ में हुआ था।[६८] मन्दिर में कलात्मकता का नितान्त अभाव है। अलकरण भी अत्यन्त सामान्य है पर देवालय निर्माण के परम्परागत वास्तु-शास्त्रीय नियमों के अनुसार उपमण्डप, सभामण्डप, अन्तराल, गर्भगृह, गुम्बद एवम् वासर शैली के शिखर का निर्माण हुआ है। महाराणा के मन्त्री दयालदास ने राजसमुद्र की नौचोकी के सम्मुख स्थित पहाडी पर परम्परागत शैली में सगमरमर का आदिनाथ का चतुर्मुख जैन मन्दिर का निर्माण करवाया।[६९] महाराणा के प्रतिष्ठित दरबारी फतहचन्द पंचोली ने वेडवास के पास एक बावडी व एक सराय का निर्माण करवाया। बावडी के पास ही एक सुन्दर उद्यान एवम् सराय में महल का निर्माण करवाया, जिनकी प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ल ६ सवत् १७२५ को हुई।[७०]

धार्मिक एवम् जनहिताय दृष्टिकोण से किये गये वास्तु प्रासादों के साथ साथ तत्कालीन सामरिक आवश्यकता के अनुकूल महाराणा ने देवारी के घाटे में सुदृढ रक्षात्मक भित्ति एवम् द्वार का भी निर्माण करवाया। यह निर्माण कार्य श्रावण शुक्ला ५ सोमवार सवत् १७३१ को सम्पन्न हुआ।[७१]

मेवाड में चित्रकला को भी प्रारम्भ से ही सरक्षण प्राप्त हुआ है। प्राय यह समझा जाता रहा है कि मुगल शैली से ही राजपूत चित्रकला शैली का आरम्भ एवम् विकास हुआ, लेकिन यह मात्र एक भ्रान्त धारणा है। मुगल चित्रकला शैली के सूत्रपात के पूर्व ही राजपूत चित्रकला शैली अपने अस्तित्व

---

६७ राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक ६, मान-राजविलास, विलास ४,
वीर विनोद, पृ० ४४३ और ४७६

६८ अम्बामाता की चरण चौकी की प्रशस्ति

६९ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५५७
पाद टिप्पणी ६—"दयाल करायो देवडो, राणे कराई पाल"

७० वेडवास की बावडी की प्रशस्ति,
वीर विनोद, पृ० ३८१–८३

७१. (i) राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक २६-२८,
(ii) देवारी के दरवाजे की उत्तरीय शाख की प्रशस्ति
(iii) वीर विनोद, ४७६

म आ चुकी थी।[७२] बीकानेर के खजान्ची संग्रह, कलकत्ता के गोपीकृष्ण कानोडिया के संग्रह, बोस्टन संग्रहालय अमेरिका आदि मे मुगल सत्ता की स्थापना के पूर्व लगभग तेरहवी शती के आसपास के राजपूत चित्रकला के नमूने संग्रहीत हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि मुगल चित्रकला शैली ने आगे चलकर राजपूत चित्रकला शैली को अत्यधिक प्रभावित किया। इसी परवर्ती मुगल प्रभाव के कारण इस भ्रान्त धारणा का उद्गम हुआ कि राजपूत चित्रकला शैली का जन्म मुगल शैली से हुआ।[७३]

मेवाड के महाराणा प्रारम्भ से ही कलाप्रिय रहे हैं। इनके महत्व संरक्षण मे यहाँ विभिन्न कलाओ को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। इन विभिन्न कलाओं के साथ साथ चित्रकला का भी विकास हुआ। महाराणा जगतसिंह का काल (१६२२ ई० से १६५२ ई०) चित्रकला के विकास की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध काल था। इस समय अनेक ग्रन्थो की चित्रित प्रतिलिपियाँ तैयार की गई। इस काल की चित्रकला के नमूने संवत् १७०८ (ई० स० १६५१) मे चित्रित आर्ष रामायण की पाण्डुलिपि मे देखे जा सकते हैं। चित्रकार मनोहर द्वारा सन् १६४६ मे चित्रित रामायण से भी इस काल की कला की विशेषताओ को आँका जा सकता है।[७४] महाराणा राजसिंह ने भी अपनी पितृ-परम्परा का निर्वाह किया एवम् चित्रकला को संरक्षण प्रदान किया। प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा मे संग्रहीत रागमाला, बारामासा, एकादशी माहात्म्य, कादम्बरी, पृथ्वीराज री बेल आदि ग्रन्थो मे भी इस काल के आसपास की चित्रकला के दर्शन होते हैं।[७५]

इस काल की चित्रकला मे हिन्दू एवम् मुगल शैली के मिश्रण के दर्शन होते हैं। चित्रित व्यक्तियो के परिवेश मे जहाँ एक ओर विशुद्ध स्थानीय वेश-भूषा एवम् आभूषणो के दर्शन होते हैं वहाँ मुगल वेश भूषा भी दिखाई देती है। रामायण के चित्रों में स्थानीय घाघरा, ओढ़नी व कञ्चुकी धारण की हुई स्त्रियो का चित्रांकन हुआ है वहाँ मुगल अधोवस्त्र धारण की हुई स्त्रियाँ भी दिखाई गई हैं। पुरुषो की वेश-भूषा मे जहागीरी पटका, अटपटी पगडी और चाकदार जामा रहता है। मुगल प्रभाव बारीक कपडों के पहनाव मे भी

---

७२ जी० एन० शर्मा राजस्थान का इतिहास, पृ० ६११

७३ जी० एन० शर्मा राजस्थान का इतिहास, पृ० ६१४

७४ जी० एन० शर्मा सोशल लाइफ इन मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० ३५८

७५ जी० एन० शर्मा मेवाड पेन्टिंग, उत्तर भारती, १६५६
सोशल लाइफ् इन मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० ३६०

दिखाई पडता है। पुरुषो और स्त्रियों की आकृति मे लम्बे नाक, गोल चेहरे, छोटा कद और मीनाक्षी का अकन हुआ है। इस शैली के चित्रो मे चमकीले पीले रग और लाख के लाल रग की प्राधान्यता देखी जाती है। पृष्ठभूमि के पक्षियो व गुम्बदाकार प्रासादो का चित्रण प्राय मुगल शैली मे हुआ है और वहाँ आमतौर से कदली वृक्षो का चित्रण स्थानीय परम्परा पर आधारित है।[७६]

महाराणा राजसिंह के काल मे मेवाड मे एक नवीन चित्रकला शैली का प्रादुर्भाव हुआ जो नाथद्वारा चित्रकला शैली के नाम से प्रसिद्ध है। महाराणा राजसिंह ने औरगजेब की सकीर्ण धार्मिक नीति से पीडित श्रीनाथजी की प्रतिमा को अपने राज्य मे स्थापित करने एवम् उसे पूर्ण सरक्षण प्रदान करने का आश्वासन प्रदान किया।[७७] इससे नाथद्वारा एवम् काकरोली मे वल्लभ सम्प्रदाय के दो महान् केन्द्र स्थापित हुए। आगन्तुक वल्लभ सम्प्रदाय के दल के साथ उनके चित्रकार भी थे। इन चित्रकारो के प्रभाव से स्थानीय चित्रकारो को भी अपनी प्रतिभा को विकसित करने का अवसर प्राप्त हुआ एवम् चित्रकला के क्षेत्र मे एक नवीन कला शैली का प्रादुर्भाव हुआ जो नाथद्वारा चित्रकला शैली के नाम से प्रसिद्ध है। इस शैली के चित्रो के सृजन मे मौलिक आधार श्रीनाथजी के प्राकट्य, आचार्यों के दैनिक जीवन और कृष्णलीला थे।[७८] यद्यपि इस कला शैली का विकास बहुत आगे चलकर हुआ लेकिन इसका सूत्रपात महाराणा राजसिंह के काल मे हो गया था।

चित्रकला के समान ही सगीत कला को भी आरम्भ से ही मेवाड मे सरक्षण प्राप्त हुआ था। स्थानीय साहित्य, पाषाणोत्कीर्ण प्रतिमाओ एवम् चित्रों मे सगीत कला के अस्तित्व एवम् विकसित स्वरूप के प्रमाण प्रभूत मात्रा मे उपलब्ध हैं। महाराणा कुम्भा भारतीय सगीत का महान् ज्ञाता था। उसकी रचना 'सगीतराज' उसकी सगीत ज्ञान गरिमा का श्रेष्ठ प्रमाण है।[७९] सगीत की इस महती परम्परा का निर्वाह राजसिंह के काल मे भी

---

७६ जी० एन० शर्मा राजस्थान का इतिहास, पृ० ६१५

७७ जी० एन० शर्मा *सोशल लाइफ् इन मेडिईवॅल् राजस्थान*, पृ० ३६४
ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५४७

७८ जी० एन० शर्मा सोशल लाइफ् इन मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० ३६५
दृष्टव्य गागुली—बुलेटिन आफ द बरोदा स्टेट म्यूजियम, जिल्द १, भाग २, १९४४, पृ० ३, ३१–३६

७९ वीर विनोद, भाग १, पृ० ३३५
जी० एन० शर्मा सोशल लाइफ् इन मेडिईवॅल् राजस्थान, पृ० २५३

हुआ। राजसमुद्र की नौ चौकियों की छत पर उत्कीर्ण कृष्णलीला के दृश्य में कृष्ण की विभिन्न गोपियों को अलग अलग वाद्य लिये हुए एवम् कुछ गोपियों को नृत्य मुद्रा में दिखाया गया है।[८०] मनोहर द्वारा चित्रित रामायण के चित्रों में भी गायकों, वादकों, एवम् नृत्यकारों का अंकन हुआ है। आर्ष रामायण के चित्रों में भी संगीतज्ञों के चित्र उपलब्ध हैं। समकालीन साहित्य में भी हमें संगीत एवम् विभिन्न वाद्य यन्त्रों का उल्लेख मिलता है।[८१]

संक्षेप में यही कहना उचित होगा कि महाराणा राजसिंह का काल महती साहित्यिक एवम् कलात्मक प्रतिभा का युग था।

---

८० नाचने वाली मण्डली के पास बांसुरी, झांझ, पखावज, तंबूरा, इकतारा, मृदंग, वीणा आदि वाद्य दिखाये गये हैं—
शोध पत्रिका भाग ६, अंक ३, पृ० ५६ और ६१, जगदीश मंदिर की मूर्तियों के वाद्य यंत्र

८१ मान-राजविलास, विलास ५, पद्य ६–१३

महाराणा राजसिंह का शासन-प्रबन्ध और उसका व्यक्तित्व

मेवाड के राणा प्राचीन काल से ही भारतीय सस्कृति के परिरक्षक रहे हैं। सीसोदिया शासको ने पहले अरब के मुसलमानो के विस्तार को रोकने मे योगदान दिया, तत्पश्चात् उन्होने तुर्कों से लोहा लिया। मुगलो के आगमन पर जब राजपूताने के अन्य सभी राजपूत शासको ने उनकी अधीनता स्वीकार करली थी मेवाड के राजाओ ने अपनी परम्परागत नीति व अपने पूर्वजों के पदचिह्नो का अनुसरण कर मुगलो से दीर्घकाल तक सघर्ष किया।[1] अत मेवाड का सात सौ वर्ष का इतिहास अत्यधिक आदर्शयुक्त एव गौरवपूर्ण रहा है। इस गौरवमय इतिहास के निर्माताओ मे बाप्पा, खुम्माण, लाखा, कुम्भा, सागा और प्रताप के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मेवाड के शूरवीर महाराणाओ की इस शृ खला की अन्तिम कडी के रूप मे महाराणा राजसिंह का नाम भी लिया जा सकता है।

मेवाड मे कतिपय ऐसे आधारभूत शक्तिशाली तथ्य विद्यमान थे जिनके फलस्वरूप यह देश दीर्घकाल तक अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने में सफल रहा। विदेशी सत्ता के विरुद्ध परम्परागत प्रतिशोध की प्रबल भावना ने मेवाडवासियों को उत्प्रेरित किया तथा यह उनके लिए शक्तिदायक सिद्ध हुई। मेवाड राजवश की पवित्रता, प्रतिष्ठा तथा उपलब्धियो के फलस्वरूप मेवाडी जनता मे आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की भावना का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे मेवाड सदैव अपनी अग्नि परीक्षा मे एक विशुद्ध स्वर्ण की भाँति भव्य चमक व आभा के साथ निखरता रहा।[2]

मेवाड के सभी वर्गों मे, चाहे वे उच्चकुलीय ब्राह्मण हों अथवा निम्न

---

१. जी० एन० शर्मा . मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १८३

२. वही, पृ० १८३–८४

वर्ग के भील, देश के प्रति गर्व की भावना व्याप्त थी,[३] जिससे मेवाड एक इकाई के रूप मे समय-समय पर लडे गये युद्धो का खर्च वहन करने मे समर्थ हो सका और सकटकालीन स्थिति मे वहाँ कानून व सुरक्षा की व्यवस्था बनाये रखने मे सफल रहा।

मेवाड के सामन्त वर्ग की सेवाएँ भी देश के लिए स्तुत्य रही थी। मेवाडी सामन्तो ने देश की रक्षा हेतु अपना सर्वस्व बलिदान करने मे कभी हिचकिचाहट का प्रदर्शन नही किया। सकट की घडी मे महाराणा द्वारा आदेश प्राप्त होने पर मेवाड के सभी सामन्त अपनी-अपनी जमियत के साथ देश की रक्षा हेतु राणा की सेवा मे तुरन्त उपस्थित हो जाते थे। इस सम्बन्ध मे मेवाड मे एक लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गई थी—'सीराणे सूती जमियत'—इसका अर्थ था कि सामन्तो की सेना सदैव देश की सेवा के लिए तैयार रहती थी।[४]

मेवाड के शासको ने श्री एकलिंगजी को अपना आराध्य देव स्वीकार किया था और वे अपने को उनके दीवान के रूप मे सम्बोधित किया करते थे। मेवाड के सभी राजपत्रो मे 'श्रीएकलिंगजी प्रसादातु'[५] और राणा के सम्बन्ध मे 'दीवाणजी आदेशातु'[६] लिखा जाता था। श्री एकलिंगजी को राज्य-चिह्न के रूप मे भी स्वीकृत किया गया था। मेवाडी जनता एकलिंगजी के प्रति अटूट श्रद्धा रखती थी। वस्तुत श्री एकलिंगजी मेवाड की एकता का प्रतीक थे। इस धार्मिक एकता ने मेवाड के निवासियों मे स्फूर्ति, आशा व साहस का सचार किया जिससे सकट की स्थिति मे भी वे अपने पथ से विचलित नही हुए।

---

३. सागा से राजसिंह के काल तक मेवाड मे राजपूतो के अतिरिक्त अन्य जातियो के व्यक्ति भी रणकुशल व योद्धा हुए थे। इस सम्बन्ध मे गरीब दास (ब्राह्मण), भामाशाह, दयालशाह (वैश्य), पुज और राम (भील) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

४. जी० एन० शर्मा : मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १८५ पाद टिप्पणी ३

५ द्रष्टव्य : रगीली ग्राम का ताम्रपत्र, बड़ी के तालाब की प्रशस्ति, आदि-आदि।

६. जी० एन० शर्मा : मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १८७ पाद टिप्पणी ७—स्थानीय पत्र-व्यवहार मे सामान्यतः राणा के लिए 'दीवाणजी आदेशातु' का प्रयोग किया जाता था।

विधि का शाश्वत नियम है कि कहीं भी एक प्रकार की स्थिति स्थायी रूप मे नहीं रहती। सात सौ वर्षों से सीसोदिया राजपूत निरन्तर युद्धो मे रत थे जिससे उनमे शनै शनै क्षति का होना स्वाभाविक था। राणा प्रताप के समय से ही मेवाड के पतन का बीजारोपण हो चुका था। शक्तिसिंह,[७] जगमाल,[८] सगर[९] और मेघसिंह[१०] मेवाड की भूमि से मुँह मोड कर मुगल बादशाह की सेवा म उपस्थित हो गये थे। मेवाड की शक्ति का ह्रास स्पष्टत दृष्टिगत होने लगा था। महाराणा अमरसिंह को मुगल बादशाह जहाँगीर की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पडा था। तदुपरान्त मेवाड मे भी मुगल प्रभाव परिलक्षित होने लगा। इसके साथ ही मेवाड का पुराना गौरव, राजनैतिक महत्त्व और सैनिक प्रतिभा मे भी कमी आने लगी। परन्तु एक बार फिर महाराणा राजसिंह के काल मे मेवाड ने पुन विगत आभा व गौरव प्राप्त किया। महाराणा राजसिंह योग्य प्रशासक, कूटनीतिज्ञ, दूरदर्शी, रणकुशल, व्यावहारिक, न्यायप्रिय, साहसी, वीर, निर्भीक, बुद्धिमान, भारतीय सस्कृति का पोषक, धर्मनिष्ठ, कला और साहित्य का प्रेमी, उदार और दानी राजा था। ख्यातिप्राप्त इतिहासकार टॉड के शब्दों मे 'एक शूरवीर मे जो योग्यता, नैतिकता और न्याय परायणता होनी चाहिए, वे सब राणा

---

७ जगमाल महाराणा उदयसिंह का पुत्र व राणा प्रताप का भाई था। मेवाड के सरदारो ने उसे मेवाड के सिंहासन पर नही बैठाया जिससे नाराज होकर वह मुगल बादशाह अकबर की सेवा मे चला गया। वीर विनोद, भाग २, पृ० १४५–४६ तथा 'रावल राणा री बात' पत्राक १०१–१०२

८ शक्तिसिंह अपने पिता महाराणा उदयसिंह के काल मे ही अप्रसन्न होकर मुगल बादशाह की सेवा मे उपस्थित हो गया था। वीर विनोद, पृ० ७३–७४, आशिया गिरधर कृत सगतरासो, दोहा सख्या १६–२३

९ सगर महाराणा प्रतापसिंह के समय मे अप्रसन्न होकर दिल्ली पहुँच गया। बादशाह ने सीसोदियो मे फूट डालने हेतु उसे चित्तौड का राणा बना दिया था। वीर विनोद, पृ० २१६–२२३

१० महाराणा अमरसिंह प्रथम के काल मे चूडावत मेघसिंह, बेगू की जागीर प्राप्त नही होने पर उक्त महाराणा से रुष्ट होकर, अपने पुत्र सहित बादशाह जहाँगीर की सेवा मे चला गया। मुगल दरबार मे वह काली पोशाक पहिनता था, इसलिए 'काले मेघ' के नाम से विख्यात हुआ। ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ८६३

राजसिंह के व्यक्तित्व मे थीं।"[११] महाराणा राजसिंह ने दीर्घकाल (ई० स० १६५२ से १६८०) तक शासन किया, जिससे मेवाड मे पुन आत्म विश्वास और आत्म सम्मान की भावना जाग्रत हुई। यहाँ महाराणा राजसिंह के काल मे मेवाड के शासन प्रबन्ध के सम्बन्ध मे विचार करना समीचीन ही होगा।

महाराणा राजसिंह के काल मे मेवाड को देश नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।[१२] मेवाड राज्य अनेक परगनों मे विभाजित था और एक परगने मे बहुत से गाँव होते थे। उस समय उदयपुर, चित्तौड और राजनगर मेवाड के मुख्य नगर थे। महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र की शोभा बढाने हेतु राजनगर बसाया था। सदाशिव कृत राजरत्नाकर ग्रन्थ मे राजनगर की सुन्दरता व रमणीयता का विवरण उपलब्ध है।[१३]

महाराणा राजसिंह के समय मेवाड राज्य का शासन सुव्यवस्थित था। राज्य की सभी शक्ति उसमे निहित थी। नागरिक, वित्त, न्याय-व्यवहार और सेना सम्बन्धी सभी कार्य वह किया करता था। जनता का पालन व धर्म की रक्षा करना वह अपना परम कर्तव्य समझता था। जनता उसका सम्मान करती थी और उसे 'धर्मावतार', 'श्री जी' तथा 'माई बाप' आदि सम्मानसूचक शब्दो से सम्बोधित करती थी। वह उसे ईश्वर का प्रतिनिधि तथा भगवान का अश मानती थी। देश की रक्षा का भार महाराणा पर होता था। अत उसे खुम्माण पद से विभूषित किया जाता था।[१४] महाराणा अमरसिंह प्रथम के काल से मुगलो के साथ सधि हो जाने के फलस्वरूप राणा को सन्धि की शर्तों तथा समय समय पर मुगल बादशाह द्वारा प्रसारित आदेशो का पालन भी करना पडता था।

मेवाड म प्राचीन काल से ही प्रशासन-कार्य मे राणा की सहायता हेतु एक मन्त्रिमण्डल का गठन किया जाता था। सारणेश्वर शिलालेख से विदित है कि पूर्व-मध्यकाल मे वहाँ अमात्य (मुख्यमन्त्री), अक्षपटलिक

---

११ टॉड एनाल्ड एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३१०

१२ मान-राजविलास, विलास १, पद्य ६२
धर्म देश मेवाड धर, सब देशा सिरताज ॥६२॥
जावर अभिलेख (वि० स० १५५४), श्लोक १२–'मेदपाटेश्वर देशे'

१३ (1) जीवधर अमरसार, श्लोक २०१–'यद्देशो बहुनगरा'
(ii) सदाशिव राजरत्नाकर, सर्ग १८

१४. जी० एन० शर्मा : राजस्थान का इतिहास, पृ० ६२३

(पुरालेख मन्त्री), बंदिपति (मुख्य भाट) और भिषगाधिराज (मुख्य वैद्य) मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते थे।[१५] इनमें से कुछ मन्त्रियों के पद परिवर्तित रूप में राणा राजसिंह के काल तक मेवाड़ में विद्यमान थे।[१६] शाह गिरधर पचोली राणा सांगा का मुख्यमन्त्री था। राणा विक्रमादित्य के समय शाह मधु का नाम मन्त्री के रूप में मिलता है। उदयसिंह और प्रताप के काल में क्रमशः शाह आशा और शाह भामा मन्त्री के पद पर आरूढ थे।[१७] राणा प्रताप के काल तक मेवाड़ में सतत युद्ध की स्थिति बनी रही जिससे यहाँ सैनिक और नागरिक शासन में कोई विभाजन नहीं था। परन्तु राणा अमरसिंह प्रथम ने, १६१५ ई० में मुगलों के साथ सन्धि हो जाने के पश्चात् प्रशासन सम्बन्धी कतिपय सुधार किये थे, जिसके फलस्वरूप मेवाड़ में सैनिक विभाग को अन्य विभागों से पृथक् कर दिया गया और सेना के प्रशासन का कार्य 'दलाधिकारी' के द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा।

महाराणा अमरसिंह के राजदरबारी कवि जीवधर कृत अमरसार ग्रन्थ से राज्य में अनेक मन्त्रियों का होना प्रमाणित है। डूंगरसिंह उस काल में मुख्यमन्त्री था और हरिदास 'दलाधिकारी' (मुख्य सेनापति) के पद पर आरूढ़ था। पदाति, घुड़सवार, हाथी, रथ और तोपखाना मेवाड़ी सेना के मुख्य अंग थे।[१८]

महाराणा जगतसिंह के काल में सैनिक प्रशासन में कुछ और सुधार किये गये। अब सेना के विभिन्न अंगों का प्रबन्ध विभागों के माध्यम से होने लगा और प्रत्येक विभाग के संचालन हेतु एक पृथक् पदाधिकारी रखा जाने लगा। पदाति सेना का विभागीय पदाधिकारी पैदलपति कहलाता था। इसी प्रकार गजसेना और रथसेना के पदाधिकारी क्रमशः गजपति और रथपति के नाम से सम्बोधित किये जाते थे।

मुख्यमन्त्री को मन्त्री प्रवर कहा जाता था। इसके अतिरिक्त पुरोहित, दंडपति (मुख्य न्यायाधीश), कोषपति, कोतवाल, गनपति, हयपति आदि बड़े

---

१५ जी० एन० शर्मा राजस्थान स्टडीज, पृ० १८१

१६ श्रीराम शर्मा *महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स*, पृ० १२८

१७ जी० एन० शर्मा मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १८८

१८ जीवधर . अमरसार-मंत्री डुंगरसीहो धाम्या रत्नानि चत्वारि'
'हस्त्यश्व पादातरथेन भूर विलोक्य राज्ञामरसिंह नाम्ना।
सिंहोपमस्शौर्यगुणेन सम्यक् कृतोधिकारी हरिदास भाल ॥

बड़े पदाधिकारियो का भी उल्लेख मिलता है।[१९] प्रतिवेदक, हुक्मदार, दवारिक, दूत आदि राजकीय कर्मचारियो का सम्भवत पर्याप्त महत्व था। मेवाड के प्रशासन मे विभागीय पद्धति का प्रारम्भ मुगलो की देन थी। इसी प्रकार मेवाडी प्रशासन के कतिपय पद जैसे कोतवाल, पैदल, हुक्मदार आदि मुगल-पदो के अनुकरण मात्र थे।[२०]

महाराणा अमरसिंह और महाराणा जगतसिंह की उपर्युक्त शासन व्यवस्था बिना किसी परिवर्तन के राणा राजसिंह के काल मे भी विधिवत् चलती रही।[२१]

महाराणा राजसिंह के काल के मन्त्रियों व उच्च पदाधिकारियो के कतिपय नाम समकालीन लेखो व साहित्य मे मिलते हैं। भागचन्द भटनागर (जाति का कायस्थ) महाराणा जगतसिंह का प्रधान (मन्त्री प्रवर) था। महाराणा राजसिंह ने उसके पुत्र फतहचन्द को उसके पिता के पद पर पूर्ण सम्मान के साथ नियुक्त किया था। उसने महाराणा की अनेक सेवाएँ की थी। बासवाडा और देवलिया के शासकों को उसने राणा की अधीनता स्वीकार करने

---

१९ मान-राजविलास, विलास २, पद्य ६९–७२
प्रोहित मन्त्रिसर प्रवर। हुकमदार हुजदार ।।६९।।
दलपति गनपति दद्दपति, गजपति हयपति सार।
रथपति पयदलपति प्रगट हैं, जिन्ह अति अधिकार ।।७०।।
कोसरू कोठागार पति, साख-साख भर भूप।
पटभाषा नव खड कैं, नर जहाँ नव-नव रूप ।।७१।।
सुश्रूपिक, पार्श्वग गनक, लेखक लिखन अभूत।
मर्द्दिक सधिक यष्टि घर, अनुग दुवारिग दूत ।।७२।।

२० जी० एन० शर्मा. मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६०

२१ मान-कवि ने अपना ग्रन्थ राजविलास राजसिंह के राज्यकाल के २५ वर्ष बीत चुकने पर वि० स० १७३४ के प्रारम्भ मे लिखना शुरू किया था। कवि ने अपने काव्य मे महाराणा राजसिंह द्वारा शासन मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन व सुधार किये जाने की सूचना नही दी है, जबकि उसने मन्त्रियो, सामन्तों और परामर्शदाताओ के नामो का उल्लेख किया है। अत यह स्वीकार करना ठीक ही होगा कि राजसिंह के काल मे प्राचीन शासन पद्धति व प्राचीन शासन व्यवस्था बिना परिवर्तन के प्रचलित थी।

के लिए बाध्य किया।[२२] महाराणा राजसिंह का एक अन्य मन्त्री दयालदास शाह था। वह ओसवाल सिंगवी जाति का था। उसने मेवाड मुगल युद्ध मे प्रशसनीय कार्य किये थे। मालवा म शाही ठिकानो पर आक्रमण कर वहाँ से दण्ड व लूट के रूप मे उसने विपुल माल व धन एकत्रित किया था और उसे ऊटो पर लाद कर वह मेवाड म ले आया।[२३] गरीबदास पुरोहित के पद पर नियुक्त था। वह बडा योग्य, नीति विशारद व्यावहारिक तथा प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति था। राणा राजसिंह का वह मुख्य सलाहकार था। वह एक प्रकार से सन्धिविग्रहिक का कार्य करता था।[२४] बारहट केसरीसिंह का भी राजसिंह के राज्यकाल म बडा सम्मान था। वह मुख्य भाट के पद पर सुशोभित था।[२५]

देश मे सकटपूर्ण स्थिति तथा कोई गम्भीर राष्ट्रीय समस्या उत्पन्न हो जाने पर महाराणा राजसिंह परामर्शदात्री समिति की बैठक का आयोजन करता था, जिसमे मन्त्री, कुँवर, सामन्त, प्रतिष्ठित नागरिक व विद्वान लोग उपस्थित होते थे और वे समस्या के समाधान हेतु अपने अपने विचार प्रस्तुत करते थे।[२६] अन्ततोगत्वा सर्वसम्मति से निर्णय लिया जाता था। सर्वसम्मति से कार्य करना राणा राजसिंह की सफलता का मूलमन्त्र था।

महाराणा राजसिंह के काल म मेवाड मुगल प्रणाली के आधार पर अनेक परगनो मे विभाजित था। चित्तौड के रामपोल के शिलालेख में माण्डलगढ फुनेरा और भीनावदा नामक मेवाड के परगनो के नाम उल्लिखित हैं।[२७] महाराणा जगतसिंह और राजसिंह के कई दानपत्रो मे राजनगर, पुर,

---

२२. बेडवास बावडी की प्रशस्ति, वीर विनोद, भाग २, शेष सग्रह पृ० ३८१–८३, राजप्रशस्ति, सग ८, श्लोक २१।

२३ मान राजविलास, विलास १०, पद्य १२०, विलास १७, ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५६७।

२४ मान राजविलास, विलास १२, पद्य ७१–७८, वीर विनोद, भाग २, पृ० ४०२, श्रीराम शर्मा महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पृ० १२८।

२५ श्रीराम शर्मा वही

२६ मान राजविलास, विलास १०, पद्य ५४–७६, वीर विनोद, भाग २, पृ० ४३६ और ४६४

२७ चित्तौड क रामपोल का अभिलेख (१६२१ ई०), जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६

भारिया, कनेरा, राशमी, सहाडा, कपासन और बदनोर परगनों के नामो का उल्लेख किया गया है, जिनमे कई ग्राम सम्मिलित थे।[२८] परगनों और ग्रामो के पदाधिकारियो का क्या नामाकन था और कौन इन पदों पर नियुक्त किये जाते थे, यह निश्चय करना कठिन है। किन्तु डॉ० जी० एन० शर्मा ने कमिश्नर, (अब कलेक्टरेट) उदयपुर के कार्यालय से प्राप्त दो पट्टों की प्रतिलिपियो के आधार पर अपना मत प्रकट किया है कि ये अधिकारी प्रतिष्ठित राजपूत हुआ करते थे, जिन्हे सैनिक व नागरिक अधिकार प्राप्त थे जिससे वे अपने क्षेत्र मे कानून व सुरक्षा की व्यवस्था बनाये रख सकें।[२९]

मेवाड मे न्याय व्यवस्था का स्वरूप प्राचीन हिन्दू परम्परा के अनुकूल था, जिसे मुगलो के सम्पर्क से परिमार्जित कर दिया गया था।[३०] वस्तुत न्याय का स्रोत व आधार राणा स्वय होता था किन्तु फिर भी वह सामान्यत स्वेच्छाचारी नही होता था। उसे न्याय करते समय स्मृतिकारो की आज्ञा, परम्परा तथा देशाचार को ध्यान मे रखना पडता था।[३१] महाराणा राजसिंह के काल मे भी अपने पिता के समय से चली आई परम्परा के अनुसार, अपने न्याय विभाग का सर्वोच्च पदाधिकारी दण्डपति' होता था।[३२] उस समय न्याय करने का मुख्य माध्यम पचायतें होती थी। राजधानी की पचायत का प्रधान कोतवाल होता था।[३३] इसमे मुगल प्रभाव दृष्टिगत होता है।[३४] गांवो मे धर्म, दीवानी और फौजदारी सम्बन्धी सभी मामले पचायतों द्वारा निर्णीत होते थे। गावो, कस्बो व नगरो की पचायतों के अतिरिक्त वहाँ प्रत्येक जाति की पचायत होती थी, जो अपनी जाति से सम्बन्धित अभियोगों को सुनती और अपराधियो को दड देने की व्यवस्था करती थी। सामान्य पचायतो और

---

२८ जी० एन० शर्मा राजस्थान स्टडीज, पृ० १८५

२९ जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६१, पाद टिप्पणी २५।

३० जी० एन० शर्मा राजस्थान स्टडीज, पृ० १८६

३१ वही, पृ० १८६–१९०; जी० एन० शर्मा मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६४, पाद टिप्पणी ३५।

३२ मान राजविलास, विलास २, पद्य ७०

३३ मान राजविलास, विलास २, पद्य १३३
लसै कोटवलि सु चौतरे ऊँच, बैठे कोतवाल करैं खलखच।
निबेरहिं सत्य असत्य सुन्याउ, बहु वर वृदनि सवेत पाउ ॥१३३॥

३४ जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६४

जातीय पचायतो मे तालमेल रहता था। राज्य की तरफ से भी इनके निर्णयो को मान्यता दी जाती थी।[३५] निम्न न्यायालयो के निर्णय से असन्तुष्ट व्यक्ति के लिए उच्च न्यायालय म पुनरावेदन करने की व्यवस्था थी। मानकृत राजविलास मे वर्णित है कि महाराणा राजसिंह ने कई बडे विवादो के निर्णय स्वय ने दिये थे।[३६]

महाराणा राजसिंह के काल मे दड व्यवस्था इतनी कठोर थी कि मेवाड मे कोई भी स्त्रियों व बच्चो को उत्पीडित करने का साहस नही करता था। सामान्यत सभी लोग कानून का सुचारु रूप स पालन करते थे। सबसे जघन्य अपराध शासक के विरुद्ध षड्यन्त्र व राजद्रोह करना होता था। मुगल दड व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसे अपराधियो को हाथी के पैरो के नीचे कुचलवा दिया जाता था।[३७] राणा राजसिंह की हत्या के षड्यन्त्र का पता चलने पर षड्यन्त्रकारियो को जो दड दिया उसका वर्णन जतिजयविमल ने किया है। रानी को विष का प्याला पिलवाया गया और दूदा तथा ऊदा को घाणी मे पिलवाकर मरवा डाला और रस्से मे पाँव बाध कर आकाश की तरफ फिकवा दिया गया।[३८]

मेवाड मे भूमि दो प्रकार से आँकी जाती थी। वह भूमि जहाँ उपज सर्दियो म होती थी उसे 'सियालू' और जिस भूमि पर फसल गर्मी के दिनो मे की जाती थी वह 'उनालू' के नाम से सम्बोधित की जाती थी। भूमि का विभाजन बीघो मे किया गया था। ५० बीघो का एक हल आँका जाता था। महाराणा जगतसिंह और महाराणा राजसिंह के काल मे दिये गये पट्टो म भूमि का प्रसार क्षेत्र बीघो मे दिया जाता था तथा भूमि की किस्म (सियालू और उनालू) का निर्देशन भी उसमे रहता था।[३९] मेवाड की मुख्य उपज

---

३५ जी० एन० शर्मा राजस्थान स्टडीज, पृ० १८७–८८

३६ मान-राजविलास, विलास ५, पद्य ३५

३७. श्रीराम शर्मा मुगल गवर्नमेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन्, पृ० २२२

३८ जतिजयविमल छप्पय स० २१–२२, द्रष्टव्य अध्याय ५, पृ० ८, पाद टिप्पणी १

३९ जी० एन० शर्मा . मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १६२
राजसिंह का ताम्रपत्र (ओल्ड डिपोजिट रेकार्ड न० ६५१) १६७८ ई० जी० एन० शर्मा द्वारा उद्धृत राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग १, पृ० २६४–६५

जौ, चना, मक्का, मसूर आदि थे।[४०]

डॉ० जी० एन० शर्मा ने रघुनाथ कृत जगतसिंह काव्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि महाराणा जगतसिंह के समय मे कृषकों से हिन्दू शास्त्रों के अनुकूल सरकार अनुमानत उपज का १।६ भाग भूमिकर के रूप मे लेती थी। किसानों को भूमिकर नकद और वस्तु के रूप मे देने की स्वतन्त्रता थी। यही स्थिति सम्भवत महाराणा राजसिंह के काल में भी रही होगी।[४१]

भूमिकर के अतिरिक्त मेवाड राज्य म कई अन्य कर भी प्रचलित थे जो विभिन्न वर्गों तथा व्यक्तियों से विशेष अवसरो पर लिये जाते थे। इनमे से कुछ कर इस प्रकार हैं—गनीम बराड (युद्ध सम्बन्धी कर), घर बराड, हल बराड न्योत बराड (विवाह सम्बन्धी कर) आदि। खड लकड का कर भी लिया जाता था। इस कर के अन्तर्गत युद्ध के समय सेना के लिए काष्ठ और घास गाँवो से एकत्रित किये जाते थे। कुछ दिनो के बाद यह कर बिना किसी युद्ध के ही लिया जाने लगा।[४२] 'ग्रास' नाम का भी एक साधारण कर लिया जाता था। मान कवि ने अपने ग्रन्थ राजविलास म महाराणा राजसिंह द्वारा भीलो को राजकीय सेवा के बदले मे इस कर को एकत्रित करने का अधिकार दे दिया था।[४३]

राणा राजसिंह के काल म एव दीर्घकाल तक शान्ति बनी रही जिसके फलस्वरूप मेवाड प्रदेश मे व्यापार की वृद्धि हुई। वस्तुत ई० स[illegible] १५८० म अजमेर सूबे के बनने के उपरान्त अजमेर और चितौड महत्त्वपूर[illegible] व्यापारिक मण्डियाँ बन गई थी। दिल्ली को पश्चिमी समुद्रतट से मिला[illegible] वाले मुख्य मार्ग पर अजमेर के स्थित होने के कारण भी व्यापार की दृष्टि [illegible] उसका अत्यधिक महत्त्व था।[४४] मेवाड-मुगल मैत्री के पश्चात् तो मुग[illegible] साम्राज्य और मेवाड के मध्य आवागमन के अनेक मार्ग खुल गये थे। इन स[illegible] कारणो से मेवाड के व्यापार मे वृद्धि होना स्वाभाविक ही था।

---

४० मान राजविलास, विलास १, पद्य ६८

४१ जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १९२-९३

४२ टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्वटीज ऑफ राजस्थान, भाग १, पृ० ११८

४३ (i) मान राजविलास, विलास १०, पद्य ९६

(ii) जी० एन० शर्मा मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १९३

४४ जी० एन० शर्मा सोशल लाइफ इन मेडिईवॅल राजस्थान, पृ० ३१९-२०

मेवाड मे बाहर से आने वाली वस्तुओं में बादाम व अन्य सूखे मेवे, मखमल, जरी, चीनी, रेशम, मलमल, आदि मुख्य हैं।[४५] इसी प्रकार कश्मीरी, कम्बोजी, ईरानी, अरबी व तुर्की घोडा के व्यापारी मेवाड में आते थे और उन्हें इन घोडों की अच्छी कीमतें मिलती थी।[४६] मेवाड की समृद्धि का मूल श्रेय वहाँ उपलब्ध खनिज पदार्थों को दिया जा सकता है।[४७] मेवाड की खानों मे लोहा, ताँबा, चाँदी और टीन अधिक मात्रा म मिलते थे। श्रीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक 'मुगल गवर्नमेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' (सन् १५२६–१७०७) म भारत के खनिज पदार्थों का वर्णन करते हुए यह बताया है कि मेवाड का लोहे व ताँबे की खानो के कारण महत्व था।[४८] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राजसिंह के काल म भी इन खानो मे से खनिज पदार्थों को निकालने की प्रक्रिया रही होगी।

स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु मेवाड के विभिन्न भागो मे अनेक प्रकार के उद्योग प्रचलित थे। मेवाड म उच्च व निम्न वर्ण की अनेक जातियाँ निवास करती थी। वे अपने अपने वर्णानुसार व्यवसाय किया करती थी। इसलिए व्यवसाय मे निपुणता होती थी और सामान्यत हर व्यक्ति को अपनी जीविका का साधन परम्परागत उपलब्ध था।[४९] मेवाड के गाँवो और नगरो मे यथा सम्भव सुनार, रगरेज, तेली, खरादी, लुहार, खाती, कुम्हार आदि निवास करते थे, जो अपने अपने व्यवसायो द्वारा जीवन निर्वाह किया करते थे।[५०]

---

४५ मान राजविलास, विलास २, पद्य १११–११७ कवि ने इन वस्तुओं का उदयपुर के बाजार मे उपलब्ध होने का विवरण दिया है। ये वस्तुएँ मेवाड म प्राप्त नही होती थी, अत इनका बाहर से ही आयात हुआ होगा।

४६ मान राजविलास, विलास ६, पद्य ८–९, जी० एन० शर्मा सोशल लाइफ इन मेडिईवॅल राजस्थान, पृ० ३२०

४७ टॉड एनाल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान, भाग १, पृ० ११७, ११८ और ३९९, पाद टिप्पणी १

४८ श्रीराम शर्मा मुगल गवर्नमेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन (सन् १५२६–१७०७) पृ० ३–४

४९ मान राजविलास, विलास २, पद्य ८५
जाति गोत बहु वसयुन, बसत अठारह वर्ण।
निय निय कर्म सबै निपुन, सधन सुभास सुवर्ण ॥८५॥

५० मान-राजविलास, विलास २, पद्य ८७–९८

इस व्यवस्था का देश की विभिन्न इकाइयों को आत्म निर्भर बनाने मे अत्यधिक योगदान रहा।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि राणा राजसिंह एक सुयोग्य प्रशासक था और उसकी शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित थी। जनता खुशहाल थी और मेवाड मे कानून और सुरक्षा की स्थिति सन्तोषजनक थी। शान्ति भग करने वालो के विरुद्ध तुरन्त कार्यवाही की जाती थी और समाज विरोधी तत्वों को कठोर दड दिया जाता था। ई० स० १६६२ म जब 'मेवल' प्रदेश मे अर्धसभ्य मीणो ने राणा के विरुद्ध सिर उठाया और प्रदेश को लूटना चालू किया तो राणा ने तुरन्त शक्ति से उन्हे दबा दिया। प्रदेश मे पुन शान्ति स्थापित हो गई।[२१]

मेवाडी सामन्त सशक्त होते हुए भी नियन्त्रित और अनुशासित थे। यद्यपि सामन्तो मे पारस्परिक झगडे, वैमनस्य तथा प्रतिस्पर्धा की भावना का प्राबल्य रहता था, फिर भी महाराणा राजसिंह अपनी कुशाग्रता, युक्तिशीलता, शक्ति तथा प्रशासकीय पटुता द्वारा उनमे सामजस्य बनाये रखने म सफल रहा तथा सामन्तो की शक्ति का वह देश मे आन्तरिक शान्ति बनाये रखने और बाहरी आक्रमणकारियो के विरुद्ध देश की रक्षा व स्वाधीनता हेतु उपयोग कर सका। यह राणा राजसिंह की एक प्रमुख उपलब्धि थी।

महाराणा राजसिंह कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ एक सुलझा हुआ कूटनीतिज्ञ भी था। वह सदैव परिस्थितियो तथा राजनैतिक आवश्यकता के अनुसार ही निर्णय लिया करता था न कि भावुकता के आधार पर। जब शाहजहाँ ने चित्तौड पर आक्रमण किया, उस समय उसने उत्सुकता होते हुए भी युद्ध को टालने की नीति का अनुसरण किया। परन्तु बाद मे शाहजादो के युद्ध का लाभ उठाकर उसने अपने खोये हुए परगनो पर पुन अधिकार कर लिया तथा शाही क्षेत्रों पर धावा बोल कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन भी किया। धर्मान्ध औरगजेब की हिन्दू विरोधी नीति से खिन्न होकर भावुकतावश उसने खुले तौर पर मुगल सम्राट का विरोध नही किया, किन्तु जब औरगजेब ने जसवन्तसिंह के मृत्योपरान्त मारवाड पर अधिकार कर लिया तब नीतिविशारद दूरदर्शी राणा राजसिंह को यह समझने म समय नहीं लगा कि बादशाह का यह अभियान भावी मेवाड विजय की भूमिका मात्र है। अत उसने तुरन्त राठौडो के साथ मिल कर मुगलों से युद्ध आरम्भ कर दिया। बाद मे उसने राठौड दुर्गादास से मिलकर पहले मोअज्जम और बाद

---

२१ राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक ३१-३३

मे अकबर को अपने पिता औरंगजेब के साथ लड़े गये युद्ध मे राणा ने जो वीरता, रणकुशलता तथा नीतिज्ञता का परिचय दिया था, वह वस्तुतः प्रशसनीय है।

महाराणा राजसिंह ने यथा सम्भव औरंगजेब से युद्ध न करने की नीति का अनुसरण किया था, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसमें एक सच्चे क्षत्रिय के वीरोचित गुणो का अभाव था। वह साहसी, वीर और निर्भीक था। बादशाह औरंगजेब से सम्बन्ध की हुई चारुमती से उसकी प्रार्थना पर उसके धर्म की रक्षा हेतु विवाह कर उसने निर्भीकता व साहस का परिचय दिया था। इसी प्रकार उसने श्रीनाथजी की मूर्ति को निस्सकोच होकर मेवाड मे स्थापित की और गोसाई दामोदर तथा उसके साथियो को आश्वासन दिया कि "जब मेरे एक लाख राजपूतो के सिर कट जायेंगे उसके बाद आलमगीर इस मूर्ति के हाथ लगा सकेगा", यह उसके अदम्य साहस व धर्मानुराग का सजीव उदाहरण है।

राजसिंह धार्मिक प्रवृति का व्यक्ति था। उसमे धर्म के सस्कार बाल्य-काल मे ही पड़ चुके थे। जब राजसिंह युवराज पद मे था, तभी वह बाईजी-राज (राजमाता) के साथ गगा स्नान करने सोरमजी गया था।[५२] राज्या-रोहण के बाद भी उसने धार्मिक भावनाओ से प्रेरित होकर ही रूपनारायण की यात्रा की थी।[५३] वैसे महाराणा राजसिंह के कुल देवता एकलिंग महादेव थे और वह शैव धर्म का अनुयायी था, किन्तु उसकी हिन्दू धर्म के अन्य सम्प्रदायो के प्रति भी उतनी ही निष्ठा थी, जितनी शैव धर्म के प्रति। उसने श्रीनाथजी को मेवाड मे शरण दी थी[५४] और काकरोली के पास वाली पहाडी पर द्वारकाधीश[५५] तथा उदयपुर मे अम्बामाता[५६] के मन्दिरो का निर्माण करवाया था। राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के समय गणेश, वरुण, गोविन्द, पृथ्वी आदि सभी देवी-देवताओ की आराधना की गई थी।[५७] ब्रह्म पुराण पढने मे

५२. वीर विनोद, पृ० ३२२-२३

५३. राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक ६; मान-राजविलास, विलास ८, पद्य ४

५४. वीर विनोद, पृ० ४५३

५५. कण्ठमणी : काकरोली का इतिहास, पृ० १४

५६. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५७५, अम्बामाता की चरण चौकी का शिलालेख।

५७. राजप्रशस्ति, सर्ग १४, श्लोक २६, सर्ग १५, श्लोक ६-१३

राणा की विशेष मनोवृत्ति पाई जाती है। राजसिंह के काल मे कर्मकाण्ड की अधिक मान्यता थी। शुद्ध शास्त्रोक्त विधि से कर्मकाण्डी क्रियाओ का सम्पादन होता था। इसका अनुमान हमे उस समय की गई पुराणो और कर्मकाण्ड के ग्रन्थों की प्रतिलिपियों के प्राप्त होने से होता है।[५८] राजसिंह के राज्य मे सभी धर्मों के मानने वालो को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। जैन धर्म मेवाड मे सर्वत्र फैला हुआ था। दयालदास, राणा का मन्त्री व अत्यधिक विश्वसनीय व्यक्ति, जैन धर्म का अनुयायी था। दयालदास ने राजनगर में एक जैन मन्दिर का निर्माण भी करवाया था।[५९] राजसिंह ने जैन मन्दिर और जैन आचार्यों के प्रति अनुदान और सम्मान द्वारा श्रद्धा प्रकट की थी। राजसिंह के एक दूसरे प्रधान (मन्त्री) कायस्थ फतहचन्द ने वेडवास ग्राम में बावडी, बाग तथा धर्मशाला का निर्माण करवाया था। यह ग्राम मार्गों का केन्द्र था। वेडवास बावडी की प्रशस्ति मे राम और रहमान का एक स्थान पर प्रयोग होना[६०] उस समय की सहिष्णुता पूर्ण नीति का द्योतक है।

धर्मपरायण होने के साथ ही महाराणा राजसिंह महादानी भी था। राजसिंह ने राज्याभिषेक के बाद एकलिंगजी के दर्शनोपरान्त रत्न मिश्रित स्वर्ण का तुलादान किया था।[६१] इसके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड,[६२] हिरण्यकामधेनु,[६३] हेमहस्तिरथ,[६४] सुवर्णपृथ्वी,[६५] सप्तसागर,[६६] कल्पद्रुम[६७] आदि महादान

---

५८. द्रष्टव्य : अध्याय ८, पृ० ४

५९. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५५७, पाद टिप्पणी ६

६०. वेडवास गाँव की बावडी की प्रशस्ति—
    जिहाँ असमान धरतीयाँ जिहाँ राम रहमान।
    जिहाँ लग रहसी चन्द तन सीघ फताकमठाण॥
    (वीर विनोद, भाग २, पृ० ३८१–८३)

६१. द्रष्टव्य : अध्याय २, पृ० ६

६२. राजप्रशस्ति, सर्ग ६, श्लोक ३०–३३

६३. राजप्रशस्ति, सर्ग ८, श्लोक ४४

६४. राजप्रशस्ति, सर्ग १०, श्लोक २०–२१

६५. राजप्रशस्ति, सर्ग १२, श्लोक २६–३१

६६. राजप्रशस्ति, सर्ग १७, श्लोक १०–१४

६७. राजप्रशस्ति, सर्ग २१, श्लोक २६–२७

करने का राजसिंह को यश प्राप्त है। राजसमुद्र का निर्माण हो जाने पर प्रतिष्ठा की पूर्णाहुति के समारोह के दिन महाराणा राजसिंह ने सोने का तुला दान किया। इस समय राणा ने अपने पौत्र बालक अमरसिंह द्वितीय को भी साथ बैठाया। इस तुला में ६००० तोले सोना चढ़ा[६८] जिसका वितरण ब्राह्मणों व गरीबों में किया गया।

महाराणा राजसिंह का काल महती क्रियाशीलता का युग था। वह कला और साहित्य का संरक्षक था। उसके काल में कला और साहित्य के क्षेत्र में आशातीत उन्नति हुई जिसका सविस्तार विवरण पहले ही अध्याय आठ में कर दिया गया है। यहाँ हम इतना ही कहेंगे कि राजसिंह स्वयं शिक्षित व विद्वान था। काशी के विद्वानों से उसने शिक्षा ग्रहण की थी। विद्वान ब्राह्मणों और चारण कवियों को वह मुक्त हस्त से दान व जागीरें दिया करता था। वह स्वयं कवि था। उसका कहा हुआ एक छप्पय राजसमुद्र की पाल पर निर्मित महल के झरोखे के पूर्वी पार्श्व में खुदा हुआ है जो अब स्पष्ट रूप से पढ़ा नहीं जा सकता। ओझाजी ने इसे अपने ग्रन्थ उदयपुर राज्य के इतिहास में उद्धृत किया है।[६९] इससे उसकी कविता शक्ति और कविजन-प्रियता का बोध होता है। श्रीलाल भट्ट कृत काव्य के एक श्लोक से विदित है कि राणा राजसिंह बहुत दानी, शूरवीर और इतिहास तथा अश्व विद्या का ज्ञाता था।[७०]

६८. राजप्रशस्ति, सर्ग १७, श्लोक २८–३२

६९. ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २, पृ० ५८०

कहाँ राम कहाँ लखण, नाम रहिया रामायण।
कहाँ कृष्ण बलदेव, प्रगट भागोत पुरायण।।
बाल्मीक शुक व्यास, कथा कविता न करता।
कुण सरूप सेवता, ध्यान मन कवण धरता।।
जग अमर नाम चाहो जिके, सुणो सजीवण आखरा।
राजसी कहे जग राणरो, पूजो पाव कवीसरा।।

७०. श्रीलाल भट्ट ने महाराणा राजसिंह के सम्बन्ध में १०१ श्लोकों का एक काव्य रचा था। सम्बन्धित श्लोक निम्न है—

संग्रामे भीमभीमो विविधवितरणे यश्च कर्णोपमेयः
सत्ये श्रीधर्मसूनु प्रबलरिपुजये पार्थ एवापरोऽय।
श्रीमान्वाजीन्द्रशिक्षानयविधिकुशलः शास्त्रतत्त्वेतिहासे
देवोऽयं राजसिंहो जयतु चिरतरं पुत्रपौत्रैः समेतः ॥३६॥

स्वभावत राजपूतो मे शिकार खेलने के प्रति रुचि पाई जाती है। अत. जातीय गुण और प्रचलित परम्परा का प्रभाव राणा राजसिंह पर भी था। 'सतु के मगरे' मे स्थित देवली पर एक प्रशस्ति साभर के शिकार की यादगार मे मिलती है।[७१] इससे राणा की आखेटप्रियता का बोध होता है।

उक्त गुणो के साथ-साथ राणा मे कतिपय अवगुण भी थे। वह स्वभाव का कुछ तेज तथा पाषाणहृदय व्यक्ति था। उसमे क्रोध की मात्रा भी अधिक थी। भावावेश मे वह कभी कभी अनैतिक काम भी कर बैठता था। यह उसकी निर्बलता थी। क्रोध के आवेश में आकर उसने राजकुमार, राणी, पुरोहित और चारण की हत्याएँ कर दी थी।[७२] वह समयानुकूल विलासी भी था। उसके १८ राणियाँ थी, जिनसे ६ कुँवर तथा एक पुत्री का होना प्रमाणित है।[७३]

महाराणा राजसिंह की उक्त दुर्बलताएँ उसके गुणो को देखते हुए नगण्य प्रतीत होती हैं। उसकी दानशीलता और धर्मपरायणता, कूटनीतिज्ञता और रणकुशलता, तथा कलाकौशल और साहित्यिक क्रियाशीलता प्रसिद्ध है। वस्तुतः महाराणा राजसिंह का काल मेवाड मे सर्वतोमुखी उन्नति का काल था। मेवाड की महत्ता, उसकी शक्ति, उसकी वह चिरन्तन राज-श्री राणा प्रताप के बाद से ही क्षीण होने लगी थी। मेवाड का गौरवमय जन-जीवन रुग्णावस्था मे पहुँच चुका था। एक बार फिर मेवाड की विगत आभा को चमकाने व गौरवान्वित करने तथा उसके जन-जीवन को संजीवनी प्रदान करने का श्रेय राणा राजसिंह को दिया जा सकता है। राजसिंह के शासनकाल में मेवाड मे शान्तिजनित वैभव में वृद्धि हुई। मेवाड का यह दुर्भाग्य था कि राजसिंह के उत्तराधिकारी उसकी महत्ता को चिरस्थायी बनाये रखने मे सफल नहीं हुए। महाराणा राजसिंह का नाम मात्र इतिहास के पन्नों तक ही सीमित

[पिछले पृष्ठ का शेष]

ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५८०, पाद टिप्पणी २

७१. सतु के मगरे की प्रशस्ति—वीर विनोद भाग २, पृ० ५७८

७२. वीर विनोद, पृ० ४४४–४६

७३. ६ कुँवर—सुलतानसिंह, सरदारसिंह, जयसिंह, भीमसिंह, गजसिंह, सूरतसिंह, इन्द्रसिंह, बहादुरसिंह और तख्तसिंह तथा एक पुत्री अजबकुँवरि—ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५७८–७९

रह गया है, किन्तु उसके द्वारा निर्मित जलाशय, विशेषकर राजसमुद्र, उसकी स्मृति के आदर्श स्मारक हैं, जो आज भी जन-जीवन के लिए प्रेरणा के स्रोत बने हुए हैं। नाथद्वारा में श्रीनाथजी और काकरोली मे द्वारकाधीश के मन्दिर, जिनकी स्थापना राणा राजसिंह के द्वारा की गई थी, आज भी अमर निधि के रूप मे विद्यमान हैं, और लाखो वैष्णवो के आध्यात्मिक जीवन को आलोकित करने के लिए गतिमान हैं। मेवाड के गौरवमय इतिहास मे मेधावी महाराणाओं की परम्परा मे राजसिंह को निर्विवाद रूप से अन्तिम महान् राजा स्वीकार किया जा सकता है।

सन्दर्भिका

(क) साहित्यिक-संस्कृत :—

१. अजितोदय : भट्ट जगजीवन : (पुस्तक प्रकाश, जोधपुर, पाण्डुलिपि क्रमांक १, काव्य) द्रष्टव्य : इण्डियन हिस्टोरिकल कमिशन अधिवेशन १९५६, पृ० २८३–९० पर डा० जी० एन० शर्मा का लेख।

२. अमरकाव्य : रणछोड भट्ट : इसकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रहालय मे सुरक्षित हैं। यह ग्रन्थ महाराणा अमरसिंह द्वितीय के काल मे लिखा गया था। (अप्रकाशित, पाण्डुलिपि, सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमाक ७२०) यह ग्रन्थ वि० सं० १७३२ मे लिखा गया था।

३. अमरसार : जीवधर (अप्रकाशित, पाण्डुलिपि, सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर, (क्रमाक ७०९) इसकी तिथि वि० स० १६८५ है।

४. अमरसिंहाभिषेक काव्यम् : वैकुण्ठ व्यास : ग्रन्थ की रचना तिथि माघ शुक्ला पचमी सोमवार, वि० स० १७५६ है। यह राणा अमरसिंह द्वितीय के राज्याभिषेक का समय था। सवत् १७५६ मे वैकुण्ठ ने उदयपुर मे ग्रन्थ को लिपिबद्ध किया। द्रष्टव्य : डा० दशरथ शर्मा द्वारा सम्पादित, मरु-भारती, वर्ष १, अक ३

५. एकलिंग माहात्म्य : अप्रकाशित पाण्डुलिपि, सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमांक ३५२, यह ग्रन्थ महाराणा कुम्भा के समय का है। इसका कुछ भाग सम्भवत: महाराणा ने स्वयं लिखा था।

६. जगतसिंह काव्य : रघुनाथ, अप्रकाशित पाण्डुलिपि, सरस्वती भण्डार

	लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमाक ७१५, यह ग्रन्थ महाराणा जगतसिंह के समय का है।
७ राजपट्टाभिषेक पद्धति	जगन्नाथ, अप्रकाशित पाण्डुलिपि, सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमाक १४८१.
८ राजप्रशस्ति महाकाव्य	रणछोड भट्ट राजसमुद्र के नौ चौकी नामक घाट पर काले पत्थर की २५ बडी बडी शिलाओ पर यह राजप्रशस्ति महाकाव्य उत्कीर्ण है। दृष्टव्य एपिग्राफिया इण्डिका, वर्ष २९ और ३० के परिशिष्टाको के रूप मे प्रकाशित, वीरविनोद भाग २ पृ० ५७८–६३४।
९ राज्याभिषेक पद्धति	चक्रपाणी मिश्रा अप्रकाशित पाण्डुलिपि, सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमाक २२६ इस ग्रन्थ की रचना वि० स० १७३८ मे हुई थी।
१० राजरत्नाकर	सदाशिव, अप्रकाशित पाण्डुलिपि सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमाक ७१८, इस ग्रन्थ की रचना वि० स० १७३२ मे की गई थी। दृष्टव्य इण्डियन हिस्टोरिकल रेकार्ड कमिशन, १९५६ म डा० जी० एन० शर्मा का लेख।
११. राजसिंह प्रभा वर्णनम्	लालभट्ट, महाराणा राजसिंह के सम्बध म १०१ श्लोको का एक काव्य रचा गया। दृष्टव्य ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५८०
१२ सीसोदवशावली	सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर।

(ख) साहित्यिक–राजस्थानी —

१. अजीतविलास परम्परा, भाग २७ चौपासनी
२ जगा खिडीया री कही 'रतनसिंह री वचनिका', १९५८
३ जतिजयविमल कृत सइकी, डा० ब्रजमोहन जावलिया द्वारा सग्रहीत
४ जोधपुर राज्य री ख्यात, (यह चार भागो मे है)।
५. नैणसी री ख्यात, नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित।
६ प्रतापगढ राज्य की ख्यात
७ बाकीदास री ऐतिहासिक बातें
८. बाकीदास री ख्यात स्वामी नरोत्तमदास द्वारा सम्पादित

९. महाराणा यश प्रकाश, भूरसिंह शेखावत द्वारा संकलित
१०. मेहता भूरसिंह री बही
११. रतनरासो, कुमकर्ण कृत, १६७५ ई०
१२ राज प्रकाश, किशोरदास कृत
१३. राजरूपक, रतनू चारण वीरभाण, पं० रामकर्ण द्वारा सम्पादित, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
१४. रावल राणा री बात
१५. रूपसिंह री वचनिका, वृन्द कवि कृत
१६. वंशावलियाँ . सरस्वती भण्डार पुस्तकालय, उदयपुर, क्रमांक ८२७ और ८६७
१७. सगतरासो, गिरधर कृत, लगभग १७२० वि० स०

(ग) साहित्यिक-फारसी :—

१. अदब-ए-आलमगीरी
२. अमल-ए-सालीह, काम्बू, इलियट, भाग ७
३ आइने अकबरी . अबुल्फज़ल
४. आलमगीरनामा, मुहम्मद काज़ीम, इलियट, भाग ७
५. इन्शा-ए-ब्राह्मण, मुंशी चन्द्रभाण
६. औरंगजेबनामा, मुंशी देवीप्रसाद, भाग १–३
७ तजकिरात-उस-सलातीन-उस-चगताइया
८ तारीख ए-अल्फी इलियट, भाग ५
९. तुजुक-ए-जहांगीर, मुतमिदखा, रोजर्स द्वारा अनुवादित
१०. पादशाहनामा, मुहम्मद वारिस
११. फतूहाते आलमगीरी, ईश्वरदास नागर
१२. बादशाहनामा, अब्दुल हमीद लाहौरी
१३. मआसिर-ए-आलमगीरी, मुहम्मद साकी मुस्ताइदखा, इलियट, भाग ७
१४. मआसिर-उल-उमरा, मुगल दरबार के हिन्दू सरदारों की जीवनियाँ अनुवादक–ब्रजरत्नदास, (देवीप्रसाद पुस्तक माला–६)
१५. मुन्तखब-उल-लुबाब : खफीखा, इलियट, भाग ७
१६. मिरात-ए-अहमदी : अली मोहम्मदखा
१७ वाकया-सरकार अजमेर और रणथम्भोर
१८. वाकियात-ए-जहांगीरी, इलियट, भाग ६

लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमांक ७१५, यह ग्रन्थ महाराणा जगतसिंह के समय का है।

७. राजपट्टाभिषेक पद्धति — जगन्नाथ, अप्रकाशित पाण्डुलिपि, सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमाक १४८१.

८. राजप्रशस्ति महाकाव्य — रणछोड भट्ट राजसमुद्र के नौ चौकी नामक घाट पर काले पत्थर की २५ बडी-बडी शिलाओ पर यह राजप्रशस्ति महाकाव्य उत्कीर्ण है। द्रष्टव्य एपिग्राफिया इण्डिका, वर्ष २९ और ३० के परिशिष्टाको मे रूप मे प्रकाशित; वीरविनोद भाग २, पृ० ५७८–६३४।

९ राज्याभिषेक पद्धति — चक्रपाणी मिश्रा अप्रकाशित पाण्डुलिपि, सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमाक २२१, इस ग्रन्थ की रचना वि० स० १७३८ मे हुई थी।

१० राजरत्नाकर — सदाशिव, अप्रकाशित पाण्डुलिपि, सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर, क्रमाक ७१८, इस ग्रन्थ की रचना वि० स० १७३३ मे की गई थी। द्रष्टव्य इण्डियन हिस्टोरिकल रेकार्ड कमिशन, १९५६ मे डा० जी० एन० शर्मा का लेख।

११. राजसिंह प्रभा वर्णनम् — लालभट्ट, महाराणा राजसिंह के सम्बध मे १०१ श्लोको का एक काव्य रचा गया। द्रष्टव्य ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५८०

१२. सीसोदवशावली · सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी, उदयपुर।

(ख) साहित्यिक-राजस्थानी :—

१. प्रवीनविलास : परम्परा, भाग २७ चोपासनी
२ जगा खिड़ीया री कही 'रतनसिंह री वचनिका', १९५८
३. जतिजयविमल कृत गड़बी, डा० ब्रजमोहन जावलिया द्वारा सग्रहीत
४. जोधपुर राज्य री ख्यात, (यह चार भागो मे है)।
५. नैणसी री ख्यात, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित।
६ प्रतापगढ़ राज्य की ख्यात
७ बाँकीदास री ऐतिहासिक बातें
८. बाँकीदास री ख्यात, स्वामी नरोत्तमदास द्वारा सम्पादित

९ महाराणा यश प्रकाश, भूरसिंह शेखावत द्वारा संकलित
१० मेहता भूरसिंह री बही
११. रतनरासो, कुमकर्ण कृत, १६७५ ई०
१२. राज प्रकाश, किशोरदास कृत
१३. राजरूपक, रतनू चारण वीरभाण, पं० रामकर्ण द्वारा सम्पादित, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
१४. रावल राणा री बात
१५. रूपसिंह री वचनिका, वृन्द कवि कृत
१६. वंशावलियाँ : सरस्वती भण्डार पुस्तकालय, उदयपुर, क्रमांक ८२७ और ८६७
१७ सगतरासो, गिरधर कृत, लगभग १७२० वि० स०

(ग) साहित्यिक-फारसी :—

१. अदब-ए-आलमगीरी
२. अमल-ए-सालीह, काम्बू, इलियट, भाग ७
३. आइने अकबरी : अबुलफजल
४. आलमगीरनामा, मुहम्मद काजीम, इलियट, भाग ७
५. इन्शा-ए-ब्राह्मण, मुंशी चन्द्रभाण
६ औरंगजेबनामा, मुंशी देवीप्रसाद, भाग १–३
७ तजकिरात-उस-सलातीन-उस-चगताइया
८ तारीख ए-अल्फी इलियट, भाग ५
९. तुजुक-ए-जहांगीर, मुतमिदखा, रोजर्स द्वारा अनुवादित
१०. पादशाहनामा, मुहम्मद वारिस
११. फतूहाते आलमगीरी, ईश्वरदास नागर
१२. बादशाहनामा, अब्दुल हमीद लाहौरी
१३. मआसिर-ए-आलमगीरी, मुहम्मद साकी मुस्ताइदखा, इलियट, भाग ७
१४. मआसिर-उल-उमरा, मुगल दरबार के हिन्दू सरदारों की जीवनियाँ अनुवादक–ब्रजरत्नदास, (देवीप्रसाद पुस्तक माला–६)
१५. मुन्तखब-उल-लुबाब . खफीखा, इलियट, भाग ७
१६. मिरात-ए-अहमदी : अली मोहम्मदखा
१७ वाक्या-सरकार अजमेर और रणथम्भोर
१८. वाकियात-ए-जहांगीरी, इलियट, भाग ६

१६ शाहजहानामा इनायतखा, इलियट, भाग ७
२० शाहजहानामा मुशी देवीप्रसाद, भाग ३

(घ) शिलालेख-कालक्रमानुसार ·

१ आहाड के वराह मन्दिर का लेख (वि० स० १०००) द्रष्टव्य एनियुल रिपोर्ट ऑफ राजस्थान म्यूजियम अजमेर, १६१३–१४, पृ० २, ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १२१, शोध-पत्रिका, १६५६, पृ० ५४–५७

२ वि० स० १२४२ का शिलालेख, द्रष्टव्य जी० एन० शर्मा—मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ० १

३ चीरवा गाँव का वि० स० १३२४ का लेख—द्रष्टव्य जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल, भाग ४५, खण्ड १, पृ० ४६

४ चीरवा गाँव का वि० स० १३३० का लेख—द्रष्टव्य एपिग्राफिया इन्डिका, भाग २२ पृ० २८५, वीर विनोद, भाग १, पृ० ३८६

५ चित्तौड का वि० स० १३३० का लेख, जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसा इटी ऑफ बगाल भाग ४५, खण्ड १, पृ० ४८

६ समिधेश्वर की प्रशस्ति, वि० स० १४८५, एपिग्राफिया इन्डिका भाग २, पृ० ४०८–४१० जी० एन० शर्मा राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० १३२

७ श्रृगी ऋषि की प्रशस्ति, वि० स० १४८५—एपिग्राफिया इन्डिका भाग २८, पृ० २३०–२४१, जी० एन० शर्मा राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० १३३

८ कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति, १४६० ई०—द्रष्टव्य ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १, पृ० ३१६, जी० एन० शर्मा राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० १४६

६. एकलिगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, १४८८ ई०—द्रष्टव्य भावनगर इन्सक्रिप्सन्स न० ६, पृ० ११७–१३३, जी० एन० शर्मा राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० १५४

१० चित्तौड के रामपोल दरवाजे की प्रशस्ति, १६२१ ई०—द्रष्टव्य वीरविनोद पृ० ३११, जी० एन० शर्मा राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० १७७

११ जगन्नाथराय प्रशस्ति, १६५२ ई०—द्रष्टव्य : एपिग्राफिया इन्डिका भाग २४, वीरविनोद, पृ० ३८४–३९९; जी० एन० शर्मा : राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० १८४

१२ एकलिंगजी की सडक के पूर्वी किनारे पर भवाणा ग्राम से दक्षिण दिशा वाली बावडी पर की प्रशस्ति, वि० स० १७१७—द्रष्टव्य वीरविनोद, शेष सग्रह न० ३ पृ० ५७८; जी० एन० शर्मा . राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० १८६

१३ उदयपुर अम्बामाता की चरण चौकी की प्रशस्ति, वि० स० १७२१—द्रष्टव्य वीर विनोद, शेष सग्रह न० ५, पृ० ६३४

१४. बेडवास गाँव की प्रशस्ति, १६६८ ई०—द्रष्टव्य : वीर विनोद, पृ० ३८१–८३; जी० एन० शर्मा . राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० १८६–८७

१५ सन्तू के मगरे मे राणा देवली स्थान पर सांभर के शिकार की यादगार की प्रशस्ति, वि० स० १७१६—द्रष्टव्य . वीर विनोद, शेष सग्रह न० २, पृ० ५७८

१६ देबारी दरवाजे की उत्तरी शाखा की प्रशस्ति, वि० स० १७३१—द्रष्टव्य : वीर विनोद, शेष सग्रह न० ७, पृ० ६३७

१७ देबारी के भीतर त्रिमुख बावडी की प्रशस्ति, १६७५ ई०—द्रष्टव्य : वीर विनोद, शेष सग्रह ८–९, पृ० ६३८–४०; जी० एन० शर्मा : राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० १८८–१८९

१८ राजसमुद्र तालाब की प्रशस्ति, नौ चौकियाँ ऊपर की, १६७६ ई०—द्रष्टव्य . वीर विनोद, शेष सग्रह न० ४, पृ० ५७८–६३४; एपिग्राफिया इन्डिका, भाग २९–३०; जी० एन० शर्मा : राजस्थान के इतिहास के स्रोत

१९. जनासागर की प्रशस्ति, १६७७ ई०—द्रष्टव्य : जी० एन० शर्मा : राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० ११२

२० बडी के तालाब की प्रशस्ति, वि० स० १७३५—द्रष्टव्य : वीर विनोद, शेष सग्रह ६, पृ० ६३५–३७

२१ राठोड बल्लू के पुत्र गोरासिंह के देबारी के पासवाली छत्री का लेख, १६७९ ई०—द्रष्टव्य : ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५५९

२ आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट
३ इन्डियन हिस्टारिकल रेकार्ड्स कमिशन, वर्ष १६४५
४ इन्डियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसिडिंग्ज, १६५४
५ इम्पिरियल गजेटियर ऑफ इन्डिया, राजपूताना
६ उत्तर भारती
७ एपिग्राफिया इन्डिका
८ जर्नल ऑफ बंगाल एशियाटिक सोसाइटी
६ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी)
१० परम्परा (चौपासनी)
११ प्रतापगढ राज्य का गजेटियर
१२ बम्बई गजेटियर
१३ मनोरमा
१४ मरु-भारती (पिलानी)
१५ महाराणा प्रताप स्मृति अंक
१६ माल्कम की रिपोर्ट
१७ माडर्न रिव्यू
१८ शोध पत्रिका, उदयपुर
१६ सम्मेलन पत्रिका (प्रयाग)

अनुक्रमणिका